# ज्योति-किरण

( सामाजिक उपन्यास )

लेखिका

विमल वेद (आरती)

राजहंस प्रकाशन

दिल्ली-६

प्रकाशक—

सुबुद्धिनाथ

राजहंस प्रकाशन,

सदर बाजार, रूई मण्डी,



● ● ●

मूल्य : चार रुपये

● ● ●

मुद्रक—

अमरचन्द्र जैन,

राजहंस प्रेस,

सदर बाजार, रूई मण्डी,

दिल्ली-६ ।

# अपनी बात

अपनी बात कहने का बहुत चाव तो नहीं है लेकिन सोचती हूँ कहूँगी नहीं तो पुस्तक विधवा की माँग-सी सूनी रह जाएगी। कारण स्पष्ट है, पाठक मूल कथानक प्रारम्भ करने से पहले पुस्तक की भूमिका पढ़ना चाहता है ताकि वह कथानक के बारे में पहले ही पता लगा सके और आरम्भ व मध्य टटोले बिना वह पुस्तक का अन्तिम पृष्ठ देखता है। ऐसा सभी करते हैं यह मैं नहीं कहती, हाँ अधिकांश को ऐसा करते ही मैंने देखा है। अपने प्रथम उपन्यास 'युगान्तर' के बारे में मै ने उतना ही लिखा है जितना आवश्यक था। उस का अन्त स्वयं में इतना दृढ़ और स्पष्ट है कि कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं हुई। 'ज्योति-किरण' दुखान्त है, जिसे अधिकांश पसन्द नहीं करते और इसी कारण कुछ कहने की आवश्यकता आ पड़ी।

कहानी और उपन्यास, मैं ने दोनों ही प्रयोग किये हैं। दोनों में साधारण जीवन की समस्याओं को ले कर ही चली हूँ। यथार्थ को मैं ने दबाना नहीं चाहा और आदर्श की ओर से भी विमुख नहीं हुई। मेरी रचनाओं का यथार्थ आदर्श के शव पर पैर रख कर नहीं चला। बीभत्स से मुझे घृणा है, अश्लील यथार्थ का मैं पोषण नहीं कर सकी। मैं 'सत्यं, शिवं और सुन्दरम्' की उपासिका हूँ और उसी का वर्द्धन, उसी का निखार चाहती हूँ। हाँ, तो बात थी कहानी की। परिभाषा वही पुरानी है क्या कहूँ। इतना समझ में आता है कि कोमल अनुभूति के चित्रण के साथ मार्मिक यथार्थ का उद्घाटन कर आदर्श को उन्नत किया जाय तो कैसा ?

मैं सोचती हूँ जो उचित है, जीवन के अनुकूल है और जो 'सत्य' को पकड़ा सकता है वही तो आदर्श है। संस्कृति और मर्यादा की खींची हुई लकीर के पीछे भागने को मैं आदर्श नहीं कहती। वह तो ऐसा ही है कि कोई परीक्षा लेने के लिए कहे कि अपनी दृढ़ता और सच्चरित्रता

का प्रमाण देने के लिए कुएं में कूद जाओ और हम भी जीवन को निस्सार सा समझ कर झूठी दृढ़ता का प्रमाण देने के लिए कुएँ में फाँद पड़ें। यह दृढ़ता नहीं, कायरता है, सच्चरित्रता नहीं, मुख छिपाना है। सो ऐसे निर्बल, 'आदर्श' का पोषण मैं नहीं करती। दूसरे मैं जीवन को अधिक महत्व देती हूँ, आदर्श से भी अधिक। हो सकता है यह मेरी निर्बलता रही हो फिर भी माना मैंने यही है और 'ज्योति-किरण' का रमानाथ भी ऐसा ही युवक है। वह निर्धन है, उस का परिवार है। समाज में उस का कोई स्थान नहीं है और किसी उच्चपदस्थ से उस का कोई रिश्ता नहीं है। परिस्थितियाँ उसे गेंद के समान नचाती हैं, उछालती हैं। वह संघर्ष करता है लेकिन उन से जीत नहीं पाता।

परिस्थितियाँ अविजित हैं ऐसा मेरा विश्वास है। कभी जब बचपन का भोलापन साथ था सोचती थी मनुष्य परिस्थिति को चाहे जैसे मोड़ सकता है, अपने अनुकूल बना सकता है। वह परिस्थिति का दास नहीं स्वामी है, पर अब ऐसा नहीं मानती। बहुत लम्बा चौड़ा जीवन अवश्य ही मेरा नहीं है और अनुभव भी विशेष नहीं, लेकिन जितना भी है उस ने यह स्वीकार करवा दिया है कि संसार पर विजय पा ले, लेकिन मानव 'होनी' और परिस्थिति पर विजय नहीं पा सकता। और यही कारण है कि 'ज्योति-किरण' का हर पात्र परिस्थिति के साथ घूमा है। यह मेरा अपना मत है।

उपन्यास की परिभाषा क्या दूँ। आज के प्रयोगवादी काल में जहाँ कथानक की कोई गुरुता नहीं, महत्ता नहीं, इस की दुहाई देती मैं शायद अच्छी नहीं लगूँगी। पाठक को व्यंग पसन्द है, कथानक में सार हो या न हो, कोई नहीं देखता और मैं इसके विपरीत कह रही हूँ। व्यंग मुझे भी अच्छा लगता है, मैं भी चाहती हूँ कि मेरी बात पढ़ने वाले के हृदय में गहरे तक जाकर चुभ जाए पर साथ में यह भी चाहती हूँ कि वह चुभन सदा अंतर को कचोटती ही न रह जाए, वरन् बाहर निकलकर मानव को हल्का कर दे कि वह जी सके। यह उद्देश्य कथानक

को प्राथमिकता दिये बिना पूर्ण नहीं हो सकता। अतः स्वीकार करती हूँ कि उपन्यास में कथानक मुख्य है जो संवेदना उत्पन्न करता है, समाधान ढूँढ़ता है और जीवन के साथ चलता है। यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य उपदेश दे, दूसरों पर अपनी बात लादने का प्रयत्न करे, फिर भी उपन्यासकार से यह आशा तो की जाती है कि किसी समस्या का चित्रण कर वह निदान भी ढूँढ़ देगा।

वाद विशेष से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं फिर भी उसकी उपेक्षा नहीं हो सकी। जो कुछ आज के राजनीतिक समाज में प्रचलित है और जो उस जीवन से जुड़ गया है, वह इस रचना में स्पष्ट हो गया है। यह मेरी दुर्बलता ही है लेकिन क्या किया जाय, वातावरण की ओर से निर्लिप्त रह सकना अभी आया ही नहीं। स्वस्थ मनोरंजन की मैं हामी हूँ और मैंने भरसक उसे दे सकने का प्रयत्न किया है।

उपन्यास का नायक रमानाथ एक निर्धन युवक है। आकांक्षाओं को साधारण युवकों के समान वह अपने हृदय में संजोता है पर छिछला नहीं है। अपने छोटे भाई और बहन के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए सन्नद्ध है। मां की ममता उसने नहीं पाई, स्नेह प्रेम को कंगाल के समान छीनने का प्रयत्न भी वह नहीं करता, उसे जितना मिला उतना ही उसने स्वीकार किया है। उषा से प्रेम करके भी वह अपने को प्रकट नहीं करता, उसका विचार है ऐसी किसी भावना को स्थान दे सकने का उसके पास समय ही नहीं है, और यह है भी सच। उसके दायित्व चारों ओर से उसे इतना अधिक घेरे हुए हैं कि उनसे बाहर निकल कर प्रेम को देख ही नहीं पाता। वह कुछ भी छीनना नहीं चाहता। निर्बलताएँ उसमें भी हैं और वह उन्हें स्वीकार करता है और मैं समझती हूँ यही उसके मनुष्यत्व की सबसे बड़ी पहचान है।

तिवारी जी के लिए क्या कहूँ। वे जैसे हैं कृत्रिम नहीं हैं। कभी किसी ऐसे व्यक्ति के जीवन में घुसकर देखिये, वे स्वयं प्रकट हो जाते हैं। दावा नहीं कि यह कह सकूँ मैंने अतिरंजना नहीं की है, कदाचित् की

है, लेकिन सत्य से परे होकर नहीं। तिवारी जी और आशा के सम्बन्ध को देखकर आप बुरा-भला मुझे कह सकते हैं लेकिन निवेदन करना चाहूँगी कि आज के तथाकथित सम्पन्न समाज में पिता व पुत्री के बीच ऐसे व्यापारिक सम्बन्ध देखने को अवश्य मिल जाएंगे। कितने ही पतित होने पर भी तिवारी जी का कोई स्थल कोमल है और जब वह आहत होता है तो वह कराह भी नहीं पाते। लड़की की मृत्यु-सेज पर उन्हें प्रकाश-किरण दिखाई देती है। वे पीछे हटते हैं पिता का प्रेम करवट लेता है लेकिन होनी को वे नहीं रोक सकते। उषा की मृत्यु पर उन्हें 'ज्योति की किरण' दिखाई दे जाती है।

शान्तादेवी एक तिरस्कृत पत्नी के रूप में सामने आती हैं। पति और समाज के अत्याचारों से जर्जरित न जाने कितनी नारियों को घुट-घुट कर रह जाना पड़ता है। समाज और अपनी ही खींची हुई मर्यादा का भय उनकी जिव्हा नहीं खोलता। शान्ता देवी भी इसी मृत गौरव की प्रतिनिधि हैं लेकिन इससे यह न समझ लीजिये कि उनमें साहस है ही नहीं। पति से तिरस्कृत होकर भी वे उषा को अपनी कुचली हुई आकांक्षाओं के सहारे उठाती हैं। आशा विपथगामिनी है, इसका उन्हें इतना दुःख है कि वे मर जाना चाहती हैं, लेकिन जीवित रहती हैं उषा के सहारे। ईश्वर पर उन्हें अटल विश्वास है। उषा उनकी ममता का केन्द्र है। स्नेह का वह बन्धन जब टूटने लगता है तो वे पागल हो जाती हैं, ईश्वर पर से उनका विश्वास हट जाता है।

परमात्मा का अस्तित्व है या नहीं, मैं नहीं जानती। मैंने उन्हें कभी नहीं देखा, कभी नहीं पाया, कैसे कह दूँ कि वह 'है'। मतभेद होने पर भी जो अदृश्य कल्पना है उसे मैं स्वीकार नहीं करूँगी। मानव की चेतना और कर्मण्यता को मैं मानती हूँ, उसी चेतना को संसार परमात्मा कह सके तो अवश्य स्वीकार कर लूँगी।

स्नेह और प्रेम मेरे विचार से किसी को उठाने के लिये बहुत बड़ा संबल है। उसके अभाव में मनुष्य मरुभूमि-सा तप्त रह जाता है। इसी

विश्वास को लेकर आशा का चरित्र उभरा है। उसे अपने अतीत पर लज्जा है, वर्तमान से घृणा और भविष्य के प्रति भय। पिता की सुरक्षा उसे नहीं मिलती और माँ की ममता को वह पाने से पहले ही खो देती है। यह खोना उसकी छाती में गहरे तक जाकर चुभता है। वह निर्बल है, विद्रोह करने का उसमें साहस नहीं। पिता की उचित-अनुचित आज्ञाओं के नीचे उसे सिर झुका देना पड़ता है. विरोध करे कैसे? जीवन में जिसने ममता नहीं पाई, सहानुभूति नहीं पाई, वह किस पूँजी को लेकर विरोध करे। माँ की आज्ञा पर वह मृत्यु को भी स्वीकार कर लेती है मात्र इसी आशा के कारण कि कदाचित् अन्त उसे खोई ममता दिला दे, और उसका यह त्याग ही उसे माँ की खोई ममता को पुनः प्राप्त करवा देता है। वह सम्हल जाती है लेकिन जैसे ही यह सहारा उसके नीचे से हटता है वह फिर निर्बल पड़ जाती है। मैं समझती हूँ इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। क्षण भर के लिये पाने का ही तो सुख था।

कान्ता, रतिनाथ और लीलावती का चरित्र रमानाथ के साथ ही चला है, अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखता। मात्र कान्ता के मन का स्नेह ही विशेष है। और शर्मा! वह सत्य है। तूल इसलिये नहीं देना चाहा कि मैं उपन्यास को सस्ती रोमांचकता में नहीं घसीटना चाहती थी। रणजीत से पात्र तो कदम-कदम पर बिखरे पड़े हैं, विशेषता यही है कि उसे भी मैंने उठाने का ही प्रयत्न किया है। किसी को गिराना मुझे सच में ही अच्छा नहीं लगता।

अन्त में रह जाती है उषा, जो मेरी सबसे प्रिय, सबसे कोमल पात्री है। उसका निर्माण मैंने अपने अन्तर की सबसे कोमल और सबसे दृढ़ भावनाओं से किया है। वह प्रेम करती है पर प्रतिदान नहीं माँगती, पिता का विरोध करती है पर उन्हें गढ़े में नहीं ढकेलती, माँ से स्नेह करती है पर उन्हें निर्बल नहीं बनाती और घृणा करके भी आशा को दूर नहीं ठेलती। अपने उसी कोमल को मैंने मृत्यु की गोद में क्यों सुलाया, यह प्रश्न मैंने स्वयं से भी कितनी ही बार पूछा है लेकिन कुछ भी उत्तर नहीं मिला।

मैंने उसे मारना नहीं चाहा फिर भी मार दिया, पता नहीं क्यों। मेरी अपनी प्रेरणा के कारण ही वह कदाचित् मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का बहुत प्रयत्न करती है। उसने कहा भी है, "अच्छी होने की मैं जितनी कोशिश करती हूँ उतनी ही बीमार होती जा रही हूँ। मैं सच में ही मरना नहीं चाहती।" लेकिन वह कुछ कर नहीं सकती। अपने प्राप्य को उसे अंगीकार करना ही पड़ता है। सच में मानव कितना असहाय है यहाँ। जीवन को जीत-जीतकर भी वह मृत्यु से हार जाता है। उसे अपने इस प्राप्य के प्रति दुःख नहीं है। जीवन का विलय जब मृत्यु के क्रोड में होना ही है तो मनुष्य क्यों रो-रोकर मरे। उसे संतोष है कि वह पापा को राह पर ले आई, भटकी हुई बहन को उसने सुदृढ़ हाथों में सौंप दिया। कितने हैं ऐसे जो इतना त्याग कर सकते हैं, लेकिन वह करती है और सबसे ऊपर उठ जाती है, मर कर भी सब में जी जाती है। यह 'पाना' भी तो कम नहीं है। उसे दुःख है केवल माँ के लिये। "मैं जीना चाहती हूँ। कान्ता, माँ के लिये जीना चाहती हूँ और मृत्यु ही यदि मेरा प्राप्य है तो प्रार्थना करती हूँ कि माँ भी मेरे साथ ही मर जाय। जीवन-भर जलती रहीं ईश्वर उन्हें अब भी शान्ति नहीं देना चाहता।" ईश्वर के प्रति अविश्वास उत्पन्न करने के लिये मैंने ऐसा नहीं किया है। जो मान सकते हैं वे भाग्यवान् हैं, जो नहीं मानते उन्हें दोष नहीं दूँगी। किसी समय मैंने भी ईश्वर को अपने प्राणों से बढ़कर माना था किन्तु वह विश्वास सत्य को पकड़ा नहीं सका, धीरे-धीरे वह मिटता गया। अपनी आज की इस ठोस विचारधारा के लिये मैं कर्नल इंगरसोल के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हूँ।

जो भी लिखा है वह सत्य और दूसरे जो कहते हैं वह असत्य है, इतना दम्भ तो नहीं है, इसी कारण पाठकों की स्वतन्त्र मत को मैं सादर आमंत्रित करती हूँ, बस।

*विमल वेद (आरती)*

*४ अगस्त, सन् १९५७* — २०० भाटापाडा, कोटा (राजस्थान)

## समर्पण

''स्नेहमयी बहन कमला भंडारी को''

## पहला अध्याय

कालेज हाल से बाहर निकलते ही रणजीत ने टोक दिया, "अरे रमा !"

रमानाथ ने मुड़कर देखा, कहा, "क्यों, कोई काम है ?"

रणजीत हंस कर बोला, "काम की जरूरत तो मैंने कभी से नहीं समझी दोस्त, अब उसकी क्यों याद दिलाता है। हम तो मौज करने के लिये पैदा हुए हैं। खैर छोड़ इसे। बात बड़े पते की कह रहा हूँ, किसी और के कान में नहीं जानी चाहिये, समझा।

रमा ने सिर हिला कर समझाया कि नहीं जायेगी।

रणजीत चुपके से बोला, "वो ऊषा तिवारी है न।" रमा आँखें संकुचित कर देखने लगा तो रणजीत हँस पड़ा, "घूर मत यार, उसकी बात नहीं कह रहा हूँ, बात है आशा की, तू तो जानता ही होगा, उसी के बारे में बड़ी गरमागरम खबर है कि अब वो हर शख्स से आँखें लड़ाती घूमती है और इसके लिये प्रोत्साहन देने वाले हैं उसके खुद के अब्बाजान। मीननैस की भी हद हो गई यार। बाप आँखों के आगे बेटी को ऐसा करते देखे और कुछ भी नहीं कहे। यह तो······।"

रमानाथ ने टोक दिया, "दूसरों के लिये तू इतना सिरदर्द क्यों मोल लेता घूमता है। संसार में सब तरह के मनुष्य हैं और हम किसी के भी लिये कोई निश्चित राय नहीं बना सकते। क्या तू जानता है कि

आशा के इस कार्य के पीछे कौन-सा रहस्य है ? नहीं न, तो फिर किसी की आलोचना करने से क्या लाभ। आदमी अपनी चिन्ता कर ले सो ही बहुत है भैया, दूसरों की चिन्ता करके क्यों अपनी प्रसन्नता भी नष्ट की जाए।"

रणजीत का मुख जरा-सा निकल आया। कहा, "तू तो यार कभी किसी को कुछ कहने ही नहीं देता। सब तेरे जैसे साधु नहीं हैं कि संसार की ओर से आँखें मूंद कर बैठ जाएँ। हम में अगर इन्सानियत है तो हैवानियत भी, और इसके लिये कोई शर्म नहीं है। देवता अपने से बना नहीं जा सकता और वह यदि बनने गया तो यों समझ कि अभी जितना मनुष्य हूँ उतना भी नहीं रहूँगा।" कह कर रणजीत सीटी बजाता हुआ चला गया।

आगे का घंटा खाली था अतः रमानाथ लायब्रेरी रूम में जाकर बैठ गया। किताबें मेज पर रख कर उसने इधर उधर देखते हुए धीरे-से जेब से एक मुड़ा हुआ कागज़ बाहर निकाला ही था कि पीछे से एक लड़का बोल पड़ा, "तकदीर वाला है बेटे !"

रमानाथ ने बिना मुख घुमाये ही कहा, "तकदीर का पता तुमने कहाँ से पा लिया दोस्त, किसी ज्योतिषी से जन्मपत्री बनवाई है क्या ?"

लड़का ठंडी सांस भर कर बोला, "अरे ज्योतिषी क्या खा कर तेरी जन्मपत्री बनाएगा ? बैठे-बिठाये तेरे पास प्रेम-पत्र टपक पड़ते हैं और यहाँ सिर पटकने पर भी सिवा गाली और चप्पल के कुछ पल्ले नहीं पड़ता।"

रमानाथ ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा, "बड़ा दुःख है।"

लड़के ने इस बार सामने आकर कहा, "यार, बता दे न किसका पत्र है ?"

और रमानाथ ने बिना किसी संकोच के वही कागज़ सामने रख दिया। कागज़ की ओर देखते ही लड़का सिटपिटा कर खिसक गया। रमानाथ खिलखिला कर हँस पड़ा। वह कोई प्रेम-पत्र नहीं वरन् मोदी

का बिल था जिसे आजकल करते-करते वह अभी तक नहीं चुका पाया था। पिछले दो महीने से यह रकम चढ़ी हुई थी और चुकाने के लिये उसके पास पैसे नहीं थे। मन ही मन उसने निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो आज वह तिवारी जी से ट्यूशन के पैसे अवश्य मांगेगा। ट्यूशन पर जाते पूरे पांच महीने हो गये पर पैसे मिले थे केवल एक माह के। आगे हो कर मांगने में उसे संकोच होता था। सोचता था भले आदमी हैं, अपने आप दे देंगे, पर जब भलमनसाहत का कोई पार ही नहीं पाया तो उसे अपना निश्चय बदलना पड़ा। तिवारी जी बडे आदमी हैं, उन्हें आवश्यकता नहीं भी हो सकती पर उसका तो महीने भर का खर्च इन्हीं थोड़े से रुपयों से चलता था। छिपी हुई संचित पूँजी तो थी नहीं कि बैठे-बैठ खाता रहे। कितने अजीब हैं ये लोग, दूसरे की आवश्यकता के प्रति आंख उठा कर भी नहीं देखेंगे और अपना मतलब हो तो सौ-सौ गर्जे खाएँगे। रमानाथ ने बुरा-सा मुख बना कर मन ही मन कहा मतलबी कहीं के।

"बहुत व्यस्त हैं ?"

रमानाथ ने चौंक कर बिल कमीज की जेब में रख लिया और नमस्कार करने के लिये हाथ जोड़ कर बोला, "आइये।"

प्रत्युत्तर दिये बिना ही ऊषा मुस्करा कर पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। बोली कुछ नहीं तो रमानाथ ने भी एक पत्रिका खींच कर आँखों के आगे कर ली और दूसरे ही क्षण उसमें ऐसे मन लगा दिया जैसे उसे आसपास की वस्तुओं का जरा भी ध्यान नहीं रहा हो, यद्यपि वस्तु स्थिति इससे एकदम भिन्न थी। ऊषा को देखते ही तिवारी जी से रुपये मांगने का निश्चय ढीला पड़ गया। ऊषा के लिये उसके मन में कुछ था अवश्य पर वह कुछ क्या था, इसे जानने का उसने आज तक प्रयत्न नहीं किया था। प्रेम या अनुराग करने की इच्छा भी कदाचित् नहीं थी और समय भी नहीं था। प्रथम समस्या थी रोटी की, परिवार की और अपनी पढ़ाई की। प्रेम करने का उसके पास समय था ही

कहाँ। फिर भी उसे वह पसन्द करता था अन्यथा उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं करता। ऊषा थी उससे दो कक्षा नीचे, पढ़ाई लिखाई में धुरन्धर अवश्य नहीं थी पर फेल भी कभी नहीं हुई। एक दिन निःसंकोच पास आकर खड़ी हो गई, बोली, "एक काम है।"

इतने अधिकारपूर्ण स्वर में उसने यह छोटा-सा वाक्य बोला कि रमानाथ देखता ही रह गया। वह चट से बोल पड़ी, "देख क्या रहे हैं, करियेगा नहीं क्या ?"

रमानाथ को कहना पड़ा, "कहिये।"

"मुझे अंग्रेज़ी में कोच करना पड़ेगा।"

न चाहते हुए भी रमानाथ को हँसी आ गई। कहा, "कोई जबरदस्ती है ?"

"है"

इस स्पष्ट स्वर के सामने सिवा स्वीकृति के और कोई राह नहीं थी, "अच्छी बात है, मेरा चौथा घंटा खाली रहता है आप यहीं पर पढ़ लिया कीजिये। .........."

और फिर एक दिन ऊषा ने भूमिका बांधी, "एक अनुरोध है, स्वीकार करें तो कृपा होगी।"

उसके व्यक्तित्व में बंध कर तो नहीं फिर भी रमानाथ सहज स्वर में बोला, "स्वीकार करने योग्य हुआ तो इन्कार नहीं करूँगा, कहिये।"

"मेरा छोटा भाई है, विशन, इस वर्ष हाई स्कूल की परीक्षा देगा। उसे पढ़ाना होगा, आप पापा से बात कर लें।"

रमानाथ को कुछ सोचना पड़ा। पढ़ाई के साथ-साथ ही उसे घर का खर्च भी चलाना पड़ता था। शिक्षा आज कल सस्ती नहीं पड़ती। अधिकारियों की खुशामद और प्रसिद्ध व्यक्तियों के सिफारिशी पत्र प्राप्त कर के फीस माफ करवाई जा सकती है, पर अभागे रमानाथ की किसी भी बड़े व्यक्ति से न जान-पहचान थी न कोई सम्बन्ध ही। सिफारिश करवाने का चूँकि कोई साधन नहीं था इस कारण उस ने इस के लिए

कोई कोशिश भी नही की और अपने ही प्रयत्न से दो तीन छोटे-मोटे काम ढूंढ़ कर वह इतना अवश्य कमाने लग गया जिस से घर की गाड़ी भी किसी प्रकार चल जाती थी और छोटी बहन कान्ता और भाई रतिनाथ की पढ़ाई का खर्च भी किसी प्रकार निकल जाता था। काम हमेशा मिल ही जाता हो सो बात नहीं थी, तब फाकों की नौबत आती थी इसी कारण वह अब सोचता था कि कहीं जमी हुई एक दो ट्यूशन मिल जाए तो अच्छा। ऊषा का प्रस्ताव सुन कर मन अवश्य खिल गया पर मुख ने यह स्वीकार नहीं करना चाहा और वह चुप खड़ा उस की ओर देखता रहा।

"चुप के माने हाँ होते हैं, अतः आप कल से ही आ जायें। पापा से मैं आज बात कर लूँगी।"

रमानाथ ने अपने को उठाने के लिए कहा, "लेकिन मेरे पास समय भी तो नहीं है।"

ऊषा सिर हिला कर बोली, "यह मैं नही जानती, आप को उस का भार लेना ही होगा वरना वह फेल हो जाएगा। पढ़ाई के सम्बन्ध में यों समझिये कि वह मुझ से भी दो कदम आगे है। बस, आप कल से आ रहे है, मैं पापा से कह दूँगी।"

तभी से वह तिवारी जी के यहाँ विपिन को पढ़ाने जाया करता था। भाग्य से उसी समय उसे दो ट्यूशन और मिल गईं और उस ने इधर-उधर कार्य करना लगभग बन्द कर दिया। शुरू माह तिवारी जी ने उसे एक लम्बी-चौड़ी रकम दी और दूसरे ही माह से जो चुप साधी तो अभी तक नहीं बोले। दो-एक महीने रमानाथ कुछ नहीं बोला। दूसरी ट्यूशन के रुपयों से किसी प्रकार खींच-खाँच कर काम निकाल लिया, पर जब तीनों की परीक्षा की फीस जमा करने के दिन निकट से निकटतर आने लगे तो रमानाथ चंचल होने लगा। प्रतिदिन सोचता, आज कहूँगा और जब अवसर आता तो उस का मुख ही नहीं खुल पाता था। उस ने आज तक किसी से रुपये नहीं माँगे थ, सभी अपने आप समय पर रुपये देते

आये थे, किसी ने नहीं दिये थे तो वे थे तिवारी जी, प्रान्त के वित्त-मंत्री, प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, वाहवाही लूटने और जनता को उल्लू बनाने के सिवा जिन का और कोई काम ही नहीं था। प्रतीक्षा की भी सीमा होती है। कुछ भी हो वह आज रुपयों के लिए अवश्य कहेगा। पत्रिका में आँखें गड़ाये वह पढ़ने का बहाना करता रहा।

इस चुप्पी से ऊब कर ऊषा ने कहा, "आज पढ़ाएँगे नहीं क्या ?"

रमानाथ ने पत्रिका एक ओर सरका दी, ऊषा के पास रखी किताबों में से अंग्रेजी गद्य की किताब पास खींच कर कहा, "अंग्रेजी साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियों में किस तत्व को मुख्यता दी गई है ?"

ऊषा ने शरारत से कहा, "अपनी बात बताऊँ या लेखकों का हवाला दूँ।"

रमानाथ ने हँस कर कहा, "अपनी बात कोर्स के सम्बन्ध में नहीं चलती, वहाँ लेखकों का ही हवाला देना पड़ता है।"

ऊषा ने बड़े भोलेपन से कहा, "लेकिन आप ही तो कहते हैं कि दूसरों के विचारों से अपने विचार ही अधिक मान्य होने चाहियें, स्वयं में निर्णय करने की बुद्धि होनी चाहिये, फिर लेखकों का हवाला न दे कर यदि मैं अपने ही विचार व्यक्त करूँ तो यह विरोध क्यों ?"

रमानाथ ने तत्काल कहा, "और यहाँ जो आप मेरी कही बात से अपना निर्णय निकाल रही हैं ? मैं ने जो कहा है उसे ले कर आप क्यों चलें, आप को वही करना व कहना चाहिये जिसे कहने के लिए आप का मन कहता हो। आप यदि यह सोचती हैं कि आप भली प्रकार साहित्य का विश्लेषण कर सकती हैं तो अवश्य अपनी ही बात कहिये।"

ऊषा मुस्करा कर बोली, "तब तो मैं अपनी बात कहने के लिए स्वतन्त्र हूँ।"

"अवश्य, पर यह सोचियेगा कि साहित्य कपड़े की दुकान नहीं है, वहां विविधता आप का निर्णय दिलवाती है वरन् यह एक ऐसी तरल व सरल भावना का स्थल है जो आप को अनुभूति और प्रेरणा देता है।

आप जानती हैं साहित्य की इस से बड़ी परिभाषा और कोई नहीं है। वह हमारी आन्तरिक अनुभूतियों का चित्रण मात्र है, जीवन का ठोस और सत्य चित्र है। इसी कारण यह चित्र सत्य, शिव और सुन्दर होना चाहिये।"

"हाँ।"

"अब बोलिये, कौन-सा तत्व मुख्य है।"

ऊषा ने हँसी दबा कर गम्भीरता का आवरण ओढ़ कर कहा, "बहुत से हैं, किस का नाम लूँ।"

घण्टा समाप्त होने वाला था। क्लाक टावर की ओर देख कर रमानाथ का मन चंचल होने लगा और ऊषा थी कि ठीक से उत्तर ही नहीं दे रही थी। मन ही मन झुँझला कर कहा, "किसी भी एक तत्व को ले कर विवेचना कीजिये।"

आँखें झुका कर दबी मुस्कराहट से ऊषा ने कहा, "आप ने कल बताया तो था पर ठीक से समझ में नहीं आया।"

"इतना समझाने पर भी ?"

रमानाथ के स्वर में भरे क्रोधमय आश्चर्य का अनुभव कर ऊषा को मन ही मन हँसी आने लगी और साथ ही यह कल्पना भी उसनें की कि कदाचित आज रमा अपनी गम्भीरता के आवरण से बाहर निकल पड़ेगा। इतने लम्बे समय से वह उस से पढ़ती आ रही थी पर एक पल भी कभी ऐसा नहीं आया था जब वह यह अनुभव कर सकी हो कि रमानाथ उस के प्रति कुछ भी स्नेह रखता है। इतने नीरस और तटस्थ भाव से वह उसे पढ़ाता था कि वह सोचती थी, इस से तो अच्छा था कि वह उस से पढ़ती ही नहीं। रमानाथ का स्वर उसे कभी-कभी बहुत चुभता था। यह नहीं कि उसने कभी उस की अवज्ञा की थी अथवा कभी यह प्रकट किया था कि वह उस पर कृपा कर रहा है, लेकिन उस के व्यवहार में तटस्थता का जो पुट था उस से वह बहुत चिढ़ती थी। सुधारने का कोई उपाय भी नहीं था। उस के परिहास, रमा को क्रोधित करने के उपाय

सभी निष्फल हो जाते थे। ऐसे नीरस जीव से वह आखिर पढ़े क्या। और सच पूछा जाये तो उस ने उस से कभी पढ़ा ही नहीं। रमानाथ अंग्रेजी का प्रायः प्रकाण्ड पण्डित ही था। उस की शिष्या को अधिक यदि नहीं भी तो भी थोड़ा बहुत मेधावी तो होना ही चाहिये था, पर जब अर्ध-मासिक परीक्षा में डेढ़ सौ में से कुल तैंतीस नम्बर मिले तो रमानाथ बिना बोले उस की ओर देखता ही रह गया और फेल होने में लज्जा जरा सी भी न ओढ़ कर ऊषा जी ने कहा था, आप जो बताते हैं वह याद ही नहीं रहता। उस समय जो भाव उस ने रमा के मुख पर देखा था वही आज भी उस के मुख पर था और वह उस के क्रोध की जरा भी चिन्ता न कर के शान्ति के साथ पेन्सिल से मेज पर लकीरें किये जा रही थी।

मात्र दस मिनट और हैं और यह लड़की न स्वयं कुछ पढ़ती है न उसे पढ़ाने देती है। अच्छी बला पाली है। उस ने कहा, "मैं जो बताता हूँ उसे आप नोट क्यों नहीं करतीं। नोट करने की आदत डालें तो रिपीटीशन के इस झंझट से मुक्ति मिल सकती है।"

ऊषा ने दबी जबान से कहा, "समझ में आया ही नहीं, नोट कहाँ से करती?"

इस बार रमानाथ वास्तव में रुष्ट हो पड़ा—'समझने की शक्ति आपकी इतनी मन्द है तो इतने समय से यह मेहनत क्यों कर रही हैं। परीक्षा सिर पर सवार है पर आपका ध्यान न जाने कहाँ रहता है। पहले तो आप कभी फेल नहीं हुई थीं, अर्धमासिक परीक्षा में कैसे हो गईं? ना, ना, पढ़ना आप जैसे लोगों का काम नहीं है। आप समझती हैं कि यह भी सिनेमा का एक शो है जो पैसे फेंके और देख लिया। लेकिन जानती हैं विद्या प्राप्त करने के लिये साधना करनी पड़ती है और वह आपके बस की बात नहीं है।" और यह कह कर उसे लगा कि वह अति कर गया है। सोचा, उषा प्रतिवाद करेगी पर जब वह कुछ नहीं बोली तो उसे सचमुच में ही दुःख हुआ। मुख से क्षमा माँगने का

अभ्यास नहीं था। एक कापी सामने खिसका कर उस पर कुछ लिखा और कहा, "मुख्य तत्व है रियलिज़्म अर्थात यथार्थवाद, जिस वाद को ससार के सभी आधुनिक साहित्यकारों ने मान्यता दी है। यथार्थवाद से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि आप अश्लील यथार्थ का पोषण करें और खेद के साथ कहना पड़ता है कि पूर्व के अनेक साहित्यकारो ने इसी प्रवृत्ति को सद् समझ कर अपना लिया है। अच्छाई को मनुष्य इतनी जल्दी नहीं पकड़ता जितना बुराई को। आदर्श के शव पर पैर रख कर लोग यथार्थ को जीवन दान देना चाहते हैं पर यह तो वैसा ही होगा जैसा देव को मार कर दानव को जीवित करना। यथार्थ को आप अवश्य अपनाइये लेकिन उसके सत्य और सुन्दर को लेकर। अश्लील और निकृष्ट साहित्य का सृजन कोई माने नहीं रखता। पश्चिम के अनेक लेखकों में भी यह प्रवृत्ति है। वीभत्स को उघाड़ कर वे यथार्थ-वादी साहित्यकार बनने का दावा करते हैं। इस तत्व को मुख्यता दीजिये पर आदर्श के शव पर नहीं, उसकी पृष्ठभूमि पर। इस धारा को लेकर चलने वाले लेखकों में थैकरे, मोपासां, शा, गोर्की और पर्लबक को ले सकती हैं। सभी भिन्न-भिन्न भूमि से सम्बन्ध रखते हुए भी मूल में एक हैं।"

इतना कह कर रमानाथ कुछ रुका और पल भर के लिये ध्यान से ऊषा के झुके हुए मुख को देखा, किन्तु वह पता नहीं लगा सका कि उसकी बात को उसने सुना है या नहीं। रमानाथ ने कुछ पल रुक कर कहा, "और देखिये, 'रियलिज़्म' के साथ ही एक प्रवृत्ति और भी इस काल की विशेषता है और वह है 'रोमांटिसिज़्म', जिसे हम रोमांचकता कह सकते है।" लेकिन इससे पहले कि रमानाथ आगे बढ़ता, घटा बज गया। ऊषा ने लेशमात्र भी हरकत नहीं की। ऐसा पहले कभी नही हुआ था इस कारण रमानाथ को बहुत आश्चर्य हुआ। ऊषा की चंचलता और स्पष्टवादिता ने सैंकड़ों बार उसे खिजाया था, रुष्ट किया था। मुख से कुछ न कहने पर भी उसका भाव तो वह समझ ही सकती थी, वही

ऊषा आज प्रस्तर प्रतिमा-सी निश्चित बैठी रही, यह अप्रत्याशित था। जिज्ञासा की एक हिलोर रमानाथ के मन में उठी और मुख से निकलने के पहले ही संकोच के गर्त में समा गई। ऊषा उसे न जाने कैसी लगती थी यद्यपि यह 'न जाने क्या' परिचय की सीमा में कभी अति वृद्धि नहीं कर पाया था और उसे पढ़ा कर पारिश्रमिक लेगा, यह भी उसने कभी नहीं सोचा। वही क्यों, कालेज के न जाने कितने विद्यार्थियों को उसे पढ़ाना पड़ता था। मना कैसे करे। बचाव किसी भी तरह नहीं हो पाता था। उसकी योग्यता ही उसकी दुश्मन थी। हठात् उसने सोचा, ऊषा को जिस ध्यान और लगन से उसने पढ़ाया है वैसे किसी को नहीं पढ़ाया। पर अजीब है यह लड़की, जिसके मस्तिष्क में कुछ घुसता ही नहीं।

यही सब सोचता हुआ उठ खड़ा हुआ, बोला, "रोमांटिसिज़्म पर कल बताऊँगा पर एक बात आपको अब मेरी माननी होगी, मैं जो भी बताऊँ उसे नोट करना होगा। परीक्षा में आप फेल होती रहें, सो नहीं हो सकता। जानबूझ कर आप अपना कैरियर खराब करें उससे क्या फल निकलेगा ?" कह कर वहाँ से चला गया।

सन्तोष की सांस लेकर इतनी देर बाद ऊषा ने मुख उठाया। दुःख, व्यथा या अपमान का रत्ती भर भाव भी उसके मुख पर नहीं था वरन् था परिहास का भाव और थी शरारत। तो आज वह रमानाथ को पूरी तरह खिजाने में सफल हो ही गई। बड़ा साधु बनता है। सोचता होगा कि उसके जैसा कामकाजी और विद्वान् और कोई है ही नहीं। रट कर तो गधे भी पास हो जाते हैं। वह गधा या रट्टू तोता नहीं बन सकती। पढ़ाना आता नहीं और जनाब कहते हैं नोट करो। ऊँह।

किसी ने पीछे से कन्धे पर हाथ रख कर कहा, "अकेली बैठी-बैठी क्यों हँस रही है ?"

ऊषा ने मुड़ कर उसे अपने पास खींच लिया और हँसती हुई बोली, "अरे बड़ा मजा आया पुष्पा। रमा आज इतना चिढ़ कर गया है कि

कोई दूसरी होती तो मार ही बैठता। अपनी आदत ऊषा ने नहीं छोड़ी।"

"सच ?"

"तेरी कसम, बेअकल तक कह दिया मुझे और यह देख कापी पर भी घसीट गया है न जाने क्या-क्या ? मालूम नहीं क्या कुछ बोल गया है ? इतनी मुश्किल से हँसी रोकी है मैंने कि मैं ही जानती हूँ।"

पुष्पा क्षण भर के लिये बैठी तो अवश्य पर दूसरे ही पल उठ कर खड़ी हो गई, बोली, "क्यों तंग करती है गरीब को ? पढ़ा देता है यही क्या कम है और तू जानबूझ कर उसके नाम को डुबाती है। माँ जानती हैं इसके परिवार को। कहती थीं कि बहुत ही गरीब है, ट्यूशन करके किसी प्रकार पढ़ाई और घर का खर्च निकालता है।"

बात नवीन नहीं थी। कान्ता के मुख से ऊषा ने सब कुछ सुन रखा था पर पुष्पा के मुख से सुन कर यह बात उसे नई तौर से चुभी। मुख पर उभर आये वेदना के चिन्हों को कृत्रिम हँसी से छिपा कर, "ऊँह, होगा। चल क्लास में चलें, देर हो गई तो कमलानी खा जाएगा।"

दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर लायब्रेरी रूम से निकल पड़ीं।

## दूसरा अध्याय

ठाकुरद्वार के कुछ ही आगे दो कमरे लेकर रमानाथ रहता था। कमरे रमानाथ के पिता श्यामनाथ ने उत्तराधिकार नियम के अंतर्गत प्राप्त किये थे। बाप-दादा का कोई चिह्न यदि बचा था तो इन्हीं कमरों के रूप में, अन्यथा किराया देकर यहाँ रहना रमानाथ के लिये बहुत ही भारी पड़ता। श्यामनाथ अधिक पढ़े लिखे नहीं थे। बची हुई पूँजी लगा कर व्यापार करना चाहा पर उसमें कमाया नहीं के बराबर और पास का सब खो दिया। तन के कपड़े तक बिकने पर आ पहुँचे तो एक सेठ के यहाँ मुनीमी कर ली और जीवन भर उन्हीं सत्तर रुपयों पर पड़े रहे। न उन्होंने कभी तनख्वाह बढ़वाने का प्रयत्न किया, न सेठ ने बढ़ाये। चाहते तो दूसरे मुनीमों के समान ही बहती गंगा में वे भी हाथ धो सकते थे। जानते थे कि बिना दुबका-चोरी वे कभी अपना घर नहीं भर सकेंगे, बच्चों की इच्छाएं पूर्ण नहीं कर सकेंगे पर अपनी आदर्श-वादिता उन्होंने नहीं छोड़ी। दुःख सहा, अभाव सहे पर बेईमानी का एक भी पैसा कभी घर में नहीं लाये और मृत्यु के समय विरासत के रूप में रमा के लिये यही सन्तोष और ईमानदारी की पूँजी के साथ-साथ कुछ-सौ का कर्ज भी छोड़ गये। रमानाथ उस समय मैट्रिक में था।

लीलावती ने पति की मृत्यु से अपना धैर्य नहीं खोया। रमानाथ

का परीक्षाफल निकलने तक उन्होंने कुछ नहीं कहा और फिर एक दिन कहा, "अब क्या करेगा रमा ?"

तरुण रमानाथ के मन में 'आगे बढ़ो' की चाह थी, उमंग थी और थी लगन, अतः दृढ़ स्वर में कहा, "मैं आगे पढ़ूँगा माँ ।"

सुन कर लीलावती चिन्ता में पड़ गयीं । माँ की ममता पति का अभाव पुत्र से पूरा करना चाहती थी । चाहती थी कि पुत्र ऊँचा उठे पर यथार्थ की पुकार कुछ और ही थी और वह पुकार माँ की ममता को कुचलने में कुछ भी संकोच नहीं कर रही थी । रमानाथ की बात सुन कर लीलावती की आँखें भर आईं । काश श्यामनाथ सिर पर यह कर्ज न छोड़ गये होते, पर जो कामना असम्भव थी उस की ओर मन दौड़ाने से क्या लाभ । स्वर को यथासम्भव नीरस-सा बना कर बोलीं, "पढ़ेगा तो घर का खर्च कैसे चलेगा रे ? कालेज की फीस भी तो कम नहीं और सिर पर जो कर्जा है उसे कौन चुकायेगा । रति इतना छोटा है कि उस से किसी सहायता की आशा नहीं की जा सकती और फिर पाँच-छः बरस बाद कान्ता का भी तो ब्याह करना होगा । सोच देख इन सब के लिए कहाँ से रुपया आएगा ।"

मनुष्य के अपने सपने होते हैं और जब उन पर आघात होता है तो वह व्यथा प्रायः असह्य हो जाती है । माँ की बात सुन कर रमानाथ का कोमल मुख एकदम मुरझा गया, बिना कुछ कहे मुख झुका कर वहाँ से चला गया । नष्ट स्वप्न की असीम व्यथा रमानाथ की उस पल भर की दृष्टि में थी और उस का अनुभव कर लीलावती की छाती मानों फटने लगी । लड़के के मन में कितनी आशायें, कितनी उमंगें होंगी, उन सब आशाओं पर उन्हों ने पानी फेर दिया, रमा की उमंगों को कुचल दिया । उस का मन कितना रोता होगा । रमा की पिछले साल की कही हुई बातें एक-एक कर उन के मन में आने लगीं और उन का स्मरण कर के उन की आँखों से आँसू बहने लगे । हाय रे रमा तू तो यों मुख उदास कर के चला गया पर तेरी यह माँ कितनी निरुपाय है, इसे तू क्या

समझेगा। लीलावती वहीं ज़मीन पर बैठ कर दोनों हाथों से मुख ढक कर रो उठीं और जब आगे के दो दिन तक उन्हें रमानाथ की सूरत भी दिखाई नहीं दी तो मारे भय के उनके प्राण रुँध से गये। वे प्रायः विक्षिप्त सी हो उठी थीं कि तीसरे दिन रमानाथ ने आ कर कहा, "मुझे नौकरी मिल गई है माँ।"

लीलावती ने खींच कर उसे छाती से लगा लिया और उस के सिर पर मुख रख कर रो पड़ीं, "तू कहाँ चला गया था रमा, मुझ से नाराज मत हो बेटा, तू ही बता मैं क्या करूँ।"

रमानाथ की सूखी आँखों में न जल आया न स्वर में मिठास हो, "मैं नाराज भला क्यों होऊँगा माँ। तुम्हारी विवशता को मैं समझता हूँ। मैं नहीं पढ़ पाऊँगा तो क्या हुआ रति तो पढ़ेगा। अपनी आकाँक्षा की पूर्ति मैं उसे पढ़ा कर करूँगा, तुम मेरी ओर से कोई भी चिन्ता न करना माँ।" लीलावती आँसू रोक कर बोलीं, "कहाँ मिली है नौकरी?"

कहते हुए रमानाथ कुछ हिचकिचा सा गया, "मैट्रिक पास को इस बम्बई में अच्छी नौकरी कहाँ मिलेगी माँ!"

लीलावती ने डरते-डरते पूछा, "कहाँ की है?"

रमानाथ ने स्पष्ट स्वर में कह दिया, "एक होटल में।"

लीलावती विह्वल सी रमानाथ के उठे हुए मुख को देखती रह गईं। कमाई को देखते हुए श्यामनाथ ने भी कोई विशेष उन्नति अपने जीवन में नहीं की वरन् मरते समय सिर पर कर्ज का भार ही छोड़ गये थे। लेकिन अपने जीवन मे सन्तोष और आदर का धन उन्होंने अवश्य कमाया था। अभाव सहते हुए भी लीलावती ने अपनी उन्नत मर्यादा को लिए सिर ऊंचा ही रखा था, उसी मर्यादा का बेटे ने उल्लंघन कर दिया। पल भर की विह्वल दृष्टि के बाद ही कठोर स्वर में बोलीं, "यह तू ने क्या कर डाला दुष्ट। नौकरी करने के लिए अवश्य कहा था पर यह तो नहीं कहा कि तू अपने खानदान की मर्यादा को ही लांघ जाये। बाप ने दुःख सह कर भी कभी रुपये के लिये नीच काम की ओर प्रवृत्ति

नहीं दिखाई और तू होटल में वेटर का काम करने के लिये तैयार हो गया ? सारी इज्ज़त चाटना चाहता है ? कहती हूँ चला जा यहाँ से और इस नौकरी के लियं मना करके आ।"

रमानाथ स्थिर स्वर में बोला, "नहीं जाऊँगा। तुम घर में बैठी रहती हो, तुम्हें क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किल से मिलती है। कौन बहुत पढ़ा लिखा हूँ, कौन है मेरे पीछे जो मेरी सहायता करेगा ? मैं नहीं छोड़ूँगा यह नौकरी।"

मारे क्रोध के लीलावती ने दोनों हाथों से रमानाथ के गालों पर थप्पड़ जमा दिये, उत्तेजना से हांफती हुई बोलीं, "पाजी, कलंकी कहीं के, तू इसी समय निकल जा यहाँ से। बाप के नाम को मिटाने पर तुला हुआ है, इससे तो तू होते ही मर जाता तो जी को यह अशान्ति नहीं होती। होटल की नौकरी है, हे भगवान् मैं कैसे किसी को मुख दिखाऊँगी अपना ?" कहते-कहते वे क्रोध में आकर रोने लगीं।

रमानाथ ने किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया। मां की मार का भी विरोध नहीं किया। मुख से उसने कुछ नहीं कहा। मां ने बोलना, उसका मुख देखना छोड़ दिया पर उसने नौकरी नहीं छोड़ी।

समय रुका नहीं। मां और बेटा एक दूसरे से बहुत दूर जा चुके थे। लीलावती ने कभी रमानाथ के लाये रुपयों की ओर आंख उठा कर नहीं देखा। वे रुपये उन्हें ऐसे ही लगते थे जैसे किसी का खून करके लाये गये हों। अपना खर्च उन्होंने अपने आप हीं चलाया पर किस प्रकार, यह सिवा उनके और किसी को मालूम नहीं था।

रमानाथ का हृदय पत्थर जैसा हो गया था। मां न चाहे तो इसके लिये शिकायत कैसी। प्यार क्या सभी को मिल जाता है ? इसे तो ज़बरदस्ती पाया नहीं जा सकता। न सही मृदुता, न हो कोमलता, उसके कर्तव्य की प्रेरणा भी तो कम नहीं थी और उसी में बंध कर वह मशीन के समान कार्य किये जा रहा था।

और फिर एक दिन आकर कहा, 'मैंने नौकरी छोड़ दी है।"

लीलावती ने दूसरी ओर मुख फेर कर कहा, "अच्छा किया ।"

"मैं कालेज जायन कर रहा हूँ ।"

पढ़ाई का खर्च और घर का काम कैसे चलेगा इसे जानने क लीलावती ने कोशिश की और न रमानाथ ने ही कुछ बताया ।

इस बात को भी एक लम्बा समय हो चुका है ।

## तीसरा अध्याय

कालेज से बाहर निकल कर रमानाथ ने सोचा तिवारी जी के यहाँ जाए या नहीं। रुपयों की उसे वास्तव में बहुत ही आवश्यकता थी। बिना मांगे तिवारी जी देंगे नहीं और मांगने के लिये उसका मुख नहीं खुलता। जेब में पड़े बिल को उसने फिर निकाल कर देखा। बिना चुकाये मोदी अब सामान नहीं देगा। आवश्यकता जैसी उसकी है वैसी ही मोदी की भी, और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिये यदि वह दबाव डाले तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। मोदी उससे तीन बार कह चुका है और वह कल चुकाने का वायदा करके वापस चला आता है। इस विवशता से लज्जा बहुत आती थी पर बिल चुकाने के लिये रुपए जुट ही नहीं पाते थे। तिवारी जी के यहाँ ट्यूशन इसीलिये की थी कि बंधे रुपए मिलते रहेंगे, विद्यादान करने के लिये नहीं। दान करने वाले और भी बहुत से होंगे, उसके पास दान कर के वाहवाही लूटने का न समय है और न कोई इच्छा। जिस समय तिवारी जी के समान ही गांठ में रुपया और समय होगा विद्या दान करने के लिये सोचेगा, इस समय तो उसे रुपए चाहियें, कहीं से भी, किसी तरह से भी। उसके पैर अनायास ही बस स्टैण्ड की ओर मुड़ गये।

मानवीय चेतना की आन्तरिक अनुभूतियां समय देकर जागृत नहीं होतीं। हृदय की क्रियाशीलता उन्हें जागृत कर देने के लिय बहुत है,

यद्यपि अपनी ओर से उन्हें दबा देने का प्रयास ही मानव का अधिक होता है। रमानाथ का विवेकशील मस्तिष्क जहाँ उसके स्वाभिमान और उच्चता का रक्षक था वहाँ हृदय उसकी भावनाशील अनुभूतियों का केन्द्रस्थल था। मस्तिष्क और हृदय में किसी एक को प्रभुता मिलती है यह जहाँ सत्य है वहाँ इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि मस्तिष्क कभी-कभी हृदय की भावनाओं को तर्क करके भी नहीं दबा सकता। भावना और अनुभूति कोमलता की जन्मदात्री है और कोमलता मानव की अपनी विशेषता है। मानव में पशुत्व की मात्रा भी कम नहीं है और यदि यही सम्बन्धों की कोमलता उसमें नहीं होती तो उसमें और पशु में कोई भेद नहीं रह जाता। भावनाएँ दबी रह सकती हैं पर सदा के लिये नहीं, कभी न कभी वे मुखरित हो ही उठती हैं। रमा का मन विशेष कोमल नहीं फिर भी स्वाभाविक सम्बन्धों की ओर से एकदम ही उदासीन न हो जाये इतनी शक्ति भी तो उसमें नहीं है। कान्ता है, रतिनाथ है और है मां; मां जिसने जन्म देकर भी कभी उसे मां की ममता नहीं दी, सुरक्षा नहीं दी। वही मां आज मृत्यु शैया पर पड़ी है और उसके पास उसका इलाज करवाने के लिये फूटी कौड़ी भी नहीं है।

बस आते ही रमानाथ उसमें चढ़ गया। सीढ़ियों पर खड़े होकर रिक्त स्थान के लिये देखने लगा कि कंडक्टर ने जोर से कहा, "जागा नहीं शेठ, ऊपर जाओ।"

रमानाथ ऊपर चढ़ गया। पूरी सीट खाली थी, बैठते ही कंडक्टर ने पास आकर कहा, "टिकिट।"

"कोलाबा।"

टिकिट लेकर रमानाथ ने कफ के छेद में अटका लिया और खिड़की की ओर खिसक कर बैठ गया। जब जा ही रहा है तो कहने में कौन-सी लज्जा है। कौन से वे उसे घर बैठे रुपये दे रहे हैं और न वह उनसे उनकी दया का दान मांग रहा है। कार्य कर के मांगने में झिझक कैसी। वे जब उसकी आवश्यकता की ओर आँख उठा कर देखना ही नहीं

चाहते तो उसे उन्हें उनकी आंख में उंगली डाल कर दिखाना होगा।

दूसरे स्टाप पर कई यात्री उतरे, कई चढ़े। रमानाथ खिड़की से बाहर की ओर देखता हुआ बैठा था कि रणजीत ने उसका कन्धा पकड़ कर हिला दिया, "अरे यार बैठने तो दे।"

रमानाथ ने हँस कर कहा, "भाई मैं पहले ही काफी सरक कर बैठा हूँ। लेकिन आज यह मुलाकातों का चक्कर कैसे बढ़ रहा है। कार छोड़ कर बस में बैठने की धुन कैसे सवार हुई ?"

रणजीत पास बैठ कर बोला, "अरे जनाब, जो मजा बस में बैठने में आता है वह कार में नहीं और बस में बैठने के लोभ से ही बन्दा झूठमूठ के चक्कर लगाया करता है। पैसा बाप का, समय अपना; क्यों क्या विचार है ?"

"बाप का नाम निकालेगा।"

रणजीत हंस पड़ा, "नाम निकालूंगा, डुबाऊँगा तो नहीं। यह बता कहाँ जा रहा है ?"

"तिवारी जी के यहाँ।"

"ओह ट्यूशन पर।" फिर धीरे से कहा, "बुढ़ऊ को फंसा ले।"

रमानाथ हंस कर बोला, "बुढ़ऊ नहीं है, हम जैसों से कहीं अच्छा है। इतना सीधा नहीं है, छंटा हुआ घाघ है। नहीं माने तो कभी चक्कर में पड़ कर देख ले।"

"कभी ? अरे तू कहे तो अभी इसी वक्त चक्कर में आने के लिये तैयार हूँ। हम तो यार आसामी देख कर पासा फेंकते हैं। सच कहना रमा, ऊषा के बारे में तेरा क्या विचार है। मैं तो समझता हूँ, लड़की अच्छी है, तू तो पढ़ाता है उसे, कभी प्यार-व्यार की बातें नहीं कीं ?"

नाराज होकर भी रमानाथ मुस्करा दिया, कहा, "काला चश्मा लगाने वाले को सारा संसार ही काला दिखाई देता है। तू अपने जैसा ही सभी को समझता है।"

"मुझ से ही उड़ता है बेटा ? सारा कालेज कहता है।"

रमानाथ का मुख लाल हो गया, "क्या कहता है ? और लोगों की आड़ क्यों लेता है, साफ ही कह न कि तू खुद ऐसा समझता है, शक करने वालों को मैं कैफियत देना भी पसन्द नहीं करता।"

कोलाबा बस स्टाप पर बस रुकते ही रमानाथ उतर पड़ा। पीछे पीछे रणजीत भी उतर आया और उसे पकड़ कर बोला, "नाराज़ क्यों होता है यार। मेरे मन में कभी भी ऐसा विचार आया हो तो जिसकी कहे उसकी सौगन्ध खा सकता हूँ। ज़रा सोच तो देख। तू रोज़ उसे सारे कालेज के सामने पढ़ाता है, घर पर पढ़ाता तो कोई कुछ नहीं कहता पर सामने देख कर तो लोग बातें बनायेंगे ही, पर इसका यह मतलब थोड़े ही है कि जो सब कहते हैं वह मैं भी कहने लगूँगा।"

"कहने के लिये मैं मना नहीं कर रहा हूँ।"

रणजीत आजिजी के स्वर में बोला, "तू बेकार में नाराज़ हो रहा है रमा। मैंने तो यार मजाक किया था और तू उसे सच ही समझ बैठा।"

रमानाथ उसकी ओर गम्भीर होकर बोला, "मज़ाक की भी हद हुआ करती है। ऐसा मजाक मैं नहीं सहूँगा।"

रणजीत ने हाथ जोड़ दिये, "अच्छा बाबा, माफी मांगता हूँ, अब तो ठीक। अब से कभी नहीं कहूँगा।"

रमानाथ इस स्वर को सुन कर हँसे बिना नहीं रहा, "इतनी गरज़ किसलिये ?"

"इसलिये कि तेरे जैसा दोस्त मैं खोना नहीं चाहता।"

"नहीं, इसलिये कि ऊषा की दृष्टि में गिरना नहीं चाहता। तेरे मन में क्या है सो मुझ से छिपा नहीं है और यदि तेरे पिता जी कोई आपत्ति नहीं करें तो इससे अच्छी लड़की मिलना मुश्किल है।"

"लेकिन यार आशा.......... ।"

"आशा गई भाड़ में। एक मनुष्य खराब निकल जाये इससे यह मतलब नहीं निकलता कि उससे सम्बन्धित सभी व्यक्ति खराब हैं।

इतनी संकुचित मनोवृत्ति रखना ठीक नहीं है। अच्छा अभी तो चल दिया, फिर भेंट होगी।'

रणजीत उसका हाथ दबा कर वापस बस स्टाप की ओर लौट पड़ा।

तिवारी जी के फ्लैट तक पहुँचने के लिये रमानाथ को कुछ दूर पैदल जाना पड़ता था। तिवारी जी घर नहीं मिलेंगे यह वह जानता था। उसके पहुँचने के समय वे न जाने कहाँ चले जाते थे। और यदि कभी भाग्य से मिल भी गये तो सिवा व्यावहारिक बात के और कोई बात होने की संभावना ही नहीं थी। फीस से भी बड़ी समस्या इस समय रोटी की थी। कल तक मोदी का बिल नहीं चुकाया तो अगले सप्ताह के लिये उससे कुछ नहीं मिलेगा और सभी को भूख देवता की आराधना करनी पड़ेगी। इतनी जान पहचान किसी से भी नहीं थी जो रुपये उधार मांग सकता। उधार लेते उसे लज्जा भी आती थी। किसी पर अपनी दुरावस्था वह प्रकट क्यों करे। सहानुभूति तो कोई दिखायेगा नहीं, परिहास करने के लिये सब तैयार हो जाएँगे। संसार सम्पन्न के पीछे जाता है, दुःखी का साथ कोई नहीं देता।

धीरे २ सीढ़ियां चढ़कर वह ऊपर जा पहुँचा। 'काल बैल' दबाते ही किवाड़ खुल गया जैसे खोलने वाला रमानाथ की प्रतीक्षा में ही था। आशा किवाड़ के बीच से उसे देखती हुई बोली, "आइये।"

रमानाथ ने उसकी ओर तो नहीं देखा पर हाथ जोड़ कर नमस्ते अवश्य कर ली। रणजीत के मुख से जो सुना था, आशा को देखते ही उसे उसका स्मरण हो आया। मुख के भावों को कुछ भी प्रकट न कर वह अन्दर आकर कुर्सी पर बैठ गया, कहा—"बिशन कहां है ?"

"टैस्ट मैच देखने गया है, कह कर आशा ने उसकी ओर देखा और धीरे से हंस पड़ी। रमानाथ ने आंखें उठायीं, आशा अपलक दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। न जाने कौनसी वेदना कितनी विवशता थी उस दृष्टि में कि वह उसकी ओर देखता ही रह गया, बहुत चाहा कि उसकी ओर से दृष्टि हटा ले पर हटा नहीं सका। आशा के मुख पर

उसकी हंसी में आज इतनी उदासी, इतनी करुणा झलक रही थी कि प्रयत्न करके भी वह उसकी ओर अपलक देखे बिना नहीं रह पाया।

आशा रमानाथ के सामने आकर बैठ गई, मुस्करा कर बोली, "क्या देख रहे हैं।"

रमानाथ आत्मविस्मृत-सा हो कर ही आशा को देख रहा था, उसके टोक देने पर उसे मानों होश-सा आ गया और उसने लज्जित हो कर मुख झुका लिया।

आशा खिलखिला कर हंस पड़ी, "वाह, आप तो लड़कियों से भी अधिक शर्माते हैं।"

रमानाथ का मुख लाल हो गया, लज्जा दबाने के लिये जबरन हंस कर बोला, "कुछ अतिरिक्त न समझियेगा।"

आशा कौतुक से बोली, "समझना तो चाहिये ही। जिस किसी की ओर भी इस प्रकार देखियेगा वह इसे सहज भाव में तो लेगा नहीं, पर आप लज्जित क्यों होते हैं। सौंदर्य है ही इसलिये कि उसे देखा जाये और मैं तो सौन्दर्य के पीछे पागल हूँ। कुरूपता से मुझे घृणा है. वीभत्स से मुझे भय लगता है।"

रमानाथ की स्वाभाविकता लौट आई, आशा की बात सुन कर गम्भीर विरक्ति से कहा, "जी हां, सुन्दरता भला किसे प्रिय नहीं होती पर उसे प्यार करने के लिये आप जैसा होना पड़ता है. समय निकालना पड़ता है पर कुरूपता भी तो सुन्दरता का ही दूसरा पहलू है। उसे प्यार करना क्यों बुरा लगता है आप को ?"

आशा ने झुक कर रमानाथ के हाथ से किताब खींचली और जान बूझ कर रमानाथ के हाथों से अपनी लम्बी पतली उंगलियां छुआ कर उसे एकदम अप्रतिभ करती हुई बोली, "सौंदर्य किसे प्रिय नहीं होता जनाब, जरा अपने अंतर को भी तो टटोल कर देखिये।"

मुख का अप्रतिभ भाव किसी प्रकार दबाकर रमानाथ बोला, सौंदर्य का आकर्षण अपराजित है इसे मैं मानता हूँ पर इससे यह निष्कर्ष

नही निकाला जा सकता कि इस आकर्षण-रज्जु में बंध कर कोई बाहर निकल ही नहीं सकता। यह आकर्षण चिरस्थायी है ऐसा समझ कर मन को धोखा देने वालो की संख्या कम भले ही हो पर नगण्य नहीं है।"

अपनी आंखों की सम्पूर्ण दृष्टि रमानाथ के मुख पर निबद्ध कर आशा ने अपूर्व स्वर में कहा, "बातें तो आप बहुत सुन्दर करते है और इससे यह तो कम से कम प्रकट ही है कि आप सौंदर्य प्रिय हैं। हमारे बड़े २ विद्वानों और मन: शास्त्रियों का कथन है कि सौंदर्य शाश्वत है और उससे प्रेम करना स्वाभाविक। फिर आप अकेले ही इस मान्यता के विपरीत क्यों जाना चाहते हैं ?"

रमानाथ ने हंस कर कह दिया, "समय नहीं है।"

आशा को वाक्य का अर्थ समझ में नहीं आया अत: चकित हो कर बोली, "काहे के लिये ?"

"सौन्दर्य से प्रेम करने के लिये।"

"ओह कह कर हंस दी, बोली—तो आप इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि जीवन की प्राथमिकता और स्वाभाविकता को देखने का भी आप के पास अवकाश नहीं है ? कैसी बातें करते हैं आप," कहते हुए आशा रमानाथ के एकदम पास आकर खड़ी हो गई। रमानाथ ने दृष्टि उठा कर आशा के चमकते हुए नेत्रों को देखा और देखता ही रह गया। उसके चारों ओर रूप का जाल सा फैल गया। कितना गहरा मेकअप था, उसने सोचा कि यदि वह उसके मुख पर हाथ लगादे तो मुख की सुर्खी और पाउडर कदाचित उसके हाथों में भी लग जाएगा। इस पुते हुए मुख के नीचे की चमड़ी कैसी होगी इसकी कल्पना करके उसे अचानक हंसी आ गई।

और रमानाथ को अपने जाल में फंसा समझ कर आशा ने चुपके से कहा, "देखो मत रमा।"

रमानाथ ने भी उसी स्वर की प्रतिध्वनि की, "तो फिर क्या करूँ।"

"सौंदर्य उपभोग की वस्तु है, यह भी क्या तुम्हें अब समझाना

पड़ेगा रमा," कह कर वह उस पर एकदम झुक गई, बोली—"नादान न बनो। शहर में रहकर उसकी रंगीनी से दूर मत भागो। क्षण भर का मोह ही तो है पर तृप्ति तो हो जाती है।"

रमानाथ की सांस घुटने सी लगी थी।

आशा फुसफुसा कर बोली, "क्या तुम्हें पता नहीं रमा कि आधुनिक सभ्य सम्पन्न समाज में सौंदर्य बिकता है चन्द चांदी के सिक्कों के लिये। तुम तो इसे बिना मूल्य प्राप्त कर रहे हो फिर यह हिचक क्यों?"

"अवश्य" कह कर रामनाथ पीछे झुक कर अपने को आशा के स्पर्श से बचाता हुआ खड़ा हो गया और सीधा हो कर स्पष्ट स्वर में बोला, "एक बड़ी अच्छी बात आज आप ने बता दी पर यह आप ने कैसे सोच लिया कि मैं भी उन भाग्यशाली लोगों में से एक हूँ जो बाजार में बिकते सौन्दर्य को खरीदने के लिए कुत्ते के जैसे टूट पड़ते हैं। मैं ने कहा, देवी जी मैं पवित्र सौन्दर्य का उपासक हूँ, वह भला यहाँ कहाँ? अतः आप से क्षमा चाहता हूँ। सौन्दर्य देखने के लिए होता है छूने के लिए नहीं। लाजवन्ती का पौधा देखा है न आप ने, छूते ही मुरझा जाता है और पराग लुट जाने पर कमल अपना आकर्षण खो बैठता है। इन सब उदाहरणों को याद रख सकें तो बड़ा अच्छा होगा। सौन्दर्य के खरीद-दार यहाँ कदम-कदम पर मिल जायेंगे, कोशिश कर देखियेगा।

आशा का मुख वेदना से एक दम विवर्ण हो गया। मुख पर हाथ लगा कर उस ने अपने को रोक लिया अन्यथा उस के अन्तर में दबी हुई सिसकी बाहर निकल पड़ती तो भी कोई आश्चर्य नहीं था। जाने के लिए मुड़ी ही थी कि दरवाजे के बीच में खड़े तिवारी जी को देख कर एक दम ठिठक गई। असीम याचना भरी दृष्टि से उस ने तिवारी जी की ओर देखा और फिर जैसे खरीदी हुई दासी की विवशता से उस ने स्वामी की आज्ञा पालन करने के लिए तीखे स्वर में कहा, "नीच, दगाबाज कहीं के, अकेली युवती देख कर तुम मुझ पर जोर आजमाना चाहते थे?"

तिवारी जी इस बार सामने आ कर बोले, "क्या बात है आशा?"

आशा ने आँखों में कृत्रिम आँसू भर कर कहा, "पापा इस रमानाथ ने मुझे अकेली देख कर······ ···" और इस के बाद के स्वर उस की कृत्रिम सिसकियों में खो गये।

सुनते ही तिवारी जी की आँखें लाल हो गई, "तुम्हारी इतनी हिम्मत ?"

तिवारी जी और आशा का स्वर अन्दर तक जा पहुँचा था जिसे सुन कर हाथ में ग्रास लिए हुए ही ऊषा बाहर निकल कर आ गई। रमा का अपमान और वेदना से विवर्ण मुख देख कर उस के हाथ का कौर जमीन पर गिर पड़ा और मुख से निकला, "क्या हुआ ?"

अवसर पा कर उस से चूक जाना तिवारी जी ने नहीं सीखा था। क्रोध के आवेश में उन्हों ने रमा का गला पकड़ लिया और उसे झकझोरते हुए कहा, "तुम ने अपने आप को समझा क्या है ?"

रमानाथ ने बालक के समान तिवारी जी को दूर कर दिया और व्यंग भरे स्वर में बोला, "अपने को मैं वही समझता हूँ जो आप मुझे अपने हृदय में जानते और पहचानते हैं, लेकिन रहने दीजिये अयोग्य के आगे मर्यादा की दुहाई देने से बढ़ कर परिहास दूसरा नहीं है, अतः वह तो अब नहीं दूंगा पर इतना जरूर करूंगा कि आप जैसे मतलबी और खुदगर्ज यदि राजनीति का पल्ला नहीं छोड़ेंगे तो और कौन पकड़ेगा। पालीटिक्स तो आप के मन बहलाव का साधन है, कमाई का धंधा है और इस रोग को आप ने अपने तक ही नहीं छूत के रोग के समान चारों तरफ फैला दिया है।" फिर आशा की ओर मुड़ कर कहा, "मुझे जानती हैं आप और तिवारी जी जानते हैं। अपने आप से धोखा करना अच्छा नहीं होता इसे कम से कम अवश्य समझ लीजियगा, कभी काम आयेगा। आप की आज की बात मैं जीवन भर नहीं भूलूंगा। इस सौ-दो-सौ रुपयों से आप का कोई काम नहीं अटका रह सकता था पर मेरी तो बहुत बड़ी आवश्यकता इस से पूरी हो जाती। सीधी तरह से भी तो आप मुझ से इन्कार कर सकती थीं, उस के लिए अपने आप को

गिराने और मुझे बदनाम करने का कोई आवश्यकता नहीं थी।"

तिवारी जी ने क्रोध से कहा, "चले जाओ जहाँ से।"

रमानाथ ने प्रत्युत्तर में बिना किसी उत्तेजना के कहा, "अवश्य चला जाऊँगा यद्यपि बिना बुलाये मैं यहाँ नहीं आया था।"

ऊषा एक दम रमानाथ के सामने आ कर खड़ी हो गई और अपने नेत्रों की सम्पूर्ण दृष्टि उस की आँखों में डाल कर बोली, "आज का आप का अपमान आप का नहीं मेरा है, इसी कारण मन में कोई मैल न रखियेगा। अपने पिता और अपनी बहन के लिए मैं कुछ कहूँगी नहीं। जिन पर मेरा जोर नहीं उन से कहने से लाभ भी कौनसा है, पर आप से कहूँगी, जो हुआ है उसे भूल जाइये। इन थोड़े से रुपयों के बिना भी आप अपने को निभा सकते हैं। आप के हाथ जोड़ती हूँ, अब एक शब्द भी न कहें, यहाँ खड़े रह कर और अपमान सहन मत कीजिये।"

रमानाथ ने आगे एक शब्द भी नहीं कहा और बाहर चल दिया।

रमानाथ के बाहर जाते ही आशा बिना किसी की ओर देखे तेजी से मुड़कर अन्दर चली गई।

ऊषा ने कहा, "रमा ने क्या किया है और क्या नहीं, यह मैं नहीं जानना चाहती पापा। यदि उससे वास्तव में कोई अविनय हुआ है तो मैं इसके लिये दीदी के सामने अपराधी हूँ।"

तिवारी जी चिढ़ कर बोले, "मुझे बेवकूफ बनाने की कोशिश मत कर लड़की। जानती है ऐसे हजारों आदमियों को मैंने एक घाट पानी पिलाया है। उसके किये हुए अपमान का फल उसे भुगतना ही पड़ेगा। तू क्या यह समझती है कि वह इतना साधु है जो आशा के साथ बदमाशी पर न उतरा होगा? इस चंचल मनोवृत्ति वाले युवकों को मैं खूब जानता हूँ, हम्बग कहीं के।"

"हम्बग कौन है इसे कैसे कहा जा सकता है पापा," कह कर ऊषा सर्राटे से अन्दर चली गई। तिवारी जी के मुख पर मानों किसी ने गुलाल मल दी थी।

## चौथा अध्याय

अपमानित और तिरस्कृत होने पर भी रमानाथ के मन में विशेष कटुता उत्पन्न नहीं हुई, यह कदाचित इस कारण कि ऐसा ही कुछ होगा, इसका आभास उसे पहले से था। अनपेक्षित घटना ही मनुष्य को अधिक चोट पहुंचाती है, पूर्व ज्ञान होने से घटना का विशेष प्रभाव नहीं हो पाता। हां, एक हल्की सी लकीर मन में अवश्य खिंच जाती है। रमानाथ के मन में रह २ कर तिवारी जी, आशा, और ऊषा के मुख घूम रहे थे। सीढ़ियां उतर कर जब वह नीचे आया उस समय रात्रि की कालिमा कोलाबा की सड़कों को अपने आंचल में समेट चुकी थी। दिन में यहां जितनी चहल पहल रहती है रात होते ही सब ऐसा स्तब्ध हो जाता है मानों वह किसी शहर का हिस्सा न हो कर गांव की सूनी पगडंडी हो।

विद्युत के विशाल दीपों से जगमगाती सड़क पर रमानाथ पेन्ट की जेबों में हाथ डाले चुपचाप चलने लगा। आशा और तिवारी जी के हीन-व्यवहार की स्मृति को पूर्ण रूप से दबाते हुए उसके मानस में ऊषा की वही तरल दृष्टि और आवेग से कंपित ओंठ उभर आये. तो तिवारी जी के व्यवहार से उसे दुःख हुआ था, तिवारी जी के लिये अथवा उसके लिये। रमानाथ को हंसी आ गई। अभिनय करने मे आशा ने भी तो कमाल कर दिया था, ऊषा भी आखिर उसी की

बहन है, वह भला क्यों उसे बेवकूफ बनाने में कसर रखेगी ? उसे सामने से हटा देने का कितना सुन्दर साधन उसने ढूंढ निकाला और वह भी मिट्टी के पुतले जैसा स्वर उसका सुनते ही चुपचाप बाहर निकल आया, अपने अपमान का प्रतिशोध वह भी तो आशा को वैसे ही बदनाम करके ले सकता था। बहुत आदर्शवादी सात्विक व्यक्ति है न ? संसार ऐसों को बुद्धू बनाने से नहीं चूकता। छली के साथ प्रपंची का ही मेल उचित बैठता है। अपनी मान्यताओं को लिये बैठे रहो और दूसरों की चलाई स्वार्थ की चक्की में पिसते रहो। रमानाथ के कान जैसे जलने लगे। ऊषा की बात मानकर उसने अपने को कितना नीचे गिरा लिया था, अब सब के बीच बात फैलेगी और वही व्यक्ति जिन के सामने वह सिर ऊंचा करके चलता था उसका परिहास करेंगे।

बदनामी की इस कल्पना ने उसकी नसें ढीली कर दीं।

अचानक किसी ने उसे टोक दिया, "डु यू वान्ट ए कम्पनी ?

रमानाथ ने मुख घुमाकर देखा। तेईस-चौबीस वर्ष में ही अधेड़ सी दिखने वाली एक युवती जिसने अपने मुख की झुर्रियों को पाउडर की मोटी तह से छिपाने का असफल प्रयास किया था, उसके सामने खड़ी याचना भरी आंखों से उसे देखती हुई कह रही थी, "यू मे गिव एज मच एज यू लाइक।

रमानाथ आंखें फाड़ कर युवती की ओर देखने लगा।

वह कह रही थी, "प्लीज, आई रिक्वैस्ट यू टु सैटल द बिजनेस।

रमानाथ इस बार एकदम युवती के पास आ गया और क्षण भर ध्यान से उसकी ओर देखकर बोला, "क्या चाहती हो ?"

इस प्रश्न की कदाचित युवती ने प्रत्याशा नहीं की थी अतः वह घबरा कर कुछ पीछे हट गई और अटकते हुए बोली, "जी···जी··· मैं:··मैं नहीं···मैं नहीं·········। और रमानाथ ने देखा पसीने की एक मोटी सी धार युवती के पाउडर से लिपे मुख पर एक भद्दी सी लकीर

बनाती हुई उसकी ठोडी पर आकर अटकी और दूसरे ही क्षण नीचे टपक पड़ी।"

कस कर उसका हाथ पकड़ कर रमानाथ उसे एक अंधेरे कोने की ओर घसीट ले गया। उसकी असीम भय से फटी २ आंखों को देख कर रमानाथ का मन हुआ कि जोर से हंस पड़े। कितने बलपूर्वक वह अपने मुख से निकल पड़ने वाली चीख को रोके हुए थी इसका स्पष्ट आभास रमानाथ ने उसके मुख की विकृति से पाया पर उसने उसे छोड़ा नहीं और कोने में खड़ा करके बोला, "सौदा करने निकली पर साहस के साथ नहीं। इच्छापूर्वक शरीर बेचने में जब लज्जा नहीं आती तो बल पूर्वक वही कर्म करने के लिए ले जाने पर भय से मूर्छा सी क्यों आने लगी। लोग कहते हैं कि तुम लोग आदमी की सूरत देख कर उसकी जेब के रहस्य तक पहुँच जाती हो, पर जानती मेरे पास चाय पीने के लिये एक आना तक नहीं है। तुम ने क्या सोच कर मुझ से यह प्रस्ताव किया है, बताओ तो भला ?"

युवती धीरे २ सिसकते स्वर में बोली, "मुझे छोड दीजिये।"

रमानाथ ने और भी कस कर उसे पकड़ते हुए कहा, "क्यों छोड़ दूं मैं तुम्हें बुलाने नहीं गया, तुम स्वयं मेरे पास आई हो। संसार में सब अवसरवादी हैं, आज मेरा समय है।"

युवती ने आर्त स्वर में कहा, "छोड़ दीजिये।"

"किस लिये। तुम अपने को बेचने निकली हो फिर खरीददार मैं होऊं या कोई और इससे क्या फर्क पड़ता है" कह कर रमानाथ ने झटके से युवती को छोड़ दिया।

युवती निढाल सी हो कर खम्भे के सहारे टिक गयी। विद्युत प्रकाश में उसके नेत्रों में चमकते अश्रुकणों और उनसे टपकती असीम निराशा ने रमानाथ को जैसे तोड़ दिया। वही नहीं, संसार के करोड़ों प्राणी धन के अभाव से जर्जरित हैं, बोला—'मुझे क्षमा करना बहन! अभी जो कहा है उसे सच समझ कर मेरे प्रति कोई धारणा न बना लेना। मुझे दुःख है

कि मैंने तुम्हें इतना कटु और अश्लील कहा पर समझ में नहीं आता तुम ने क्या सोच कर मुझ से यह प्रस्ताव किया है। जिनका यह व्यापार है वे तो आदमी को पहचानने में बड़ी प्रवीण होती हैं। लगता है तुमने आज से पहले इस राह पर पैर नहीं रखा है।"

रमानाथ का इतना सहृदय स्वर सुन कर उसकी आंखों से अविरल आंसू बहने लगे किसी प्रकार बोली, "नहीं।"

'तो फिर क्यों तुमने ऐसा किया ?" युवती इस बार रमानाथ पर आंखें गडाकर रुद्ध कंठ स्वर से बोली, "सुनेंगे मेरी कहानी।"

"हां।" युवती ने आंसू पोंछ डाले। कहा, "तो सुनिय। चारों ओर से निराश हो कर ही मैंने इस राह पर कदम रखा था पर भाग्य देखिय, पहला व्यक्ति जो मिला-वह आप थे जो मुझे तो क्या खरीदते, जिनके स्वयं के पास एक भी पैसा नहीं है।"

रमानाथ चलते २ सहज स्वर में बोला, "सो तो है हां पर यों समझो न कि मेरा मेल एक प्रकार से अच्छा ही रहा कि तुम अपनी पवित्रता बनाये रख सकीं अन्यथा जिसकी जेब गर्म होती वह तो आज तुम्हें अवश्य खरीद लेता।"

युवती कटु स्वर में बोली, "मैं अपने को बेचने के लिये ही निकली थी ताकि इतना कमा सकूँ जिससे मैं अपने बच्चों का और अपनी वृद्धा सास का पेट भर सकती। सुन नहीं रहे हैं क्या ?"

रमानाथ स्तब्ध हो कर बोला, "सुन रहा हूँ।"

युवती कहती गई, "मेरा नाम निर्मला है। तीन साल हुए पतिदेवता की तपेदिक से मृत्यु हो गई और आप जानते हैं यह रोग यदि निर्धन के पीछे पड़ जाता है तो उसी एक व्यक्ति को लेकर नहीं जाता, उसके पीछे बच रहने वालों को भी जीवन्मृत सा कर जाता है। बहुत प्रयत्न किया कि किसी प्रकार उन्हें किसी सेनीटोरियम में भर्ती करवादूं। बचते वे अवश्य नहीं पर आज मन में जो वेदना दिन रात घुमड़ती रहती है कि उन्हें अवसर दिया जाता तो कदाचित वे बच सकते थे, यह वेदना

तो मुझे नहीं होती। मन को सन्तोष हो जाता। बहुत कोशिश की पर किसी भी प्रकार उन्हें भर्ती नहीं करवा सकी। मेरा कोई सहारा नहीं था, किसी बड़े आदमी से कोई सम्बन्ध नहीं था, कौन मेरी विवशता और क्रन्दन को सुनता। अस्पताल, ये सैनीटोरियम भी हम जैसे गरीबों के लिये नहीं बने हैं। यहां स्थान पाने के लिये प्रबन्धकों की जेब भरनी पड़ती है भाई, अपने को बेचना पड़ता है और यह मैं प्राण निकल जाने पर भी नहीं कर सकती थी। मैंने अपने को नहीं दिया और मेरे पति को भी स्थान नहीं मिल सका। पास में इतना था ही कहां कि डाक्टरों की मांगें पूरी कर सकती। इलाज करना तो दूर रहा, बिना फीस लिये कोई बात तक नहीं करना चाहता था। सब ओर से निराश हो कर चुपचाप बैठा रही और एक दिन वही हुआ जो दिख रहा था। वे मर गये।"

रमानाथ के मुख पर वेदना के चिन्ह उभर आये।

कभी भी पुरानी न पड़ सकने वाली उस दुखद स्मृति ने निर्मला के नेत्रों को अश्रुओं से भर दिया। रूमाल से आँखें पोंछ कर कहा, 'उन की मृत्यु के बाद आशा तो अवश्य की थी कि किसी भी तरह अपना, बच्चों और वृद्धा सास का पेट भर लूँगी पर वह आशा पूरी नहीं हुई। शिक्षा भी आड़े नहीं आई। जहाँ भी गई लोगों ने मुझे भूखे भेड़िये के समान खा जाना चाहा। पवित्रता का मोह सहज ही में नहीं छूटता। अपने को कैसे नष्ट होने देती। दफ्तर से ले कर लोगों के घरों की नौकरी तक मैं ने की पर सभी जगह वही भ्रष्टाचार दीखा। बच्चे भूख से बिलबिलाते थे और मैं कहीं टिक कर नौकरी नहीं कर पाती थी। कहाँ तक यह सब देखती। अपने को बेचे बिना जब कुछ पा ही नहीं सकती थी तो इतनी तुच्छ राशि पर क्यों निर्भर रहती। सुनती हूँ इस व्यापार में औरतें एक घण्टे के सौ रुपए बना लेती हैं। यह लोभ छोटा-मोटा नहीं है। खोज नहीं देंगे कोई ऐसा जो चन्द चांदी के टुकड़ों के लिए मुझे आज भर के लिए खरीद सके, ताकि कल मैं अपने बच्चों के मुख पर तृप्ति की एक

रेखा देख सकूँ ?'

रमानाथ की छाती पर किसी ने जैसे हथौड़ा मार दिया।

निर्मला शून्य की ओर देखती हुई बोली, "आज मैं ने अपने को बचा लिया तो क्या हुआ, अभाव तो मेरी विवशता को देख कर अपना मुख बन्द कर लेगा। आप ने अवश्य अपनी समझ में उत्तम कार्य किया है पर मेरी ममता का गला घोटने के इस कार्य को मैं कैसे उत्तम कहूँ। किस छाती से मैं सब को भूख से तड़पता हुआ देखूँ। आत्महत्या के सिवा और कोई मार्ग मुझे नहीं सूझता।"

रमानाथ धीरे से बोला, "आत्महत्या करने से बढ़ कर पाप तो दूसरा नहीं है बहन।"

सुनते ही निर्मला कटु स्वर में बोल पड़ी, "पाप और पुण्य हमारे अपने मन की कल्पनायें हैं। जिस कार्य को करने की हमारी हिम्मत नहीं होती वही पाप हो जाता है और फिर अभाव-ग्रस्त का तो प्रत्येक कार्य ही प्रत्यक्ष पाप की सीढ़ी है। अभाव और अत्याचार से जर्जरित काया को ले कर पुण्य की दुहाई देने का मन नहीं होता। सिर पर लम्बे-लम्बे चन्दन के टीके लगा कर मन्दिर की सीढ़ियों को घिसने वाले महात्माओं को मैं ने खूब देखा है जो अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि कहते हैं, हमारे पापों को तारने वाले, हमारी कामनाओं को पूरा करने वाले बनते हैं, यही हैं न महान धार्मिक, पुण्य जिन का सेवक है। महात्मा के भेष में जिन्होंने पाप के रास्ते खोल रखे हैं, हम—आप इन्हीं पापियों को पुण्यात्मा कहते हैं, इन की चरणधूलि से अपना मस्तिष्क अभिषिक्त करते हैं। ऐसा पुण्य ले कर जीने से पाप कर के मरना अच्छा है।"

अभाव और अत्याचार की प्रतिक्रिया मानव के सहज ज्ञान को प्राय: विस्तृत कर देती है। ज्ञान के सुप्त कपाटों को चेतनाशील कर मानव को सहनशक्ति प्रदान करने की शक्ति यदि दुःख में नहीं होती तो वह किन तर्कों से अपने आप को सान्त्वना दे पाता। तर्क कर के समस्या भले ही न सुलझाई जा सके लेकिन इस से एक ऐसी राह अपने सामने अवश्य

खोली जा सकती है जिस में मनुष्य अपने आप को उलझाये रह सके। निर्मला की विवशता रमानाथ के मन में भीतर तक जा कर चुभ गई। अभाव और विवशता उस की ही नहीं; देश के करोड़ों लोगों की स्वाभाविकता बन चुकी है। निर्बल को और भी अधिक मृत बनाने के प्रयत्न में जुटे रहने वाले यदि आँख उठा कर एक दृष्टि इस ओर डाल सकें तो अपने कुकर्मों की लज्जा उन के लिए मुख छिपाने को भी स्थान नहीं छोड़ेगी।

रमानाथ ने वेदना भरे स्वर में कहा, "अनेक कारणों से तुम्हें जो चोट आज पहुँची है उस में कुछ भाग मेरा भी है यह सोच कर मैं कितना लज्जित हो रहा हूँ, कह नहीं सकता, लेकिन मैं कितना अधिक निरुपाय हूँ बहन।"

निर्मला फफक कर रो पड़ी, "कौन सी छाती ले कर मैं घर जाऊँ। तीन दिन से किसी के पेट में अन्न का एक भी दाना नहीं गया है। सास की और बच्चों की आशा से भरी तृषित दृष्टि जब इन खाली हाथों की ओर जाएगी तो मैं कैसे सहूँगी। नहीं-नहीं, बिना कुछ लिए मैं घर नहीं जाऊगी, मुझ से अब और नहीं सहा जाता," कह कर वह तेजी से पलटी और अन्धेरे में खो गई।

विवश, निरुपाय न जाने कितनी अभागिनों को रात के अन्धेरे में अपना सतीत्व बेच कर दिन के उजाले में पवित्रता का दम भरना पड़ता है। दोष समाज का है या व्यक्ति का, कौन जाने। वीभत्स को ढकने की कोशिश में वह और भी उघड़ता जाता है और जब नग्न रूप सामने आ कर खड़ा हो जाता है तो हमारे अपने मुख से क्या निकलता है, केवल छिः, बिना यह जाने कि वह रूप किसी और का नहीं वरन् हमारा अपना ही है। इस प्रत्यक्ष और सत्य स्वरूप को छिपा सके ऐसी शक्ति किसी में नहीं है। दुःख और दैन्य की मार ने जो कर्म करने के लिए आज हमें बाध्य कर दिया है उसका निदान ढूँढे भी नहीं मिलता। सभ्यता का विकास हुआ है, विज्ञान की उन्नति ने असम्भव से असम्भव कार्य को

भी सम्भव कर दिया है। सम्भव यदि कुछ नहीं हो सका है तो वह है सुख से जीना, असम्भव बना रह गया सुख से जीने का अधिकार प्राप्त करना। विवश जीवन करोड़ों व्यक्तियों का प्राप्य है। सुख से जीवन व्यतीत करना न सभ्यता सम्भव बना सकी न विज्ञान ही, फिर क्या होगा इस अणु शक्ति से, इस उत्तरोत्तर बढ़ती सभ्य गति से। आदिम युग का प्रतिष्ठान भी कदाचित इतना नारकीय नहीं होगा। जीवन का सहज और सुन्दर रूप ही ग्राह्य है, असुन्दर को नष्ट करने के सिवा और कोई उपाय ऐसा नहीं जिस से उस का सच्चा स्वरूप जाना जा सके। विज्ञान की प्रगति, सभ्यता का विकास जिसे सम्भव नहीं बना सका उसे सम्भव बनाने की शक्ति आज स्वयं मनुष्य के सिवा किसी में नहीं है।

निर्मला जिस ओर भागी थी उसी ओर अन्धेरे में देखता हुआ रमानाथ स्तब्ध सा कुछ पल खड़ा रहा। अपनी विवशता उसे आज जितनी चुभी उतनी पहले कभी नहीं चुभी थी। कुछ भी सहायता यदि वह उस की कर पाता तो कम से कम आज भर के लिए वह उसे विनष्ट होने से बचा सकता था, पर क्या एक निर्मला ही इतनी निरुपाय है? न जाने कितनी अभागिनें इसी नरक में पड़ी जीवन व्यतीत कर रही हैं। वह किस-किस को बचायेगा और यही सोच कर जैसे उस ने अपने को मुक्त कर लिया।

रमानाथ ने न जाने किस धुन में आ कर बस नहीं पकड़ी, पैदल ही आगे बढ़ गया। अपनी थकान का अनुभव उसे तब हुआ जब उस ने घर के सामने पहुँच कर किवाड़ खटखटाये।

किवाड खटखटाने पर कान्ता ने सांकल खोली और रमानाथ का सूखा हुआ मुख देखकर संकेत से ही पूछा, "क्या हुआ?"

उत्तर में मुख से कुछ भी न कह कर रमानाथ ने अपनी जेबें उलट दीं और निरुपाय सी हंसी हंस कर कमरे में आकर पलंग पर बैठ गया। कान्ता का मुख उतर गया। आज भी रमा रुपये नहीं लाया और फीस जमा करने की अन्तिम तिथि समाप्त होने में केवल एक दिन और

रह गया है। मात्र थोड़े से रुपये न होने के कारण वह परीक्षा नहीं दे सकेगी और इस विचार से उसकी आंखें भर आयीं। उन्हीं तरल नेत्रों से पल भर के लिये रमानाथ की ओर देख कर उसने मुख झुका लिया। उसकी वह वेदना से आच्छन्न पल भर की दृष्टि रमा के विवश मन में हाहाकार सा उत्पन्न कर गई पर उस वेदना को प्रकट न कर उसने स्नेह मधुर स्वर में कहा, "अभाव की वेदना तो हमारा चिरकाल का पुरस्कार है बहन फिर उसके लिये जी छोटा करने से क्या होगा, बना? सोचने से सिवा पीड़ा के और तो कुछ मिलता नहीं। उच्च हूँ न, मजदूरी नहीं कर सकता बोझ नहीं ढो सकता। हम लोगों से तो रोज कमा कर खाने वाला मजदूर कहीं अधिक सुखी है। काम करने के बाद रुपया मिल जाता है, नहीं दिया जाये तो वे बलवा कर सकते हैं, स्वामी को मार सकते हैं पर हमें मुख बन्द रख कर सहना पड़ता है। तेरी किस्मत जो तू इस घर में पैदा हुई। न तुझे खिला सकता हूँ न पहना सकता हूँ। धिक्कार भी तो इस व्यवस्था में परिवर्तन नहीं कर सकता कान्ता।"

कान्ता रोकर रमानाथ से लिपट गई, बोली—"ऐसा मत कहो दादा। खाना पहनना ही सब कुछ नहीं है और जो दो जून पेट भर कर खिला सकता है और पहना सकता है वही उच्च नहीं है। तुम अपनी कीमत नहीं जानते पर मैं तो समझती हूँ। मनुष्य हूँ न, व्यथा के चिन्ह प्रकट हो ही जाते हैं।"

स्नेह से कान्ता का मुख ऊंचा कर रमानाथ ने रूमाल से उसके आंसू पोंछ दिये और उसकी ओर देखता हुआ मन्द २ मुस्कराने लगा। उस मुस्कराहट के नीचे दबी कातरता इतनी स्पष्ट हो उठी कि कान्ता की आंखों से दुगने वेग से आँसू बहने लगे। दादा के प्रति उसके स्नेह, अभिमान और लाड की हद नहीं थी। मां उसकी कितनी उपेक्षा करती थीं यह कान्ता से छिपा नहीं था। और उस उपेक्षा को लेकर रमानाथ कभी दुखी न हो यह उसकी आन्तरिक कामना थी। उसे उसने बहन

का स्नेह और मां की ममता दी थी। मानव के आपसी सम्बन्धों के बीच जो स्नेहदार मिश्रित आकर्षण स्वभावत: ही उत्पन्न हो जाता है वह उसका सबसे बड़ा सहारा होता है। स्नेह और श्रद्धा के बिना हम अपने में कर्म-शक्ति जागृत नही कर सकते। जीवन को सरस बनाने के लिये और आगे बढ़ने के लिये आवश्यक है किसी का सहयोग, किसी का विश्वास और किसी का स्नेह। बिना जल के तो सदाफूली का पेड़ भी मुरझा जाता है फिर हम तो मानव हैं जिनका जीवन ही विश्वास और आदर की भित्ति पर टिका है।

रमानाथ के हृदय के समीप यदि कोई था तो कान्ता। मन उसी की ओर खिंचता है जिसे हम अपना समझ पाते हैं, उसके बालों पर हाथ फिराता हुआ बोला, "रो मत बहन। आँसू हमारे लिये इतने सस्ते नहीं हैं, उनकी भी हमें भारी कीमत चुकानी पड़ती है। और तो हमारे पास कुछ है नहीं, मात्र मन ही तो है, उसे भी दुःख २ कर के मुरझा देने से तो फिर जिया ही नहीं जा सकेगा। फिर कान्ता को एकदम अपने निकट खींच कर कहा, "मनुष्य की सचाई और पवित्रता तक आज बिकने लगी है कान्ता। सुनेगी आज की घटना!"

कान्ता भरे गले से बोली, "कहो।"

और तब रमानाथ ने सारी घटना कान्ता को सुनादी। कान्ता का मुख क्रोध से लाल हो गया, कहा—मात्र उषा की बात मान कर तुम चले आये, सफाई भी नहीं दी, प्रतिशोध भी नहीं लिया? यह तो तुमने मानों अपने आप को दोषी, ही ठहरा दिया दादा चुप के माने स्वीकृति होती है। नहीं दादा, तुन्हें आशा को और तिवारी जी को उनकी अतिशयता समझानी ही पड़ेगी।

रमानाथ छत की ओर देखता हुआ बोला, "आशा, उषा, तू सभी तो एक ही हैं।" फिर कान्ता के मुख पर दृष्टि गड़ाकर कहा—"आशा मजबूर है वासना से, तिवारी जी सत्ता से, उषा सम्बन्ध से और तू स्नेह से। सभी तो किसी न किसी कारण से मजबूर हैं, किसे समझायें और

किस से प्रतिकार लें और वहां इन सबसे बड़ी मजबूरी शायद पेट की है, ममता की है। मां की ममता उसे वेश्यावृत्ति करने तक के लिये बाध्य करदे, इससे बढ़ कर लज्जाजनक बात और क्या हो सकती है कान्ता। और तब उसने निर्मला वाली सम्पूर्ण कथा कान्ता को सुनादी और चुप हो कर उसकी ओर ताकने लगा।

मारे लज्जा और वेदना के कान्ता का मुख झुक गया।

रमानाथ ने धीरे से कहा, "मनुष्य स्वयं नहीं गिरता कान्ता, परिस्थितियां उसे गिराती हैं और एक बार जो गिर जाता है फिर उसके गिरने का अन्त नहीं रहता। दुःख इतना ही है कि गिरे हुए को उठाने का हम प्रयत्न ही नहीं करते या फिर उठाने की हम में शक्ति ही नहीं होती। कुछ भी हो कान्ता, आज की किसी भी घटना के लिये मैं किसी को दोष नहीं दूंगा, हो सकता है मेरी स्वयं की कोई निर्बलता रही हो। जानता हूँ तिवारी जी का मस्तक इस छल को सत्य बना कर सदा ऊँचा ही रहेगा पर इसके लिये अब समाधान ही कौन सा रह गया है। जाने दे, जो हो गया है उसे भूल जाना ही ठीक है, व्यतीत को उघाड़ने से सिवा दुख और असन्तोष के और तो कुछ मिलता नहीं।"

कान्ता क्षण भर चुप रही फिर धीरे से पूछा, "तो अब तिवारी जी के यहां नहीं जाओगे ?"

रमानाथ दृढ़ स्वर में बोला, "नहीं, यह सम्बन्ध अब टूट चुका है।"

"फिर रुपये ?"

"रुपये भी आयेंगे कान्ता। विश्वास कर तेरी और रति की फीस मैं अवश्य कल तक जमा करवा दूंगा।"

कान्ता ने उत्सुकता से पूछा, "सच ? पर रुपये लाओगे कहां से ?"

रमानाथ हंस कर बोला, "कहीं से भी। पहले से ही मत पूछ अन्यथा उत्सुकता का शमन हो जाने पर जी को मृत्यु तुल्य शान्ति से सुला देना पड़ेगा।............मां का बुखार उतरा या नहीं ?"

"नहीं, बहुत अधिक कमजोर हो गई हैं। क्या किसी अच्छे डाक्टर को नहीं दिखा सकते ?"

"डाक्टर सस्ते नहीं होते बहन, उनको पाने के लिये पहले रौप्यन्देवता का भोग लगाना पड़ता है और वह मेरे पास है नहीं," कह कर रमानाथ ने बात उड़ा दी। "रति सो गया क्या ?"

"हां, वह भी सो गया है। कल से ही बहुत रो रहा है कक्षा का सबसे तेज विद्यार्थी है। कहता था हैडमास्टर साहब आधी फीस माफ करवाने के लिये तैयार हैं, आधी कहां से लाये। थोड़े से रुपयों के पीछे मेरा सारा साल खराब हो जायेगा। रो-रो कर उसने आंखें सुजा ली हैं।"

रमानाथ ने धीमे स्वर में कहा, "रति उठे तो कह देना, दादा कल चार बजे से पहले २ उसकी फीस के रुपये अवश्य ले आयेंगे। कितना ही निरूपाय क्यों न हो पर इतना अवश नहीं है कि थोड़े से रुपये भी न पा सके। अच्छा जा, रोटी ले आ। बड़े जोर की भूख लगी है।"

कान्ता जैसे तैयार ही थी, दूसरे ही पल दाल और रोटी ले आई। थाली आगे खींच कर रमानाथ ने खाने में मन लगाते हुए कहा, "तू खा चुकी ?"

कान्ता ने स्पष्ट स्वर में कहा, "हां।"

रमानाथ ने मुख उठा कर कान्ता की ओर देखा, उसने नेत्र नहीं झुकाये। रमानाथ ने धीरे से कहा, "सच कहती है ?"

"हां।"

रमानाथ ने सूखी हंसी हंस कर कहा, "मेरे खाने के पहले आज तक तो कभी खाया नहीं था तू ने और आज खा लेगी ? इस पर क्या तू समझती है मैं विश्वास कर लूंगा ?" कह कर रमानाथ ने थाली आगे खिसका दी। कहा—"तू भी मुझे सच बात नहीं कहेगी सो मैं जानता था। महीने भर से मां को बुखार आता रहा पर उन्होंने भी मुझे नहीं

बताया। तू न जाने कितने दिन से लंघन करती आ रही है। मैं इतना पराया नहीं हूं कान्ता।"

कान्ता ने मुख झुका लिया।

रमानाथ न हाथ धो डाले। जिनके लिये उसने इतना किया है वही उससे छल कर रहे हैं। माँ आज उस स्थिति पर जा चुकी हैं जहाँ से कोशिश करके भी वह उन्हें नहीं लौटा सकता। खाने तक को वह नहीं जुटा सकता तब क्या होगा इस पढ़ाई से, इस उन्नति की कामना से। पढ़ लिख कर भी कुबेर का खज़ाना तो उसे मिल नहीं सकेगा। डिग्री-शुदा लोगों की कमी नहीं है जो साठ सत्तर की नौकरी के लिये मारे-मारे घूमते रहते हैं लेकिन नौकरी फिर भी मिल नहीं पाती। कल से कॉलेज नहीं जायेगा सोच कर वह बोला, "मैं बाहर जा रहा हूँ, किवाड़ लगा लेना।"

कान्ता ने उसे पकड़ लिया, "तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ दादा, भूखे मत जाओ। जो भी थोड़ा बहुत मिलता है उसका लाभ उठा लो, फाके तो किस्मत में लिखे ही हैं पर उन्हें अभी से आमंत्रित मत करो।"

रमानाथ से सहा नहीं गया, "कान्ता, मैं तुझ से बड़ा हूँ, जानती है?"

कान्ता करुण स्वर से बोली, "जानती हूँ दादा। पर तुम्हारा अपमान मैंने नहीं किया है। तुम अशक्त नहीं हो लेकिन भाग्य को पलट नहीं सकते।"

रमानाथ कड़वे स्वर में बोला, "पलट क्यों नहीं सकता। मेरा भाग्य मैं हूँ और जानती है बिना कुछ लिये अब मैं इस घर में नहीं आऊँगा।" और इससे पहले कि कान्ता कुछ कहती, वह तेजी से नीचे उतर गया। अँधेरे में आंखें गड़ाये कान्ता स्तब्ध-सी खड़ी रही। मन उसका इतना निश्चेष्ट-सा हो गया था कि वह कुछ सोच नहीं सकी। व्यथा और भय के मध्य की स्थिति मानव के मन को निर्बल ही नहीं वरन मृत-सा कर देती है। इस स्थिति में मनुष्य कुछ सोच नहीं सकता, समझ नहीं सकता। हृदय की अनुभूति और मस्तिष्क की चेष्टा के बीच

का तारतम्य टूट-सा जाता है। रमानाथ की बात सुन कर कान्ता हतबुद्धि-सी खड़ी रह गई। मुख खोल कर उसे रोक ले, यह भी उससे नहीं हुआ।

"कान्ता !"

कान्ता चौंकी नहीं मानो इस पुकार के लिये वह तैयार ही थी। साधारण भाव से ही पीछे मुड़कर अत्यन्त भावहीन स्वर में कहा, "हाँ।"

लीलावती उम्र से अधिक वृद्धा दिखाई देती थीं। अभाव और दु:ख की मार चेहरे को इतना अधिक झुलसा चुकी थी कि उसके भीतर से उनके असली रूप की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। सबसे अधिक दयनीय दिखाई पड़ते थे उनके नेत्र और उन नेत्रों की ओर कान्ता से देखा नहीं जा सका। नेत्रों से नेत्र मिलते ही उसकी दृष्टि झुक गई, एकदम निर्बल स्वर में बोली, "तुम क्यों उठ आईं माँ, तबियत और भी खराब हो जाएगी।"

लीलावती तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखकर बोलीं, "होने दे। यह बता रमा आया था ?"

चाहती तो कान्ता झूठ बोल सकती थी। और कुछ नहीं भी होता तो भी माँ के जीर्ण तन और मन को चोट खाने से तो वह बचा ही सकती थी पर अभ्यास न होने से मिथ्या मुख से निकल नहीं सका, कहा, "आये थे।"

"कहाँ गया ?"

इतनी देर बाद आंखें उठा कर कान्ता ने लीलावती की ओर देखा और देखते ही वह सहसा अपने पर नियन्त्रण नहीं रख पाई। इतनी देर से दबा हुआ रुदन मात्र छोटे से कारण को लेकर फूट पड़ा। कुछ देर तक रोती रही, फिर बोली—"यह तुम मुझसे मत पूछो मां," और कहते ही अन्दर चली गई।

लीलावती की छाती फटने लगी। रमानाथ और कान्ता के बीच हुई सारी वार्ता वे सुन चुकी थीं। सुनते-सुनते न जाने कितनी बार

उन्होंने सोचा था कि जाकर रमानाथ को शान्त कर आयें, कम-से-कम आज रात भर के लिए उसे रुपयों की चिन्ता से छुटकारा दिला दें पर वे सोच कर ही रह गईं। पैरों की सारी शक्ति जैसे किसी ने हर ली थी। पिछले कितने ही वर्षों से वे रमानाथ से प्रायः नहीं के बराबर ही बोली थीं। उसने भी आगे होकर उनसे बात करने का कभी प्रयत्न नहीं किया था मानों वे घर में थी ही नहीं। वह तो जैसे मशीन के पुतले के समान ही सारा कार्य करता जा रहा था। मां की ममता उसने खो दी है, यह समझ कर उसने फिर कभी उस ममता को पाने का प्रयत्न नहीं किया। बिना अपराध के यदि मां उसे दंड देना चाहती थीं तो वह किससे शिकायत करता। निरपराधी असहनीय पीड़ा झेलने पर भी झुकता नहीं। लीलावती का व्यवहार उसके साथ इतना रूखा, इतना नीरस था कि वह सोचता था, इससे अच्छा व्यवहार तो मनुष्य पराये के साथ भी करता है और इसी कारण मां से हट कर उसका सम्पूर्ण प्यार, हृदय का एकान्त स्नेह कान्ता के चारों ओर लिपट गया। मन इतना निर्बल होता है कि बिना किसी अवलम्ब के आगे बढ़ने का साहस नहीं रख पाता। ममता और स्नेह मनुष्य की अमूल्य निधियां हैं। मां से खोकर उस वस्तु को उसने पाया कान्ता में और वह मां को भूल गया था।

लीलावती समझ कर भी चुप रहीं। रमानाथ को देख कर उनकी छाती पर हथौड़ा-सा पड़ता था। वह आखिर था कौन, उनके हाड़ मांस से बना हुआ ही था। अपने उसी अंश के प्रति इस कठोरता ने उनका अपना हृदय तोड़ डाला था पर उसे सुधारने का कोई उपाय भी तो नहीं रह गया था। उसे देखते ही उनके हृदय में उसे छाती से लगा लेने की एक अदम्य हूक जाग उठती थी फिर भी वे न उससे बोलती थीं और न उसके मन से यह धारणा स्थिर करने का प्रयत्न करती थीं कि वह आज भी उनका सब से अधिक अपना है, उनका प्राण है। इतने वर्षों पुरानी धारणा को वे किस प्रकार उसके हृदय से मिटातीं। उन्होंने

स्वयं ही तो अपने को उससे दूर हटाया था। इसी रमा के लिय वर्षों उनका हृदय चुप-चुप रोया है, उसी के लिये जिसने अपनी जिद के आगे पिता की प्रतिष्ठा का भी ध्यान नहीं रखा था और वही आज रात के अंधेरे में रुपयों का जुगाड़ करने निकला था। असीम कालिमा भरी इस रात्रि को वह कहीं अपनी साथिन न बना ले, इस आशंका से उनके प्राण मुँह को आने लगे। जी करने लगा कि दौड़ कर इधर-उधर कहीं से भी उसे खोज लायें। रुपये के लिये क्या वह आज अपने को बेच देगा, इतना गिर जायेगा? नहीं नहीं वह ऐसा नहीं कर सकता, अपने संस्कारों को इतना नहीं कुचल सकता, लेकिन कहीं वह कुछ कर बैठा तो? और यह सोचते ही उनके पैरों की सम्पूर्ण शक्ति ही जैसे नष्ट हो गई। दीवार का सहारा लेकर वे ज़मीन पर बैठ गईं और अत्यन्त आर्त स्वर में उनके मुख से निकला—रमा!

मां का इतना आर्त स्वर कान्ता ने कभी नहीं सुना था। वह तेजी से बाहर निकल आई और लीलावती से लिपट कर बोली—"क्या हुआ मां, ओह तुम्हें तो बहुत तेज बुखार है।"

लीलावती के मुख से सिवा रमानाथ के नाम और कुछ नहीं निकला।

कान्ता ने रोकर कहा—"दादा ने मेरी नहीं सुनी मां। हे भगवान अब क्या होगा, इस अंधेरे में अब उन्हें खोजूँ भी कहां। तुमने यदि उन्हें जरा भी उन्हें अपना समझा होता तो वे कभी अपने को इतना नहीं खोते। उन्होंने जो भी किया तुम्हारे हमारे लिये ही तो किया है फिर क्यों तुमने अपने को उनसे दूर हटा लिया, क्यों दादा का दिल तोड़ दिया। मां की ममता खो देने जैसा कौन सा कर्म उन्होंने किया था। "मां, मेरे दादा कहाँ गये," कहते हुए उसने लीलावती की छाती पर सिर पटक दिया।

लीलावती की सांस धौंकनी के समान चल रही थी। आग के जैसी जल रही आँखों को कान्ता के मुख पर निबद्ध कर कहा, "रमा कहाँ है, तू जानती है? यहाँ, इस छाती में, तू तो आदमी नहीं है, तेरे पास भी

तो औरत का ही हृदय है फिर भी तू मुझसे यह बात पूछ रही है ?"

कान्ता का रुदन उसके वक्ष में घुट कर रह गया। निर्जीव से स्वर में बोली, "तो फिर तुमने सदा उन्हें अंधेरे में क्यों रखा, क्यों नहीं उन्हें जानने दिया कि माँ का प्यार उन्होंने खोया नहीं है। क्यों तुम ऐसा करती रहीं, बताओ।"

इस 'क्यों' का उत्तर लीलावती के पास था नहीं ऐसी बात नहीं पर जो कारण था उसे वह कैसे कहतीं। एक बार रमानाथ को उन्होंने घृणा से दूर हटा दिया था पति की प्रतिष्ठा के कारण और जब दुबारा वह लौट आया तो उससे प्रति की वही डोर बाँधने में उनके हाथ नहीं उठे। वह यदि ऐसा सोच लेता कि वे केवल उसकी कमाई की इच्छुक हैं, कष्ट सह कर भी वे उसे झूठी प्रतिष्ठा के मोह में पीसना चाहती हैं तो वे क्या करतीं, कैसे उस तक मन की धारणा दूर करती। वह उन्हें पथघातिनी और स्वार्थिनी समझता, इससे कहीं अच्छा यही था कि वह यही समझता रहे कि वे उसे प्यार नहीं करतीं। उसका सहज-स्नेह उन्होंने खो दिया था पर विश्वास तो नहीं खोया था। उनके मुख से कोई भी स्वर नहीं निकला। कान्ता के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने मुख झुका लिया।

उनकी ओर देखतेर कान्ता जैसे उनकी भावना समझ गई। धीरे से उनका हाथ पकड़ कर मृदु स्वर में बोली "चल कर सोओ माँ। ठंडी हवा आ रही है, बुखार में और भी नुकसान करेगी। दादा ऐसा कोई कार्य नहीं कर सकते जिससे हमारा सिर झुक सके। मुसीबतें नई नहीं हैं, हमारे लिए, अभाव भी तो अपरचित नहीं रह गया है। जीवन के साथ-साथ इन्हें भी हमें अंगीकार करना पड़ा है। दादा ने आज तक जब इनके सामने सिर नहीं झुकाया तो क्या अब झुकायेंगे ?"

लीलावती अचानक उसे झकझोर कर बोल उठीं, 'मेरी छाती पर हाथ रख कर कह कि तेरी बात एकदम सच है, कह कि रमा कभी ऐसा काम नहीं करेगा।" कहते-कहते वे कान्ता से लिपट कर बच्चों के समान रो दीं।

## पांचवां अध्याय

कमरे से निकल कर उषा सीढ़ियां चढ़ कर छत पर जा पहुँची। छत पर वह पहले कभी नहीं आई थी, कभी आवश्यकता भी अनुभव नहीं की। कमरे ही इतने ठंडे रहते हैं कि उन्मुक्त वायु की चाह नहीं होती। इसी फ्लेट में उसने जीवन के इतने वर्ष निकाले थे पर आज से पहले वह कभी ऊपर गई हो इसका उसे ध्यान नहीं आया। जाने के लिए वह कभी इतनी विवश हो जाएगी कि इच्छा करके भी पैरों को नहीं रोक सकेगी यह भी नहीं सोचा और जब ऊपर आ गई तो लगा, जीवन के न जाने कितने अमूल्य क्षण उसने कृत्रिमता में घिरे रह कर गंवा दिये हैं। कितना विशाल गगन और कितनी उन्मुक्त वायु थी और कोलाबा की वह चिकनी स्वच्छ सड़क, कितनी गहरी कितनी सुनसान। नीचे देखते-देखते उसके नेत्रों में एक चक्कर सा उत्पन्न होने लगा और उसने पाया कि वह अधिक देर तक नीचे नहीं देख सकती। रेलिंग से दूर हटकर उसने अपने फेफड़ों में हवा भर कर छोड़ी और पैर फैलाकर धूल से भरी जमीन पर बैठ गई। साड़ी मैली हो जाएगी इसका ध्यान आते-आते भी जब वह बैठ गई तो उसे हंसी आ गई। परिणाम की पूर्व कल्पना करके अकर्म करने में भी एक अनोखा-सा आनन्द आता है। हथेलियों को पीछे टिका कर उसने गगन की ओर देखा और फिर हाथों पर सिर रख कर लेट गई। गगन में असंख्य दीप टिमटिमा रहे थे और

उन्हीं दीपों के सरल, मद्धिम प्रकाश में उसकी सुन्दर देह अवश सी पड़ी थी। चारों ओर का सन्नाटा आ कर उस के प्राणों में भरने लगा और तब उसके मुख पर फैली हँसी धीरे-धीरे विलुप्त हो गई। आज यह हो क्या गया। सच क्या रमानाथ क्या ऐसा कार्य कर बैठा है लेकिन यह हो कैसे सकता है। वर्षों से वह उसे देख रही है, पूरे सात माह से वह उस के पास पढ़ रही है। वह यदि इतना ही गिरा हुआ होता तो उसे कैसे छोड़ देता लेकिन और कुछ करना तो दूर रहा उस ने कभी सहज भाव से उसकी ओर आँख उठा कर भी तो नहीं देखा है। जब भी कभी देखना पड़ा है तब मानो विवश हो कर। रमानाथ का यह भाव उसे इतना अधिक प्रिय था कि उषा का मन खिल उठता था। कितन पवित्र कितना सरल युवक है यह। वह ऐसा नहीं कर सकता इसका उसे पूर्ण विश्वास था लेकिन आशा आशा क्या बिल्कुल ही झूठ कह गई है? इस मिथ्या से उस के अपने चरित्र पर भी तो आँच आती है और यह भी तो हो सकता है कि रमानाथ ने उसे देख कर ही आशा से इस प्रकार से कह दिया हो। आशा कैसी भी हो है उसी की बहन जिस ने तन और मन की पवित्रता को आज तक आँच तक नहीं आने दी है। उसके सामने आशा इतना झूठ नहीं बोल सकती और रमानाथ भी तो इतना नीच कार्य नहीं कर सकता, फिर यह सब क्या हो गया। उत्तेजना के मारे वह उठ कर बैठ गई और फिर दूसरे ही पल दौड़ती हुई नीचे उतर आई।

उषा की मां शान्ता ने उसे भाग कर आते हुए देखा तो चकित हो कर बोलीं, "इस तरह भागती हुई कहां से आ रही है?"

"ऊपर से।" कहती हुई वह तेजी से आशा के कमरे में घुस गई और बिना किसी भूमिका के हाँफती हुई बोली, "दीदी, क्या सचमुच रमा ने तुम्हारे साथ कोई निकृष्ट बात की है?' और फिर धप से कोच पर गिर पड़ी।

दो तीन तकियों के सहारे आशा पलंग पर पड़ी कोई पत्रिका पढ़

रही थी। उषा का स्वर सुन कर उसने पत्रिका एक ओर हटा कर रख दी और उठ कर बैठ गई। कुछ पल उषा का उत्तेजना से मुख देखती रही फिर धीरे से बोली --"तू क्यों यह सोचती है कि मैं झूठ बोलूँगी, इससे क्या मेरी मर्यादा पर आँच नहीं आता ?"

उषा ने निर्बल स्वर में कहा —मैं यह नहीं कहती कि तुमने झूठ कहा है पर यह भी तो हो सकता है कि तुम्हें यों ही संदेह हो गया हो। उसने कुछ किया नहीं हो और तुम्हें ऐसा लगा हो मानों करने वाला है। दीदी, मुझे सच बात बता दो, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ।"

आशा ने मन पर छाया सारा बोझ उतार फेंका और हंस कर कहा—"इतना अनुनय किस लिए, कह तो भला।"

उषा का मुख लाल हो गया—"अनुनय केवल इसलिए कि रमा सचमुच में ही इतना नीच है तो दोष उसका नहीं मेरा है कि मैंने उसे इस घर में ट्यूशन दिलाई। वह यदि इतना गिरा हुआ है तो सोच लूंगी संसार में ऐसा नहीं है जिस पर भरोसा किया जा सके। जिसके प्रति मेरी श्रद्धा और आदर की सीमा नहीं थी वही इतना हीन है। यह देखने के बाद भी क्या तुम यह सोचोगी दीदी कि मैं किसी पर भी विश्वास कर सकती हूँ ? रमा ने मेरा अभिमान तोड़ डाला। मुझे उस पर सच-मुच में गर्व था, इसे मैं तुमसे छिपाऊँगी नहीं।" कहते-कहते अचानक उसकी आँखें भर आयीं किन्तु आशा की दृष्टि पड़ने से पहले ही उसने उन्हें पोंछ डाला और सूखी हंसी से मुख भर कर कहा—"संसार में किसी पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। कौन कब कैसा निकल जायेगा पता नहीं। मैं भी कितनी मूर्ख हूँ दीदी जो एक अनजान व्यक्ति पर इतना विश्वास कर बैठी।" कह कर उसने आशा की ओर से मुख फिरा लिया ताकि वह उसका वेदनाच्छन्न मुख न देख सके।

मिथ्या और कृत्रिमता आशा की सहचरी थीं, कहते हुए विशेष दंश भी नहीं होता था। अभ्यास होने पर मिथ्या बहुत सहज रूप में मुख से निकल सकता है। सत्य को सहज भाव से छिपा कर आशा ने कहा—

"भोलापन बहुत जल्दी ठगाई में आता है उषा। रमा पर तूने विश्वास किया यह तेरी भूल थी या बचपन कह नहीं सकती, पर इतना कहूँगी कि कम से कम अब तू उससे कोई सम्बन्ध मत रखना। आज मेरे साथ करने की कोशिश की है कल तेरे साथ भी कर सकता है। विषैले नाग से दूर रहना ही अच्छा होता है।"

दीवार पर टंगे महात्मा गांधी के चित्र की ओर देखती हुई उषा कुछ सोचती रही फिर अपने को सम्भाल कर आशा की ओर देख कर कहा—"जानबूझ कर विषैले नागों से खेलने वालों की संसार में कमी नहीं है पर मैं तुम्हारी बात मानूँगी। सोच लूंगी कि एक सपना देखा था जो टूट गया लेकिन आश्चर्य है दीदी कि ऐसे मनुष्य होते हैं जो ऊपर से इतने पवित्र और अन्दर से इतने पतित होते हैं। रमा का सामाजिक स्तर कुछ नहीं है पर मानसिक स्तर मैंने लाखों से ऊँचा पाया था। एकाएक वह इतना गिर कैसे गया। यह मानव मन की कमजोरी है या परिस्थिति का फेर दीदी।"

उषा के कण्ठ-स्वर में ध्वनित आर्तता और व्यथा आशा को एक छोर से दूसरे छोर तक हिला गई। उसका अपना आचरण कोई माने नहीं रखता था। दबाव में आकर किया हो या अपनी इच्छा से, पर जो कर चुकी थी उसकी एक गहरी टीस उसके अन्तर को कचोट रही थी। कुछ कह सकती, इतनी साधारण परिस्थिति भी उसकी नहीं थी। आरम्भ से जिस समाज के बीच वह रही है वहाँ चरित्र के कोई माने नहीं होते। रूप और रुपये का इतना अभेद्य जाल उसके चारों ओर लिपटा हुआ था कि उससे आगे भी संसार में कुछ और है, यह वह भूल चुकी थी। उषा कभी उसके साथ नहीं चली। मां की ममता का कवच उसका रक्षक था और आशा थी अकेली, तिवारी जी के स्वार्थ साधन का अस्त्र। किसके सहारे और किससे विश्वास पर वह अपने को ऊँचा उठाती। उसके हृदय में जलती वेदना और व्यथा की आग को देखने का प्रयास भी किसने किया था। उसका वाह्य उसका सत्य नहीं था।

सत्य को सबके सामने खोल कर रख सके इसके लिए न उसकी परिस्थिति ही आज्ञा देती और न कोई इस पर विश्वास ही करता, इसी कारण वह अपने को ऐसी किसी भी घटना का माध्यम मान कर दुखी नहीं होती। हो भी तो उस दुःख को प्रकट नहीं करती। जिस प्रकटीकरण से कोई लाभ नहीं है उसका सहारा लेकर अपने को सबके उपहास की पात्री क्यों बनाये। उषा के स्वर से उत्पन्न हुई व्यथा को क्षण भर में ही संवरण कर लेने के बाद कहा, तुझे यह क्या हो गया है उषा। रमा कोई देवता नहीं है, हमीं जैसा हाड मांस का आदमी है। मन यदि उसका कमजोर पड़ ही गया है तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। भूल सभी से हो जाती है उषा।

लेकिन रमा से नहीं होती। हाड-माँस का होकर भी वह हम जैसा कमजोर नहीं है। यह सब क्या हो गया दीदी। उषा से अपने आँसू नहीं रोके गये। आशा को चकित छोड़ कर वह वहाँ से भाग आई और अन्दर के कमरे में जाकर पलंग पर पड़ कर अचानक रो पड़ी। रमा ने यह क्या कर डाला। जिस पर विश्वास होता है वह उस विश्वास को तोड़ दे तो लगता है इसका अनुभव होने से पहले मृत्यु हो जाती तो अच्छा था। विश्वास मनुष्य को देखकर पैदा होता है। रमा पर उसने क्यों इतना विश्वास किया था, यह सोचकर ही उसे आज सबसे अधिक चोट पहुँची है। वह उसका कोई नहीं था, न समाज का, न बराबर के स्तर का, लेकिन न जाने क्यों वह अपने को उसके आकर्षण से बचा नहीं सकी। वह उसे न जाने कैसा लगता था। निस्तब्ध साथी विहीन रात्रि में उसे न जाने किन-किन रूपों में उसने अपने पास पाया है। उसे लेकर सबके अगोचर न जाने कितने स्वप्न बनायें हैं। उसे चिढ़ाने के लिए, खिजाने के लिए जान-बूझकर उसने पेपर बिगाडे, पढाई की ओर से विमुख हुई। मंद-बुद्धि न हो कर भी उसकी झिड़कियाँ खाने के लिए उस ने न जाने कितने कार्य ऐसे कर डाले थे जिन्हें दूसरे के सामने वह कदाचित् कभी नहीं करती, मात्र इस लिए कि वह कुछ तो उस के पास

आये, उसे अपना समझे, पर वह जितना दूर पहले था उतना ही अब भी रहा और आज !

मारे व्यथा के वह निर्जीव सी हो गई। क्यों उसने उस पर इतना विश्वास किया। पर विश्वास करने के लिये उसने उसे बाध्य कब किया था वरन् वह तो सदा ही उससे दूर रहने का प्रयत्न करता रहा है। वह स्वयं उसे लपेटने की कोशिश करती रही है, इसी का दंड मानों वह आज उसे दे गया था। अपने अकर्म का यही पुरस्कार यदि उसे मिलना था तो अब इसमें दुःख और सोच विचार का प्रश्न ही कौन-सा है।

शान्ता देवी चुपके से उसके पीछे आकर खड़ी हो गयी। कुछ पल चुप रहकर देखती रहीं। फिर स्नेह से उसके बालों पर हाथ फिराती हुई बोलीं—"आज इतनी उदास क्यों है उषा।'

आंसू पोंछ कर उषा उठ बैठी। रुदन से भरी लाल आंखें शान्ता देवी पर निबद्ध कर बोली, "किसी पर विश्वास करना क्या अनुचित है मां ?"

शान्ता देवी ने सरल स्वर में कहा, "मैं अनपढ़ ठहरी बेटी, इस प्रश्न का उत्तर कहां से दूँ पर इतना जानती हूँ कि विश्वास करने से ही विश्वास मिलता है। इतना कठोर कोई नहीं होता कि किसी के सहज विश्वास को तोड़ डाले और फिर बिटिया, किसी के मन में अश्रद्धा उत्पन्न करना भी कौन चाहेगा।"

"क्यों नहीं चाहेगा मां। जो किसी की श्रद्धा पाने की कामना ही न करे वह तो श्रद्धा और अश्रद्धा की सीमा से परे है। मन की कामना कितनी असम्भव कल्पनायें कर लेती है और जब उन कल्पनाओं पर यथार्थ की तीखी चोट बैठती है तो बताओ कैसा अनुभव होता है। आज मेरा मन क्या कह रहा है जानती हो माँ ?······माँ मैं चाहती हूँ कि इन्हीं हाथों से रमा का गला घोट दूँ और खुद भी मर जाऊँ। यह उस ने क्या कर डाला।" और अचानक जोर से रो पड़ी, "उस के लिए मेरे मन में कितना गर्व था, इसे वह नहीं जानता, पर जानती है कान्ता और जानता है मेरा मन। उस ने उसी गर्व को आज धूल-सा बिखेर दिया,

मुझे किसी के सामने मुख दिखाने योग्य भी नहीं रखा। यह सब देखने के पहले मैं मर क्यों नहीं गई माँ।"

रमानाथ का दोष कितना और कहाँ तक था यह शान्ता देवी नहीं जानती थीं। उन्हों ने जो भी सुना था वह मात्र तिवारी जी और आशा के मुख से सुना था, लेकिन सुन कर उन्हों ने यह नहीं कहा कि उन की बातों पर वे रत्ती भर भी विश्वास नहीं करतीं। उन्हें वह पहचानती थीं और इतना अधिक जितना वे स्वयं भी अपने को नहीं पहचानते हों। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए वे क्या नहीं कर सकते। रमानाथ पर दोषारोपण करने के भीतर कुछ रहस्य अवश्य होगा, अन्यथा अचानक ही वह इतना बड़ा कुकर्म कैसे कर बैठा। वह नया नहीं है उस की आँखों को धोखा देना इतना सहज नहीं है। वह जो आज फँस गया है वह इस कारण कि उस का सामाजिक और आर्थिक स्तर उन लोगों से बहुत नीचा है। आशा को पहचानती हैं वे। नेत्र बन्द रखने पर भी कान कभी बन्द नहीं रख सकीं। कितना भारी सम्मान है उन का कि वे एक मन्त्री की पत्नी हैं लेकिन यह किसी ने नहीं देखा कि मन्त्री-पत्नी होने से पहले वे एक नारी हैं, नारी जो अपनी लज्जा और मर्यादा की रक्षा के हेतु अपने प्राण तक दे देती है न आशा देवी की नाड़ी तड़पी है, रोई है पर कहाँ बची है लज्जा, कहाँ रही मर्यादा। आशा अपने को जितनी दूर तक ले जा चुकी थी उस का अनुभव कर दुःख और लज्जा के मारे उन का मन होता था कि अपने प्राण दे दें। जिस से उन्हें घृणा थी वही आशा का स्वाभाविक बन चुका था। तिवारी जी का उस पर आवश्यकता से अधिक प्रभुत्व था। जानती थीं, विरोध कर के भी वे कुछ नहीं कर सकेंगी, इस कारण उन्हों ने कभी उसे नहीं रोका। भला या बुरा बनना मनुष्य के अपने हाथ की बात है। अपनी रक्षा करने के लिए स्वयं को प्रयत्न करना पड़ा है। कोई दूसरा गड्ढे से उबारने के लिए आगे नहीं बढ़ता। समझ-बूझ कर भी जो खाई की ओर जाना चाहते हैं उन्हें कोई कैसे रोके ? उषा भी तो लड़की है ; अपनी लज्जा,

अपनी मर्यादा उसे अपने प्राणों से प्रिय है। भंवर नहीं बने हों, तूफान नहीं आये हों, ऐसा तो नहीं है पर उस ने अपनी दृढ़ता की पतवार को क्यों नहीं छोड़ा। आशा के शरीर में जो रक्त है वही उस में भी है और उस पर उन के स्नेह और विश्वास की सीमा भी नहीं है। संसार उस की बुराई करे तब भी वे कभी इस बुराई पर विश्वास नहीं कर सकतीं। उसे वे उस से भी अधिक पहचानती हैं। और रमानाथ, कदाचित् सैंकड़ों बार उन्हों ने कामना की होगी कि वह उन का अपना बेटा होता।

उषा का ललाट चूम कर कहा, "तू रमा को पहचानती नहीं क्या उषा? वह ऐसा कर सकता है इस पर तू ने कैसे विश्वास कर लिया? उस के प्रति अविश्वास करके तो तू अपने को नीचे गिरा रही है। मनुष्य कमजोर होता है यह माना पर गिरने की भी तो सम्भावित सीमायें होती हैं बेटी।"

शान्ता देवी की बात सुन कर उषा को लगा, एक भारी बोझ-सा उस के हृदय पर से हटता जा रहा है। वह सचमुच ऐसा नहीं है, इस पर विश्वास करने के लिए उस के प्राण छटपटाने लगे। दीदी की बातें झूठी हैं। उस का रमा इतना नहीं गिर सकता। व्याकुल विह्वल नेत्रों से आशादेवी की ओर देखते हुए कहा, "रमा के प्रति मेरा विश्वास कभी न टूटे माँ। भविष्य में कभी मैं ऐसी किसी बात पर विश्वास न कर सकूँ, आज तुम मुझे यही आशीर्वाद दो।"

उषा के मुख को छाती पर दबा कर शान्ता देवी ने कहा, "अविश्वास अपने मन की कमजोरी से उत्पन्न होता है बेटी। उस कमजोरी को तू जीत सके और सत्य को पकड़ सके, यही मेरी कामना है।"

माँ की ममतामयी छाती से लगे-लगे उषा ने गहरी साँस ली पर उस में दुःख नहीं था, हृदय को चीरने वाली आह नहीं थी वरन् थी विश्वास की तृप्ति और असीम सुख की अनुभूति। उस की निमीलित

पलकों की ओर देखते-देखते शान्ता देवी का हृदय भर आया। पति, पुत्र, पुत्री किसी की ओर से उन्हें कभी सुख नहीं मिला। तिवारी जी ने उन्हें पत्नी का सम्मान कभी नहीं दिया। विवाह कर लेने के बाद बड़े लड़के ने कभी घर की ओर मुख नहीं किया। आशा के लिए सोचना ही उन्हों ने छोड़ दिया। बिशन अभी इतना छोटा है कि उस पर न कोई बोझ डाला जा सकता है और न कोई आशा ही की जा सकती है। एक मात्र सहारा यह उषा ही रह गई है। चारों ओर से निराश हो कर उन का हृदय इसी पर आश्रित था। अपने प्राणों से अधिक वह थी उन के लिए। अपने नारीत्व की मर्यादा को उस ने कभी खोया नहीं था पर जिस एक स्थान पर उस की दृढ़ता ने उस का साथ नहीं दिया था वह था रमा और यह मानो स्वाभाविक था। मुख झुका कर उन्हों ने उस के निमीलित नेत्रों को चूम लिया। न जाने इस का भविष्य कैसा होगा। वे यदि नहीं रहीं तो तिवारी जी के हाथ में पड़ कर उसे भी आशा जैसी ही बनना पड़ेगा। ईश्वर क्या सचमुच उनके साथ इतना अन्याय करेगा। नहीं; इतना अत्याचार वे नहीं सहेंगी। जीवन भर जलती रहीं, ईश्वर क्या यह थोड़ा-सा सुख भी उन्हें नहीं देगा? उसे छाती से चिपका कर अश्रु विकृत स्वर में बोलीं, "तू कभी मुझे धोखा मत देना उषा। जीवन के जितने भी वर्ष बचे हैं उतने समय के लिए इतनी शान्ति तू मुझे अवश्य दे देना कि मैं यह सत्य अनुभव कर के मरूँ कि एक सन्तान तो मेरी है। जीवन भर जलती रही, अब सहने की शक्ति नहीं है। कभी ऐसा हो ही जाये तो पहले मुझे समाप्त कर देना ताकि यह पीड़ा मुझे कभी दुखी न बना सके।"

उषा उनकी ओर मुख उठा कर बोली, "नहीं होगा मां। तुम्हारी मर्यादा मैं कभी नष्ट नहीं होने दूँगी। तुमसे छिपाने योग्य कुछ भी नहीं है मेरे पास। रमा के लिए मेरे मन में क्या है इसे मैं भी नहीं समझती मां, पर उसे मैं भूल नहीं सकती। तुम इतनी आज्ञा मुझे दे दो कि मैं उससे मिल सकूँ लेकिन यदि यह भी तुम नहीं चाहोगी तो मैं वचन देती

हूँ, उससे बोलना भी छोड़ दूँगी।"

उषा के उस असहाय से मुख को देख कर शान्ता देवी के नेत्र भर आये। रमा पर उन्हें अत्यधिक विश्वास है। तिवारी जी के इस प्रपंच के पीछे कोई रहस्य है और वह कहीं उसके लिए घातक सिद्ध न हो जाये। उषा की दृष्टि में उसे गिराना ही एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता। धन-दौलत भी उसके पास नहीं है। तब क्यों उन्होंने ऐसा किया है। मन ही मन चंचल होकर कहा, "समय देखकर चलना पड़ता है उषा। अत्याचार यह यदि है तो होने दे पर रमा से तू अब सम्बन्ध मत रखना। उसका परिवार है। उसे कुछ हो गया तो वे लोग किसका मुख देख कर जियेंगे। समझती हूँ इतना करना सरल नहीं है पर बेटी दुःख के बिना सुख के अर्थ भी कहाँ समझ में आते हैं।......नहीं कर सकेगी?"

"कर सकूँगी माँ।" कह कर उषा ने जैसे सारा बोझ उतार कर फेंक दिया।

पर्दा हटा कर तिवारी जी अन्दर आकर कुर्सी पर बैठ गये। शान्ता देवी उषा के पास से हटकर दीवार की ओर मुख कर खड़ी हो गयीं और सबकी ओर से इस प्रकार उदासीन हो गयीं मानो कुछ हुआ ही न हो। उषा रूमाल से मुख पोंछ कर स्वस्थ-सी होकर बैठी रही। तिवारी जी ने बिना किसी भूमिका के कहा "रणजीत को जानती है।"

"सुन्दरलाल साहू का लड़का? वह तो हमारे कालेज में ही पढ़ता है।"

"हां वही। नामी सेठ का लड़का है और तुझे जानता है। मैंने उसे परसों चाय के लिये बुलाया है। जरा ठीक से व्यवहार करना। औरों के जैसा रूखा व्यवहार उससे नहीं होना चाहिए।"

उषा के जी में आया कि मना कर दे। उनके हाथ की कठपुतली वह बन नहीं सकती। इसे वे अब तक समझ अवश्य गये होंगे फिर भी उससे इस प्रकार के प्रस्ताव करने में उन्हें पता नहीं क्या मिलता है। लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।

जेब से सोने का सिगरेट केस निकाल कर तिवारी जी ने एक सिगरेट मुख में दबाया। लाइटर से सिगरेट जलाकर जोर का एक कश खींचा और धुआँ कमरे में छोड़ दिया। थोड़ी देर तक सिगरेट के कश खींचते रहे। उषा के झुके मुख से उसके भावों का पता लगाना असंभव था। शान्ता देवी दीवार की ओर मुख किये ध्यान से कैलेंडर देखने में लगी थीं।

तिवारी जी शून्य को लक्ष्य कर बोले, "मैं समझता हूँ मेरी किसी भी व्यवस्था में दखल देने की आवश्यकता तुम लोगों को नहीं होगी। देखो यह संसार है और हमें संसार के साथ चलना है। आज की व्यवस्था मनुष्य को अकेले जीने नहीं देती। सबसे विलग होकर जिया नहीं जा सकता। मैं क्या कहना चाहता हूँ सो तुम समझ गयी होंगी।"

उषा ने स्वर से कुछ प्रकट नहीं होने दिया, कहा, "जी।"

स्वर में अनावश्यक कठोरता भर कर तिवारी जी ने कहा, 'मुझे आशा है तुम किसी को भी असंतुष्ट होने का अवसर नहीं दोगी।"

"जी।" कह कर उषा वहां से उठकर चली गई।

उषा के जाने पर शान्ता देवी ने मुख फिराया, कुछ पल चुप होकर देखती रहीं फिर धीरे से कहा, "इस व्यवस्था का अर्थ क्या है?"

तिवारी जी असन्तुष्ट भाव से बोले, "कुछ तो है ही, आज नहीं चार दिन बाद में समझ आ जाएगा। पर इतना सुन लो कि तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा। उषा को तुमने इतना सिर न चढ़ाया होता तो आज मुझे यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं होती कि तुम लोग मुझसे विरोध की कोशिश मत करना, इसका कोई फल नहीं होगा। बिना सोचे समझे मैंने कभी कोई कार्य नहीं किया है और जो सोचा है उसे पूरा भी किया है। विरोध के अवसर अब मत देखो। उषा को तुम्हें मेरी योजना में सहायता करने के लिए तैयार करना ही पड़ेगा।"

शान्ता देवी तनिक कटु होकर बोलीं, "क्यों, आशा से काम नहीं चला।

तिवारी जी तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देख कर बोले, "शान्ता, मेरा विरोध करके किसी ने कोई अच्छा फल नहीं पाया है।"

"विरोध का रास्ता आपने खुला ही कब रखा है। मेरा गला आप उसी दिन घोट चुके हैं जिस मैं दिन इस घर में आई। मैं हूँ कौन जो आप के विरुद्ध चलने का साहस करूँगी।"

क्रोध से तिवारी जी का मुख लाल हो गया।

इस बार शान्ता देवी की आँखों में आँसू भर आये, कहा, "विरोध करने का न साहस है न पर इतनी दया में आपकी माँगती हूँ कि उषा को मुझसे मत छीनियेगा। उसे खोने से पहले मैं मर जाना चाहती हूँ। जीवन भर जलाया है, इन थोड़े से वर्षों का यह सुख मुझसे मत छीनिये।" कुछ क्षण वहीं खड़े होकर आँखें पोंछती हुई वहाँ से चली गयीं।

तिवारी जी उनके जाने की दिशा में देखते रहे।

## छठा अध्याय

नीचे उतर कर रमानाथ तेजी से सामने की गली में घुस गया। रात कितनी हो चुकी थी इसे जानने का कोई उपाय नहीं था। गली में अँधेरा अवश्य नहीं था पर एकदम सुनसान होने के कारण कुछ भय-सा लगता था। कुछ आगे बढ़ कर वह एक बिजली के खम्भे के नीचे खड़ा हो गया। इधर उधर के सन्नाटे से अनजान उसके नेत्रों में रुपय ही रुपये घूम रहे थे। किसी भी प्रकार उसे आज सौ रुपयों की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी पर इतने रुपये एकदम आएँगे कहाँ से। जेब में फूटी कौड़ी नहीं है, मोदी का बिल अवश्य है। मोदी का ध्यान आते ही उसे अपनी तेज भूख का अनुभव हुआ। रोटी तक वह नहीं जुटा पाता। कान्ता, रतिनाथ, मां, कदाचित् सभी भूखे हैं। रतिनाथ रोते २ सो गया है। कान्ता ने झूठ तो नहीं कहा था कि वह फीस न मिल सकने के कारण रोया था। भूखे पेट में रोटी डालने की आवश्यकता सबसे बड़ी है। डिग्री के बिना चल सकता है रोटी के बिना नहीं। इस मोह में वह नहीं फंसता तो आज यह स्थिति तो पैदा नहीं होती कि घर भर में सबको लंघन करना पड़ा और अब जब कि वह पढ़ गया है तो उसे हीन कार्य करने में लज्जा आती है। सिर पर बोझा ढोने के लिये हाथ नहीं उठते। मन की कमजोरी चाहती है कि कलम घिसने की नौकरी मिले,

चाहे उसमें फंस भूखे पेट क्यों न सोना पड़े।

दो तीन व्यक्ति रमानाथ को ध्यान से देखते हुए निकल गये। जब तक वे दिखाई देते रहे वह उसकी ओर देखता रहा। मन में कुछ भय-सा उत्पन्न हुआ। सुनसान रात्रि में यहां जो न हो जाये कम है। सोचा वापस लौट जाये, पर फिर ध्यान आया वह कान्ता से कह आया है कि बिना रुपये लिये घर में नहीं आएगा। ये सब उससे इतना छल क्यों करते है। मां जो दिन पर दिन सूखती चली जा रही हैं, उसे वह समझता नहीं, ऐसा शायद कान्ता सोचती है। न हो मोह, कर्तव्य तो है। रोग इतना न बढ़ाया होता तो उसे इतनी वेदना नहीं होती, पर अब तो वह इतना निरुपाय है कि दवा के लिये दो पैसे भी व्यय नहीं कर सकता। जन्म देकर भी उन्होंने उसे अपनी सन्तान नहीं समझा। फीकी-सी मुस्कराहट उसके मुख पर बिखर गई। उसके जितना अभागा भी दूसरा नहीं होगा। अभाव उठते हैं, वेदनायें पनपती हैं लेकिन मनुष्य क्या इतना हीन हो जाता है कि जननी का ममत्व भी न पा सके ? अपने लिये उसने कभी किसी से कुछ नहीं मांगा, कुछ नहीं चाहा। जितना किया इन्हीं के लिये किया। क्या नहीं, यह रक्त की मांग थी और मां समझती थीं उसने पिताजी की मर्यादा को नष्ट किया है। देख नहीं रही हैं क्या वे कि आज के संसार में झूठी मर्यादा को लेकर नहीं जिया जा सकता। जीने के लिये रोटी चाहिये। रहने के लिये घर चाहिये और पहनने के लिये वस्त्र चाहिये और इन सब के लिये चाहिये रुपया। उसकी आवश्यकता इस युग का प्रमुख स्वरूप है। सरलता से वह अपने अधिकार का द्रव्य नहीं पा सका, इतना परिचय किसी से नहीं कि कहीं से उधार ला सके और वह चाहता है कि अपने आदर्श को लेकर वह सिर ऊँचा कर के चले।

पहले वाले व्यक्ति वापस लौटे। दो चुपचाप आगे निकल गये पर एक रमानाथ को टक्कर देता हुआ कुछ कदम आगे चला और फिर पलट कर उसके पास आकर खड़ा हो गया। रमानाथ ने चाहा कि आगे

बढ़ जाये पर व्यक्ति ने उसका कन्धा पकड़ कर उसे आगे बढ़ने से रोक लिया और चुपके से कहा, "ठहर जाओ।"

रमानाथ ने आगे बढ़ा हुआ कदम रोक लिया। आगे निकल जाने वाले वे दोनों व्यक्ति भी अब इन दोनों के पास आकर खड़े हो गये और उसे चारों ओर से इस प्रकार घेर लिया मानों वह भी उन्हीं में से एक हो। मन का भय बाहर प्रकट न कर वह प्रश्न भरी दृष्टि से तीनों की ओर देखने लगा।

प्रथम व्यक्ति ने धीरे से कहा, "भागने या चिल्लाने का प्रयत्न मत करना अन्यथा मारे जाओगे। जो भी तुम्हारे पास है वह चुपचाप हमारे हवाले कर दो।"

रमानाथ इस बार निर्भय होकर मुस्करा दिया। कमीज की जेब से मोदी का बिल निकाल कर पूर्वोक्त व्यक्ति के हाथ पर रख कर कहा—"पचास रुपये साढ़े नौ आने का बिल है।"

"मजाक मत करो, जो है चुपचाप दे दो।"

"दे तो रहा हूँ भाई। चाहो तो बिल ले लो और कल उसका भुगतान कर देना। कम से कम एक चिन्ता से तो बच ही जाऊँगा।"

इस बार व्यक्ति ने उसे ध्यान से देख कर कहा, "रुपया चाहिये।"

"अवश्य।"

"कितना ?"

"कितने का हिसाब नहीं है। आवश्यकता इतनी अधिक है कि जितना भी मिले कम है फिर भी सौ में कदाचित् काम चल जाएगा।"

"कहां से लाओगे ?"

रमानाथ हंस दिया, बोला, "यही तो सोच रहा हूँ। डाका डालने का अभ्यास नहीं है और जुआ खेलने के लिये पैसा नहीं है। किसी से इतनी जान पहचान भी नहीं कि रुपये उधार मिल सकें।"

"मेरे साथ आओ।"

रमानाथ प्रतिवाद करता इसके पहले ही व्यक्ति उसका हाथ पकड़ कर उसे गली से बाहर ले आया। मोड़ पर बेबी आस्टिन खड़ी थी जिसे रमानाथ ने आते समय नहीं देखा था। व्यक्ति ने कार का दरवाजा खोल कर कहा—"बैठो।"

रमानाथ को बैठना पड़ा। वह कुछ हतबुद्धि सा हो गया था। भय के स्थान पर विव्हल उत्सुकता का भाव उसके नेत्रों में था। कार कब चली और कहाँ जाकर रुकी यह उसने नहीं देखा। उसकी चेतना तब लौटी जब व्यक्ति ने कार का दरवाजा खोल कर कहा, "मेरे साथ आओ।"

रमानाथ यन्त्र-चालित पुतले की भांति व्यक्ति के पीछे किसी फ्लैट की सीढ़ियां चढ़ने लगा। लिफ्ट का प्रयोग जानबूझकर नहीं किया गया था। तीसरी मंजिल पर पहुंच कर व्यक्ति ने दीवार पर लगी घंटी को दबा दिया। दूसरे ही क्षण किवाड़ खुल गये। नीले रंग की धीमी २ रोशनी दोनों के मुख पर आकर पड़ी और उस रोशनी में रमानाथ ने देखा, एक अति सभ्य और आधुनिक दीखने वाला व्यक्ति सोफे पर बैठा सिगरेट पी रहा है।

"चले आओ।"

रमानाथ के अन्दर आते ही कमरे के किवाड़ बन्द हो गये। उसके साथ आने वाला व्यक्ति अपने स्वामी से कुछ परामर्श करके वापस कमरे से बाहर चला गया। कमरे में रमानाथ और वही सभ्य-सा दीखने वाला व्यक्ति रह गया। उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ सभ्य वेश में संसार को छलने वालों की कमी नहीं है। अतः वह भयभीत नहीं हुआ, शान्ति से पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठ गया।

"मेरा नाम जानते हो ?"

"कैसे जान सकता हूँ।"

"मुझे शर्मा कहते हैं, निरंजन शर्मा," कह कर वह उठा। अलमारी के किवाड़ खोल कर उसने एक बोतल और कांच के दो गिलास निकाले और

मेज पर रख दिये। बोतल का काग खोल कर उसने हल्के पीले रंग का थोड़ा २ तरल पदार्थ दोनों गिलासों में भर दिया और रमानाथ से पूछा, "सादी पिओगे या सोडा मंगवाऊँ।"

रमानाथ की नासिका में अल्कोहल की तीखी सुगन्ध भर गई। टेढ़ी दृष्टि स बोतल की ओर देखता हुआ बोला, "आप कदाचित् जानते नहीं महाशय कि ऐसी रईसी हम लोगों के लिये इतनी सुलभ नहीं है अतः क्षमा चाहता हूँ।"

"शर्मा हंस पड़ा, बहको नहीं मेरे दोस्त। मैं भी उन दिनों को नहीं भूला हूँ जब मैं एक-एक पैसे के लिये तरसा करता था। अवश्य ही सीधी राह चल कर मैंने यह धन नहीं बटोरा है। भलमनसाहत के पैर चूम कर तो दो जून भी खाने को नहीं जुट पाता। तुम्हारी बातें मैं सुन चुका हूँ और सुन कर चौंकना नहीं, मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम रमानाथ हो।"

रमानाथ ने अपना चौंकना शर्मा पर स्पष्ट नहीं होने दिया, "मेरा नाम आप जानते हैं यह मेरा सौभाग्य है और इसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन श्रीमान् दुःख उठाने पर भी मैं एक भला आदमी हूँ और यह भी आप जानते होंगे कि मुझे न तो संसार को ठगने की ही विद्या आती है, न जुआ ही मैं खेल सकता हूँ। धन मुझे अवश्य चाहिये पर उसे बटोरने के और भी उपाय हैं। कोई और राह सुझाइये।"

शर्मा ने दोनों पैगों का सदुपयोग कर गिलास हटा दिया, कहा, "लोगों के बीच शराफत का चोला पहन कर रहो और कालिमा में उन्हें ठगो। इससे उत्तम राह पैसा बटोरने के लिए दूसरी नहीं है। मैं जानता हू तुम्हारा परिवार है, आगे बढ़ने की तुम में आकाँक्षा है। बताओ बिना रुपये के तुम कैसे अपनी कामनायें पूरी करोगे ? क्या तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा भी समाज में सम्मान हो, सम्पन्न परिवार हो ?"

"चाहता क्यों नहीं हूँ श्रीमान्, लेकिन उसे प्राप्त करने के और भी उपाय हैं।"

शर्मा ने कुटिलता से हंस कर कहा, "एकाध तो बताओ दोस्त।"

"मैं नौकरी करूँगा···।"

"और चाहते ही तुम नौकरी पा जाओगे ?" उस की बात काट कर शर्मा बोला, "नौकरी मिलना इतना सीधा नहीं है और फिर उस में तुम्हें मिलेगा भी क्या। जीवन के अन्त में शायद पाँच-सौ पर भी नहीं पहुँच सकोगे। हमारा साथ दे कर तुम एक रात में हजारं बना सकते हो। मैं सोचता हूँ मेरा प्रस्ताव बुरा नहीं है ?"

रमानाथ समझ रहा था कि वह फंस गया है। उसके ललाट पर पसीना चुहचुहा आया। कमीज की आस्तीन से पसीना पोंछ कर बोला, "और यदि मैं आप का प्रस्ताव स्वीकार नहीं करूँ तो ?"

शर्मा ने निश्चित स्वर में कहा, "सो तो हो ही नहीं सकता दोस्त। मैं जिसे अपना मित्र बनाना चाहता हूँ उसे मेरा मित्र बनना पड़ता है। तुम्हें धन की बहुत आवश्यकता है और तुम्हारी एक सुन्दर सी बहन भी है !"

रमानाथ के हाथ बर्फ से ठण्डे हो गये।

शर्मा ने कहा, "मेरे साथ धोखा करने का प्रयत्न मत करना। तुम सीधी राह चलते रहे तो तुम्हारा बाल भी बांका नहीं होगा अन्यथा····," कहकर शर्मा ने कोई गूढ़ इंगित किया। रमानाथ स्तब्ध हो कर बैठा रहा। अपने लिये उसे चिन्ता नहीं थी भय था कान्ता के लिये। जिस बहन को वह प्राणों से अधिक प्यार करता है उसको कुछ हो गया तो क्या वह किसी को भी मुख दिखाने के योग्य रहेगा ? शर्मा ने कहां से पता पाया है उसका। ना करता है तो कान्ता को खोना पड़ेगा और हां करने में उसे जीवन भर की मर्यादा की कमाई लुटा देनी पड़ेगी। संसार के बनाये हुए आदर्शों पर वह भले ही नहीं चले पर उसकी अपनी जो मान्यताएं हैं उन्हें छोड़ देना भी तो सरल नहीं है। पसीने से उसका सारा कमीज भीग गया।

"स्वीकार है ?"

रमानाथ के मुख से बोल नहीं फूटा।

शर्मा उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोला, "तो हम आज से तुम्हें अपने दल में शामिल कर रहे हैं।"

सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की आहट आ रही थी। शर्मा मुस्कराकर बोला "जिन्हें तुम अब देखोगे उन्हें देख कर तुम्हें कैसा लगता है, सो छिपाना नहीं।"

आहट सीढ़ियों के ऊपर होती हुई किवाड़ के पास आकर रुक गई।

शर्मा ने बैठे २ ही कहा, "चले आओ, किवाड़ खुला है।"

दूसरे ही क्षण किवाड़ खुल गये और जिन दो व्यक्तियों ने कमरे में पैर रखा उन्हें देख कर रमानाथ बुरी तरह चौंक पड़ा। आगे वाला पुरुष था शहर का एक गण्यमान्य व्यक्ति, प्रसिद्ध मंत्री, जिसके साथ रमानाथ अभी २ कुछ आलाप कर आया है। वह और कोई नहीं तिवारी जी थे और उनके पीछे थी आशा, जिसका मुख आवश्यकता से अधिक पीला था और जो रमानाथ को देख कर तिवारी जी के समान आश्चर्य से स्तब्ध नहीं हुई वरन् धीरे से मुस्करा दी।

रमानाथ का मुख फटा रह गया। तिवारी जी बहुत अव्यवस्थित से हो गये थे और शर्मा कुटिलता से मुस्करा रहा था।

आशा ने आगे आकर धीरे से कहा, "हलो रमा।"

रमानाथ की आँखों में अचानक हिंसक भाव जाग उठा, धीरे से पर विष भरे स्वर में कहा, "झूठा दोष लगा कर अपमानित करने के बाद भी चैन नहीं मिला आप को। आप लोग इतने नीच और पतित हैं इस की कभी कल्पना भी नहीं की थी।"

आशा के मुख की मुस्कराहट विलुप्त नहीं हुई, "संसार में अभी तुम ने देखा ही क्या है रमा। संसार इतना भला और भोला नहीं है जितने तुम हो। यहाँ सभी एक दूसरे पर जीते हैं।" इस से आगे वह कुछ कहती कि शर्मा ने पास आ कर कहा, "आज तुम जा सकते हो रमानाथ। और फिर कुछ रुपये जबरदस्ती उस के हाथ में ठूंस कर बोला, "माँ की

बीमारी और मोदी का बिल चुकाने के लिए इतने आज लो, बाद में और दूंगा। आशा इन्हें रास्ता दिखाओ।"

आशा ने रमानाथ का हाथ अपने बर्फ जैसे हाथों में पल भर के लिए लिया, दबा कर छोड़ दिया और कहा, "चलो रमा।"

रमानाथ प्रतिवाद भी नहीं कर सका। उसके बाहर निकलते ही किवाड़ बन्द हो गये और तब वह बिना किसी की ओर देखे तेजी से सीढ़ियाँ उतर कर नीचे जा पहुँचा। सड़क पर पहुँच कर उस ने शान्ति की सांस ली। शर्मा के दिये हुए नोट उस की मुट्ठी में बन्द थे। उन की ओर ध्यान जाते ही उसे लगा कि यह अपने हाथों में नोट नहीं बल्कि किसी विषैले नाग को पकड़े हुए है। घबरा कर उस ने नोटों को जमीन पर फेंक दिया। नोट सड़क पर बिखर गये। वह कुछ पल फैली आँखों से उन नोटों की ओर देखता रहा फिर झुक कर उस ने उन्हें समेट लिया और इतनी जोर से दबाया कि वे कड़कड़ा उठे। शर्मा और तिवारी जी। कौन हैं ये लोग। उस के बारे में इतनी बातें शर्मा को मालूम कैसे हुईं। तिवारी जी नहीं कह सकते इस का उसे विश्वास हो गया था। उसे देख कर वे जितने अधिक अस्थिर हो उठे थे, उस से बात करने का प्रयत्न तक उन्हों ने नहीं किया था। अवश्य ही उसे वहाँ देखने की उन्हों ने आशा नहीं की होगी। फिर इस शर्मा से उन का क्या सम्बन्ध है। और आशा को उस के यहाँ लाने में क्या रहस्य है। बहुत कोशिश करने पर भी उसे यह रहस्य समझ में नहीं आया, यह अवश्य सोचा कि वह स्वयं भी इन लोगों के चक्कर में फंस गया है और उस से निकलना सरल नहीं है। एक बार सोचा कि पुलिस में जा कर सारी बातें कह दे लेकिन कहने से कान्ता पर कोई अत्याचार हुआ तो और इस विचार ने उस का मत बदल दिया।

उस ने ध्यान से अपने चारों ओर देखा और पाया कि वह धोबी तालाब के आसपास ही कहीं है। किस फ्लैट से वह उतर कर आया है इस का पता नहीं चल पाया। अचानक तभी पुलिसमैन ने आ कर

टोक दिया, "यहाँ क्यों खड़े हो सेठ। वक्त अच्छा नहीं है अपने घर जाओ।"

तभी एक कार दोनों के पास से सर्र से निकल गई। रमानाथ की उत्सुक दृष्टि ने आरोहियों को पहचान लिया। तिवारी जी और आशा क्यों आये और क्यों इतनी जल्दी वापस चले गये। उस की समझ में कुछ नहीं आया। वहाँ पर अधिक देर तक रुकना उचित न समझ कर वह तेजी से पलटा और पल भर में पुलिसमैन की दृष्टि से ओझल हो गया। गिरगांव के मोड़ पर पहुँचते ही उस ने भागना आरम्भ कर दिया और सीधा घर के सामने जा कर ही रुका। भागने के श्रम और घटनाओं की गति के कारण इस जाड़े में भी वह पसीने से तर था। दरवाजे के सामने जा कर हाँफते हुए धीरे से पुकारा, "कान्ता।"

दूसरे ही पल कान्ता ने किवाड़ खोल दिये, "कहाँ चले गये थे दादा ?"

धौंकनी के समान चल रही साँस को वश में करने का प्रयत्न करते हुए रमानाथ ने कहा, "बताता हूँ, सब बताता हूँ। किवाड़ बन्द कर दे और एक गिलास पानी ले आ," कह कर वह खाट पर बैठ गया।

किवाड़ बन्द कर के कान्ता जल्दी से पानी का गिलास भर लाई। एक सांस में सारा पानी पी कर रमानाथ निढाल सा हो कर खाट पर लेट गया। कान्ता ने भयभीत स्वर में पूछा, "कहाँ गये थे बताते क्यों नहीं ?"

"रुपयों का जुगाड़ करने, यह देख," कह कर उस ने नोटों को उछाल दिया और वे ताश के पत्तों के समान कमरे भर में बिखर गये।

कान्ता घुटे हुए स्वर में बोली, "कहाँ से लाये इतना रुपया ?"

रमानाथ ने कान्ता के सम्बन्ध की बात छिपा कर सारी घटना उसे सुना दी। तब मारे क्रोध और वेदना के कान्ता का मुख लाल हो कर राख के जैसा फीका पड़ गया। वही रमानाथ जिस के लिए उस ने अभी माँ से कहा था कि वह कोई भी हीन कार्य नहीं कर सकता अब आतंकवादी,

दुराचारी पुरुष के रूप में लोगों में विख्यात होगा। कहाँ रह जायेगी फिर मर्यादा और कैसे पूरा होगा उस का माँ को दिया आश्वासन। रीती आँखों से उस की ओर देख कर कहा, "यह क्या कर आये दादा ?"

रमानाथ के असहाय मन को कान्ता ने नहीं समझा, "मैंने कहाँ किया कान्ता, कभी सोचा भी नहीं कि मुझे किसी का ऐसे नीच कार्य में साथ देना पड़ेगा। यह अवश्य है कि अपनी भलमनसाहत और आदर्श से मैं आज सचमुच विरक्त सा हो गया था। तन और मन की सन्तुष्टि ही सबसे बड़ा आदर्श है इसे मानते हुए भी यह कभी नहीं चाहा कि मैं बुरी राह पर पैर रखूँगा। मैं शान्ति से जीना चाहता था। तू ही बता कैसे इस प्रपंच से निकलूँ, मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।"

"मां मर जायेगी दादा।"

मां बीमार है। उसकी बात सुन कर उसे आघात पहुँच सकता है इस ओर से ध्यान हटा कर उसने कटु स्वर में कहा, "मां का नाम मत लो। वे ही यदि मेरी अपनी होतीं तो आज मैं न जाने क्या होता। मैं भी मनुष्य हूँ पत्थर नहीं। होने दे जो होता है। भाग्य में यदि यही लिखा है तो यही सही। मैं आज मर भी जाऊँ तो क्या उसे दर्द आ सकता है ?"

"दादा," कान्ता सिहर उठी। वह कुछ कहेगी भी तो रमानाथ विश्वास नहीं करेगा, सोच कर ही उसने मां के पक्ष में कुछ नहीं कहा। वे सोई नहीं होंगी। रमानाथ की बात ने उनके मर्म में आघात किया होगा। उसकी वेदना का अनुभव कर वह पहले तो कुछ कह ही नहीं सकी, विह्वल भाव से उसकी ओर देखती रह गई।

रमानाथ शून्य में देखता हुआ बोला, "अपनी पवित्रता मुझे भी प्रिय है। मन का स्वर कोई सुन सकता तो मैं इस जाल से निकल सकता था। तिवारी जी जैसा प्रतिष्ठित व्यक्ति भी जब इतने निकृष्ट व्यक्ति का साथ कर सकता है तो मैं कौन हूँ। मां क्या कहेगी इसे मैं नहीं सोचता। हां, तू कहे तो प्राण दे सकता हूँ।"

कान्ता रमानाथ की छाती से लिपट कर रो पड़ी, "नहीं दादा नहीं। इससे तो अच्छा है कि तुम मुझे ही मार डालो ताकि यह सब मुझे अपनी आँखों से नहीं देखना पड़े। हे भगवान्।"

हठात् पीछे की ओर किसी के गिरने जैसा धमाका हुआ। कान्ता ने चौंक कर देखा और चीख पड़ी, 'मां।"

रमानाथ की ओर बढ़ाया हुआ लीलावती का हाथ निश्चेष्ट सा होकर जमीन पर लोट रहा था। उनकी रोग और दुःख से जीर्ण काया छिन्न लता-सी भूमि पर पड़ी थी। दोनों के बीच हुई वार्ता सुन कर उन्होंने बाहर आना चाहा होगा पर पहुंचने से पहले ही वे मूच्छित होकर जमीन पर गिर गई और वह मूर्च्छा फिर कभी नहीं टूटी। हृदय की पीड़ा वाणी के रूप में बाहर आने से पहले ही अनबोली हो गई।

लीलावती के शरीर से लिपट कर कान्ता रो उठी, "तुम्हें क्या हो गया मां। विश्वास करो दादा की सब बातें झूठी हैं, मां।"

"दूर हट कान्ता, मां को खाट पर लिटाने दे।" कह कर स्नेहमय दृढ़ता से रमानाथ ने कान्ता को दूर हटा दिया और अपने बलिष्ट हाथों में लेकर लीलावती के वायु जैसे हल्के शरीर को खाट पर लिटा दिया। इस शोर के कारण रतिनाथ की आँखें खुल गयी थीं। वह मुंह बाये अलसाये नेत्रों से तीनों की ओर देख रहा था। क्या हो रहा था यह उसकी समझ में आया ही नहीं। कान्ता निर्जीव-सी दीवार से टेक लगाये बैठी थी। उसकी आँखों में आंसू नहीं थे। था एक शून्य भाव और मस्तिष्क इतना निष्क्रिय तथा शरीर इतना निस्पंद हो उठा था कि दूर से ऐसा लगता था मानों वह जीवित शरीर नहीं बल्कि एक पाषाण मूर्ति है। इन कुछ घंटों में क्या से क्या हो गया। वह अपना मानसिक संतुलन बनाये नहीं रख सकी।

रति ने धीरे से पूछा, "क्या हुआ दादा?"

रमानाथ एकटक आँखें फाड़े लीलावती के स्पंदनहीन शरीर को देख रहा था। रतिनाथ का स्वर सुन कर उसने मुख ऊपर किया और

जैसे कुछ हुआ ही न हो इस भाव से कहा, "मां मर गई हैं रति।"

रति छटपटाता हुआ खड़ा हो गया, 'दादा ! अरी मां री" और फिर लीलावती के निर्जीव शरीर पर लोट गया।

कान्ता उसी प्रकार आँखें फाड़े बैठी थी। रमानाथ धीरे-धीरे पास आकर बोला, "मां मर गई है कान्ता।"

कान्ता न हिली न डुली।

रमानाथ ने नीचे झुक कर उसे झकझोर दिया और अपने हाथों के सहारे उसे खड़ा करके कहा, "कान्ता, मां मर गई है।"

दूसरे ही क्षण कान्ता की मूर्च्छित देह रमानाथ के हाथों में लुढ़क गई।

लीलावती का दाह कर्म करके रमानाथ रतिनाथ का हाथ पकड़े नंगे पैर घर लौट आया। रात के बाद से रति अभी तक नही बोला था। मां के बिना जिसका पल भर भी नहीं चलता, उसी को इतना शान्त देख कर रमानाथ मन ही मन भयभीत हो गया था। कान्ता ने भी एक भी शब्द नहीं कहा। वे दोनों मानों विस्मृति के अतल गह्वर में डूबे हुए थे। शोक की चरम सीमा मनुष्य को गूंगे के समान निरुपाय बना देती है। उन दोनों के मन और नेत्रों पर न जाने कौन-सी छाया गहरी होती जा रही थी।

रतिनाथ के कदम दृढ़ और स्थिर थे और रमानाथ ऊपर से शान्त होते हुए भी अन्दर से बहुत चंचल हो उठा था। जाने वाला लौट नहीं सकता, पीछे वाला इतना आत्मविस्मृत हो कर जियेगा कैसे। साथ में जाने वाले तीन-चार आदमी भी जब चले गये तो रमानाथ ने रतिनाथ के कन्धे पर हाथ रख कर पूछा, "क्या बात है रति ?"

रतिनाथ ने शान्त भाव से रमानाथ की ओर देख कर कहा, "कुछ भी तो नहीं है दादा।"

रमानाथ ने स्नेह भरे हाथों से रतिनाथ के सिर को अपनी छाती से चिपका कर कहा, "जन्म और मृत्यु प्रकृति का नियम है रति। अजन्म

और अमरत्व तो सृष्टि के नियमों के विरुद्ध है। तू समझदार है, अपने को विस्मृत न करना भाई।"

"नहीं दादा।"

"तो फिर इतना गूंगा मत रह। मैं चाहता हूँ तू एक बार जी भर कर रो ले। मन का बोझ रोये बिना नहीं उतरेगा। इस बोझ को लिए रह कर तो कोई भी नहीं जी सकता।"

रतिनाथ ने करुण कण्ठ से कहा, "आँसू नहीं आते दादा। एकाएक यह क्या हो गया ?"

एकाएक यह क्यों हुआ इसे रमानाथ जानता था। माँ के लिए उसका पतन मृत्यु से भी अधिक भयानक था और वह उनका प्राण ही लेकर गया। रतिनाथ के प्रश्न के उत्तर में उसने दूर तक दृष्टि पसार कर एक गहरी सांस ली और चुप हो गया।

समय की सूई धीरे-धीरे सरकती गई। रमानाथ के नेत्रों पर पड़ी धूमिल छाया गहरी से गहरी होती जा रही थी। कान्ता और रतिनाथ की बात के भीतर शर्मा का प्रस्ताव दिन-रात उसके मन में चक्कर काटता रहता था। उसके फ्लैट का पता लगाने की उसने बहुत कोशिश की पर उस दिन रात में देखे हुए स्थान को वह खोज नहीं सका। एक बार उससे मिल कर वह कुछ कहना चाहता था। जैसे-जैसे दिन निकल रहे थे उसके मन पर पड़ा बोझ भारी होता जा रहा था। देर करने पर भी शर्मा उसे नहीं छोड़ेगा। पता नहीं क्या काम वह उससे लेना चाहता था। उसके दिये हुए रुपयों को वह चाह कर भी फेंक नहीं पाया था। आवश्यकता का मुख इतना बड़ा था कि आदर्श का स्वर उसके नीचे दब गया था। रतिनाथ ने एक दिन आकर कहा, दीदी कब से कुछ भी नहीं खा रही है दादा।

रमानाथ का मुख झुक गया। बहुत देर तक वैसे ही बैठा रहा फिर धीरे से उठ कर जमीन पर अवश पड़ी कान्ता के सिरहाने जाकर बैठ गया, धीरे से कहा, "कान्ता !"

पल भर के लिए नेत्र खोल कर कान्ता ने रमानाथ की ओर देखा और दूसरे ही क्षण आँखें बन्द करके उसने करवट बदल ली। इस स्पष्ट अवज्ञा से रमानाथ तिलमिला गया। मां की मृत्यु के लिए वह तो उत्तरदायी नहीं था और वस्तुतः उनकी मृत्यु उसे विशेष चोट भी नहीं पहुँचा सकी थी। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन काल में कभी स्नेह का कण भी नहीं दिया उसके लिए मन तरल नहीं हो तो असम्भव नहीं है। प्रदर्शन जिन्हें प्रिय है उनकी बात दूसरी है। वे लोग जितना दिखाते हैं यथार्थ में उसका रत्ती भर भी सत्य नहीं होता पर चूँकि समाज इस प्रदर्शन का हामी है अतः हमें रोना और चिल्लाना पड़ता है अन्यथा लज्जाहीन की उपाधि से विभूषित होते कितना समय लगता है। चक्षु-लज्जा हमें न जाने कितने ऐसे कार्य करने के बाध्य कर देती है जिसका समर्थन हमारा मन नहीं करता। मन तो गौण है। मुख्य है प्रतिष्ठा, मर्यादा और उच्चता का झूठा ढकोसला। सहज रूप वहां असम्भव भी है और अग्राह्य भी। मन लाख विरोध करे पर संसार के सामने तो प्रदर्शन करना ही पड़ता है ताकि समाज हमें शिष्ट और सभ्य मान कर हमारा आदर करे। इसी झूठे दम्भ को लेकर आज यहाँ न जाने कितने व्यक्ति सभ्य और प्रतिष्ठित बन कर चल फिर रहे हैं।

रतिनाथ ने उसकी गोद में मुख छिपा कर कहा, "दादा······," और फिर अचानक ही बुक्का फाड़ कर रो उठा। कान्ता क्यों नहीं रोती। वह तो एकदम चुपचाप पड़ी थी, नेत्रों में आँसू नहीं थे, मुख पर कोई भाव नहीं था। उसने जितनी बार भी उससे बोलने की कोशिश की थी उतनी ही बार उसने मुख फिरा लिया था और वह एक असह-नीय पीड़ा से तिलमिला उठता था। यह सब आखिर क्या है। अत्य-धिक व्यथित हो कर उसने रतिनाथ का मुख छाती पर दबा कर कहा, "रोने से तुझे नहीं रोकूँगा लेकिन तू भी इतना अधीर हो जायेगा तो कैसे काम चलेगा। कान्ता को मेरा चेहरा देखना भी अच्छा नहीं लगता। मां को मैं लौटा नहीं सकता पर अपने में उसे जीवित तो कर सकता

हूँ। रो मत रति।"

रतिनाथ धीरे-धीरे शान्त हो गया पर कान्ता ने कुछ नहीं कहा। रमानाथ ने अपना हाथ उसके सिर पर रख कर कहा, "इतनी घृणा हो गई है मुझसे ?"

इस पर भी जब वह कुछ नहीं बोली तो रमानाथ का मुख झुक गया। रतिनाथ के शरीर पर हाथ रखे बहुत देर तक मुख झुकाये स्तब्ध भाव से बैठा रहा। जब मुख उठाया तो उसका चेहरा आवश्यकता से अधिक सूखा हुआ दिखाई दिया। अतीत पर वह कभी मन को नहीं दुखाता। जीवन में दुःख कम नहीं पाये, अभाव भी कम नहीं सहे। विचलित होने के अवसर भी इतने आ चुके थे कि वह कभी का अपने को समाप्त कर चुका होता पर तब भी उसने अपना संतुलन नहीं खोया तो इस घटना पर क्यों खोता। कान्ता की ओर देख कर भाव-हीन स्वर में कहा, "मां की मृत्यु के लिए तू मुझे उत्तरदायी समझ रही है इसे मैं समझता हूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता कि जो हुआ है उसके लिए मैं कहाँ तक उत्तरदायी हूँ। तू शायद सोचती है धन का लोभ मुझे उस ओर खींच कर ले गया लेकिन ये रुपये मैं किसके लिये चाहता था। क्या अपने लिये ? अपने लिए ही चाहता हूँ तो यह देख," कह कर वह उठा। कान्ता ने मुख घुमा कर देखा। रमानाथ ने खूँटी पर टंगे कमीज की जेब से रुपये निकाले और उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डाला। फटे हुए नोटों को हवा में उड़ा कर बोला, "कितना लोभ है मुझ में देख लिया ?"

कान्ता की विस्फारित दृष्टि उसके हाथों की ओर ही लगी थी। रतिनाथ ने डर कर कहा, "दादा।"

"ठोकरों के सिवा और कुछ मुझे अपने जीवन में नहीं मिला। जिस उम्र में बच्चे मां की गोद में छिपे रहते हैं उस उम्र में मां ने मुझे दूर हटा दिया। नौकरी की, दुःख और अपमान सहा पर मां ने मुझे वापस नहीं बुलाया। मैं पत्थर नहीं था। आगे बढ़ने की इच्छा मुझमें भी थी। स्वयं

लोगों के अपमान सहता रहा पर तुम लोगों से तो मैंने कभी शिकायत नहीं की। जीवन में भूल यही की कि पढ़ने की इच्छा को अपने मन में स्थान दिया। इस निर्बलता का भी विलय हो चुका है। सभी ने मुझे घृणा दी, उपेक्षा दी पर तुझसे इसकी आशा नहीं की थी। मेरी मजबूरी को न समझ कर यदि तू इस झूठी धारणा को ही सच मानकर रहना चाहती है तो अब कुछ भी नहीं कहूँगा। मां का खून मेरे हाथों में लगा है, किसी को छल कर लाये गये रुपयों का अन्न खाया है। तू मुझे मार ही क्यों नहीं देती," कहते-कहते उसने दोनों हाथों से मुख छिपा लिया।

कान्ता उसके पैरों से लिपट कर जोर से रो उठी। इतने समय का मूर्च्छित मन सचेतन हो कर उसकी आंखों की राह पिघल-पिघल कर बहने लगा। उस सून कमरे में उसकी सिसकियों का स्वर दीवारों से टकरा-टकरा कर वापस लौटने लगा और रमानाथ की आंखों से गिरे हुए आँसू उसके केशों में कूट कर चिपकाये गए मोतियों से चिपक गये।

## सातवाँ अध्याय

उषा ने पुष्पा के कन्धे पर झुक कर धीरे से पूछा, "पुष्पा, रमा क्यों नहीं आता आज कल ?"

"अरे, सुना नहीं तूने, उसकी मां मर गई हैं ?"

उषा स्तब्ध सी रह गई, "क्या हुआ था ?"

"काफी समय से बीमार थीं। इलाज शायद हुआ नहीं।"

उषा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

एक लड़की ने आ कर कहा, "पुष्पा, तुझे प्रोफेसर कमलानी बुला रहे हैं।"

पुष्पा तेजी से पलट कर उस लड़की के साथ चली गई तो एक गहरी साँस भर कर उषा ने बैंच का सहारा ले कर पैरों को सामने की ओर फैला दिया। रमा की मां मर गई। मन ही मन उन्हें देखने की बहुत इच्छा की थी पर कभी अवसर नहीं मिला। कान्ता से उस ने दो तीन बार कहा भी था पर उस ने उसे घर से जाने के लिए कभी हाँ नहीं भरी। इस साल दोनों अलग-अलग कालेज में हो गई थीं। आपस में मिलने के अवसर छटपटाने पर भी नहीं मिलते। कान्ता कभी उस के घर नहीं आती और वह उस का घर कहाँ है यह तक नहीं जानती थी। रति की तो अभी उम्र भी कितनी छोटी है। उम्र से मनुष्य की योग्यता का पता वैसे लगाया नहीं जा सकता। पूर्ण युवा हो जाने पर भी कितने

ही मनुष्य बच्चों से भी अधिक भोले, अधिक मन्दबुद्धि रह जाते है। प्रश्न बुद्धि का नहीं भावना का है। योग्यता का तो किसी में भी अभाव नहीं होता। हाँ, यह अवश्य है कि कुछ उस जन्म-जात प्रतिभा का अधिक विकास कर लेते हैं और कुछ नहीं कर पाते लेकिन इसी कारण उन्हें मूर्ख नहीं कहा जा सकता। यह निर्णय न न्यायसंगत है न तर्क संगत। योग्यता की कोई कसौटी भी नहीं है और कोई सीमा भी नहीं है। प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं। बिना अच्छाई के बुराई को मनुष्य नहीं आँक सकता और बुराई न हो तो अच्छाई की महत्ता समझ में नहीं आती।

कान्ता का ध्यान आते ही उषा का मन हुआ कि किसी प्रकार उस से मिल ले। माँ के प्रति उस के मन में कितना मोह और भक्ति थी, इसे वह जानती थी। वही माँ उसे असहाय छोड़ कर चली गयीं। बेटी के लिए माँ क्या होती है इसे सब तो समझ नहीं सकते। इस अभाव को कोई भी पूर्ण नहीं कर सकता। उस की स्वयं की मां किसी दिन न रहे तो ! इस विचार मात्र से वह काँप उठती है। मां न होती तो वह कभी अपनी रक्षा नहीं कर पाती। आशा के समान उसे भी अपने को उन के स्वार्थ-साधन का अस्त्र बना देना पड़ता। निकृष्ट से निकृष्ट कर्म करने में भी जो नहीं हिचकिचाता वही उस का पिता है। मुख खोल कर अवश्य उस ने आज तक उन का प्रतिवाद नहीं किया है। अपने पर उसे विश्वास था। अब तक जब अपने को बचा ले गई है तो आगे भी कोई उसे नहीं गिरा सकता। आशा जो गिरी है वह अपने दोष के कारण। गिरना मनुष्य के अपने हाथ की बात है। मन दृढ़ हो संसार का बड़े से बड़ा प्रलोभन मनुष्य को नहीं झुका सकता। आशा के पास कमी क्या थी। क्यों नहीं नियन्त्रण कर सकी वह अपने पर ? स्वतन्त्रता का विपरीत अर्थ ले कर वह नहीं चली होती तो इतने विषैले वातावरण से अछूती रह सकती थी। ओह ! माँ यह सब अपनी आँखों से देखती हैं। आशा और तिवारी जी के आचरण की स्मृति कितनी कष्टदायक होती होगी।

उन का मन कितना रोता होगा, कितना तड़पता होगा। सब ओर से निराश हो कर उन्हों ने अपना सम्पूर्ण स्नेह उस पर केन्द्रित कर दिया था। उन्हें वह कभी इतना दुःख नहीं देगी। देखना है उसे भी कि कैसे तिवारी जी उसे अपनी ओर खींचते हैं। ऊँह, पिता है, परमात्मा तो नहीं।

उस के बाद आँखों पर हाथ रखते ही पुष्पा चौंक कर बोली, "रोई क्यों?"

उषा ने उस से भी अधिक चकित हो कर कहा, "मैं? अरे? "और पाया कि उस का सारा मुख आँसुओं से भीगा हुआ है। धीरे से मुख पोंछ कर वह न हंस पड़ी, "कितनी अजीब हूँ मैं भी। पता ही नहीं कब रो पड़ी। हो आई कमलानी के पास?"

पुष्पा बैठ कर बोली, "हाँ।"

"क्या कह रहा था।"

पुष्पा नाक चढ़ा कर बोली, "प्रेम की दो बातें करने बुलाया था। पता नहीं आज कल के इन प्रोफेसरों को क्या हो गया है। घर में पत्नी है, बच्चे हैं और जनाब पराई लड़कियों से प्रेम लड़ाते घूमते हैं। सूरत पर बारह बजते हैं पर जनाब अपने को राज कपूर से कम नहीं समझते। वह रणजीत और आ मिला है उस गुट्ट में, पर है बातों का ही शेर, आगे बढ़ कर कुछ कहने का साहस उस में जरा भी नहीं है।"

उषा हंस कर बोली, "लड़के और प्रोफेसर भी क्या करें जब ऐसे सुन्दर-सुन्दर मुख आँखों के सामने आ जाएँ।"

पुष्पा जोर से उस की पीठ पर हाथ मार कर बोली, "और तू बड़ी बच गई है। वह रणजीत पागल बना घूमता है तेरे पीछे। बड़ी मिन्नत कर रहा था।"

उषा ने निश्चिन्तता से कहा, "अरे यह वो फूल ही नहीं कि कोई आसानी से तोड़ ले जाय।"

"अच्छा जी हमें ही बनाती है? हम जैसे कुछ जानते ही नहीं।"

उषा कुछ चौकन्नी हो कर बोली, "क्या जानती है ?" और फिर एकदम कह दिया, "अच्छा जानती है तो अपने मन में ही रहने दे। तेरा कोई भरोसा है ? अभी कुछ बेकार की बात कह बैठेगी।"

उषा का रक्तिम मुख देख कर पुष्पा हंस पड़ी। दूर से आते हुए अनुराधा बोली, "क्या बात हो गई, बड़ी हंसी आ रही है। अकेले-अकेले मत खाना पुष्पा वरना पेट फूल जाएगा। फिर पास आ कर कहा, "बड़ी बुरी बात है उषा। तुम दोनों दिन भर न जाने क्या गिटिर-पिटिर किया करती हो। अरे हम भी तो आखिर कुछ हैं। हिस्सा बाँट बराबर होना चाहिये।"

उषा ने हंस कर कहा, "पुष्पा अपने कमलानी में से कुछ हिस्सा अनु को भी दे दे। तेरी मेहनत कम हो जाएगी।"

"कुछ ? अरे तू पूरा का पूरा ले ले। उस की बीवी जब डण्डा ले कर सिर पर चढ़ बैठेगी तब पता लगेगा। पूरी स्टेशन-वैगन है।"

तीनों जोर से हंस पड़ीं। तभी शशि ने आ कर हाथ का अखबार दिखा कर कहा, हंसो मत हंसो मत। धोबी तालाब पर एक पारसी का मर्डर हो गया है। कहते हैं दिन दहाड़े दो व्यक्ति उसे मार कर करीब दो लाख का जेवर और कैश ले गये और पुलिस स्पाट पर होते हुए भी कुछ नहीं कर पाई। अपन ने तो सोच लिया है कि ऐसे गिरोह का नेतृत्व करेंगे और चैन से बैठे खायेंगे।

अनुराधा ने सिर हिला कर कहा, "शेरसिंह अभी तक कुँवारा है।"

शशि ने चैन से कहा, "तो हमीं ने कौन अभी विवाह कर लिया है। आ जाये सामने।" कह कर हंस पड़ी, कहा, "भई गजब की हिम्मत है इस शेरसिंह की। उस सेठ का मर्डर कर के जो गायब हुआ है तो अभी तक पुलिस पता नहीं लगा सकी।"

पुष्पा बोली, "पुलिस क्यों पता लगाने लगी। वह खुद इन्हीं लोगों में मिली हुई रहती है।"

उषा बोली, "पुलिस भी क्या करे। परिवार तो बढ़ता जाता है पर

तनख्वाह नहीं बढ़ती। खाने पहनने के लिए जब पूरा नहीं मिलेगा तो उन्हें मजबूरन ऐसे लोगों का साथ देना ही पड़ेगा।"

शशि मेज पर मुक्का मार कर बोली, "और मैं कहती हूँ कि यह प्रवृत्ति कभी नहीं मिट सकती। मनुष्य मात्र अभाव के कारण ही अपराध नहीं करता वरन इसमें सत्ता की भावना भी छिपी रहती और अपराध करते २ बाद में उसे इसकी आदत हो जाती है।"

उषा ने विरोध करते हुए कहा, "मैं नहीं मानती। मानव में यदि बुराई की ओर प्रवृत्ति है तो अच्छाई को अपनाने की भी उसको स्वाभाविक आकांक्षा होती है। अपराध होता है लेकिन यह तू कैसे कहती है कि उसे सुधारा ही नहीं जा सकता। एक बार जो गिर गया वह हमेशा के लिए कैसे गिरा हुआ मान लिया जाये? घृणित अपराध है अपराधी नहीं।"

अनुराधा ऊब कर बोली, "क्या बात थी और कहाँ चली गई। ऐसी बहस करनी हो तो कोर्ट में जाओ। यह लीजिये आप लोगों की इस बकबक में घंटा ही समाप्त हो गया। मेरा और शशि का तो इतिहास का घंटा है।"

उषा मेज पर पैर फैला कर बोली, "यहाँ तो इस घंटे की छुट्टी है। अरे अनु बोल इरादा हो तो कहूँ कमलानी से। वह बड़ी प्रसन्नता से तेरे गले से लटक जायेगा। अंधा क्या चाहे, दो आँखें।

अनुराधा जल्दी में थी, "फिर दूँगी इस बात का जवाब, चल शशि।"

दोनों के जाते ही पुष्पा ने पूछा, "तू फिर कुछ सोचने लगी। कुछ दिनों से तुझे होता क्या जा रहा है उषा। मैं देख रही हूँ, इन कुछ दिनों में तू पहले से काफी दुबली हो गई है। परीक्षा पास है, अपना स्वास्थ्य चौपट मत कर।"

उषा फीकी मुस्कराहट से मुख भर कर बोली, "तुझे वहम हो गया है।"

"हो सकता है लेकिन मैं अकेली ही तो यह नहीं कहती। रणजीत खुद आज कह रहा था। और भी कुछ लोगों के मुख से मैंने सुना है।

तू भी बहुत अधिक चुप है उषा। कान्ता के साथ मैं तो करीब-करीब बचपन से ही रहती आ रही हूँ पर वह आज तक मुझसे नहीं खुली। तू उससे भी दो कदम आगे है। बस फिर सोचने लगी न कुछ ?"

"हां, और देख क्या रही हूँ सो छिपा नहीं रहीं हूँ। कान्ता की मां नहीं हैं यह सोचते हुए मन रोता है पुष्पा। मां को वह कितना प्यार करती थी। पिता बचपन में मर गये। सुख नाम की चीज जीवन में कभी नहीं देखी। साहस बंधाने वाली मां थीं वह भी अब नहीं रहीं। मैं उससे मिलना चाहती हूँ पर जाऊँ कहां। मुझे तो उसका घर भी नहीं मालूम।

"सचमुच में ही चलने की इच्छा हो तो चल। यहाँ से गिरगाँव की सीधी बस मिलेगी।"

उत्सुकता पूर्वक "चलूँ" कहते-कहते वह उठी और फिर दूसरे ही क्षण वापस बैठ गई। मां ने रमा से मिलने को मना किया है और उसने वचन भी दिया है कि नहीं मिलेगी। वहां जाने पर उससे भेंट होगी सोच कर वह चुप हो गई। तिवारी जी का उसके प्रति व्यवहार देख कर उसे इतनी ग्लानि और इतना दुःख हुआ था कि तब से न जानें कितनी बार उसका मन हुआ है रमानाथ से क्षमा मांग ले। मन में कितनी ही घृणा हो संसार के सामने तो वे पिता हैं। कम से कम औरों के आगे तो वह यह प्रकट नहीं कर सकती कि वह मन ही मन उनसे इतनी घृणा करती है जितनी कदाचित् कोई अपने शत्रु से भी नहीं करता।

"चलती है ?"

उषा उदास भाव से बोली, "नहीं, रहने दे।" फिर दूर तक दृष्टि पसार कर चुप होकर बैठी रही। मां से किये वचन में कोई भी सार नहीं है पर जब कह चुकी हूँ तो उसे निभाऊँगी। जिनका उस पर इतना विश्वास है उन्हें वह धोखा नहीं दे सकती। रमानाथ से भेंट होगी तो

छिप कर नहीं होगी सभी के सामने होगी बिना किसी व्यवधान और भय के।

भाव बदल कर उसने कहा, "हां तो क्या-क्या कहा तेरे कमलानी साहब ने ?"

"अरे जाने दे उसे भाड में। मुँह है नहीं मसूर की दाल खाने चला है। बीबी रोती होगी बिचारी।"

"तो तू भी आदमी की बाहरी सूरत को ही देखती है ?"

पुष्पा जोर से सिर हिला कर बोली, "जरा भी नहीं। हां एकदम ही जो कुरूप है उसकी ओर तो मन जरूर नहीं खिचता वैसे इतना कह सकती हूँ कि मन के सौंदर्य को मै ने सदा से महत्व दिया है। बहुत से लोगों के संपर्क में मैं आ चुकी हूँ। ऊपर से सुन्दर दिखने वाले मूल में कितने घिनौने कितने बदसूरत निकल जाते हैं उषा। इस रणजीत को ही देख। सुन्दर है, सभ्य है पर न साहस है न कोई मारल।"

उषा मुस्करा कर बोली, "मारल की परिभाषा तो बता। जिस बात को तू ठीक समझती है उसे संसार भी ठीक समझे यह आवश्यक नहीं है।"

"यह मैंने कब कहा कि जो मैं मानती हूँ उसे सभी मानें, पर जो बात वास्तव में गलत है उसे भी दूसरा ठीक मान कर चले तो मैं तो अपने को नहीं रोक सकती। अपनी बात मैं दूसरे पर लादने की कोशिश नहीं करूँगी पर अच्छाई को ग्रहण करने के लिए दूसरे को बाध्य करने का अधिकार मुझे है। देख, कहना मेरा कर्त्तव्य है, कोई माने या न माने मुझे कोई मतलब नहीं।"

उषा ने छत की ओर आँखें उठा कर कहा, "उपदेश देने का जो फैशन आजकल चल गया है लगता है उसे तूने भी अपना लिया है। मेरी बात माने तो कभी किसी को अपनी बात मनवाने के लिए बाध्य मत करना। मनुष्य की स्वतन्त्र वृत्ति किसी की बाधा नहीं मानती। जो जिस राह पर चलना चाहता है उसे उसी राह पर चलने दिया जाये

गलत होगा तो एक दिन वह स्वयं सत्य को पकड़ लेगा। हम उसे समझाने के लिये क्यो आगे बढ़ें।"

"इसका तो अर्थ यही हुआ कि डूबते के गले में और पत्थर बाँध दो ताकि कभी ऊपर आ ही न सके। ना उषा जी, अपना मत आप से मेल नहीं खाता। अच्छाई को अपनाने के लिए प्रेरित करने का हमें पूर्ण अधिकार है। जिस ने गलत राह पकड़ी है उसे समझाना क्या हमारा कर्तव्य नहीं है? देख उषा बराई को प्रोत्साहन देने से बढ़ कर निकृष्ट कर्म दूमरा नहीं है। उस को समूल नष्ट कर देना ही हितकर है।"

इस तर्क का उत्तर उषा के पास नहीं था। पापा और दीदी जो गलत राह पर जा रहे थे। मन में दुःख होता था, घुटन होती थी पर उन्हें सुधारने का कोई रास्ता नहीं था। कहने से ही मनुष्य अपने को बदल लें तो इस अवस्था का समूल नाश हो सकता है। संसार में सब अपना भला सोचते हैं। धन की चाह इतनी भारी है कि उस के लिए नीच से नीच कार्य भी किया जा सकता है। सत्ता का लोभ भलमनसाहत को कितनी जल्दी अपने नीचे दबा लेता है। तिवारी जी मंत्री हैं, शहर के जाने माने राजनीतिज्ञ हैं। बरसात में पैदा हो जाने वाले कीड़ों के समान ये मौसमी राजनीतिज्ञ, राजनीति के मैदान के बिना एम्पायर के खेलने वाले खिलाड़ी जो अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सदा अवसर की ताक में रहते हैं, जरा से परिश्रम से प्रसिद्धि मिल जाती है। योग्यता को कौन देखता है। प्रजातन्त्र के युग में जनता का मत रुपयों से खरीदा जा सकता है।

पुष्पा उठ कर बोली, "तू बैठी सोचती रह, मैं तो अब चला।"

उषा भी उठ गई, "मैं भी जा रही हूँ।"

"कहाँ?"

"घर। अच्छा नहीं लग रहा है, लगता है बीमार पड़ना ही पड़ेगा। पता नहीं क्यों किसी भी काम में मन ही नहीं लग रहा है आजकल। अच्छा, बाई, बाई।"

"बाई बाई।"

किताबें उठा कर उषा कामन-रूम से बाहर निकल आई। गेट पार करते-करते रणजीत मिल गया। उषा को देख कर उसके नेत्र चमक उठे। आदर से झुक कर उसे नमस्कार करता हुआ बोला, "घर जा रही हैं ?"

उषा को पुष्पा की कही हुई बातें स्मरण आते ही हंसी आ गई। किसी प्रकार उसे दबा कर कहा, "जी हाँ।"

"कार में छोड़ आऊँ आप को ?"

"जी नहीं, धन्यवाद।"

रणजीत का मुख कुछ फीका पड़ गया फिर भी उसने पूछा, "संध्या को भेट होगी न ?"

"जी हाँ होनी होगी तो अवश्य होगी। अच्छा नमस्कार।"

"नमस्कार।"

उषा चली गई। रणजीत उसी दिशा की ओर देखता हुआ सांस भर कर अपने आप से ही बोला, कितनी सुन्दर और आकर्षक लड़की है। रमा सचमुच में भाग्यशाली है लेकिन बन्दा भी इतना अभागा नहीं है। तिवारी जी को चाहिये रुपया और हमें चाहिये उषा। वाह री किस्मत कितनी जोरदार है तू भी। एक ओर है रुपया दूसरी ओर है लड़की। देखें जा बेटे, पाँसा किस ओर पड़ता है। और उषा के आँख से ओझल होते ही वह पलट कर लड़कियों के कामन-रूम की ओर चला गया।

कामन-रूम के दरवाजे पर अनुराधा किसी लड़के के पास खड़ी हाथ की किताब खोले कुछ कह रही थी। रणजीत धीमे पगों से पास से निकलता हुआ कह गया, "जियो राजा।" और कुछ दूर जा कर हंस पड़ा। अनुराधा और वह लड़का अभी भी उसी प्रकार पास-पास खड़े कुछ कह रहे थे। विषय क्या था यह रणजीत सुन नहीं पाया किन्तु दोनों के मुख के भावों से उस ने जो समझा वह सुनने से कहीं अधिक

था। हल्की मुस्कराहट से मुख भरे वह आगे बढ़ गया। हल्के भूरे रंग का सूट और उस पर गहरे लाल रंग की टाई उसके गोरे शरीर पर खूब खिल रही थी। सुन्दर ही नहीं काफी आकर्षण भी था उसमें और अपने आकर्षण की गुरूत्व शक्ति का आभास भी उसे था। प्यार उसके लिये नया सूट बदलने से अधिक नहीं था। कभी आप उसके पास बैठ कर देखिये। कितनी बार उसने प्रेम किया और छोड़ा है, सुनते २ आप भले ही ऊब जाएँ पर वह नहीं ऊब सकता। उसमें न छिपाने का भय है, न बात बढ़ा कर कहने का अभ्यास। इन्हीं गर्मियों में वह कश्मीर गया था जीवन का पूर्ण उपभोग करने के लिये। वह पूरा अवसरवादी है। जो वस्तु उसे सहज रूप में मिल जाती है उसका उपभोग वह करता है जो सहज रूप से सुलभ नहीं है उसके लिये साहस करने की शक्ति अवश्य उसमें नहीं है। इतना आगे बढ़ने में डरता है। प्रेमी के रूप में अपने को प्रकट करना उसे बहुत अच्छा लगता है। स्त्री के प्रेम को पुष्प के समान मानता है जो एक बार डाली से टूट जाने पर अपनी पूर्व सुन्दरता को नहीं पाता। इस वस्तु के लिये वह स्वयं कभी विशेष लालायित नहीं हुआ, बिना मांगे उसे मिला है इसी कारण इसके लिये उसके मन में कोई विशेष आग्रह नहीं है। वह झुका है इस उषा के सामने आकर। ईश्वर जाने किस धातु की बनी है। प्रेम प्राप्त करना तो दूर रहा वह थोड़ी-सी सहानुभूति भी नहीं पा सका उसकी। वही क्या, कालेज के न जाने कितने युवक लट्टू थे उस पर। उसकी एक झलक पाने के लिये कितने लालायित हो उठते हैं लेकिन उसने कभी किसी की ओर आँख उठा कर नहीं देखा, परिचय का सूत्र भी रमानाथ को छोड़ कर किसी से नहीं बढ़ाया। रणजीत को मन ही मन रमानाथ के भाग्य पर ईर्षा हो गई।

कामनरूम पार करके वह लायब्रेरी में जा पहुँचा।

"हलो रणु।"

"हलो।" कहकर रणजीत ने कमलानी के कन्धे पर हाथ रख दिया

और इधर-उधर देखता हुआ बोला—"रमा क्यों नहीं आ रहा है आज-कल ?"

"सुना है उसकी माँ की मृत्यु हो गई है। राध से पता लगा था कि वह अपना नाम भी कटा गया है, आखिरी साल है और वह पढ़ाई छोड़ बैठा। मुझे तो बहुत दुःख हुआ भाई। परीक्षा में बैठता तो वह इस कालेज का अब तक का रिकार्ड बीट कर देता। तुम्हें वह मिले तो समझा-कर देखना।"

रणजीत सिर हिलाकर बोला—"किसी के समझाने से समझ जाये इतना सीधा वह नहीं है। पढ़ाई छोड़ने की यदि उसने सोच ली तो कभी नहीं पढ़ेगा। लेकिन यार उसकी माँ मर गई यह तो बुरा हुआ।" तभी उसे उषा के इतनी जल्दी चले जाने का कारण समझ में आ गया। पता नहीं क्यों यह लड़की उसे इतना चाहती है। न दिखने में कुछ विशेषता है न सामाजिक स्तर ही कुछ ऊँचा है पर उसे यह नहीं मालूम था कि सम्पन्नता असम्पन्नता मन के सम्बन्ध गढ़ने के काम में नहीं आती। धन-दौलत देख कर मन किसी की ओर नहीं खिंचता। रूप और रुपये का आकर्षण चिरस्थायी नहीं है। आकर्षण की स्थिरता हृदय की सहज प्रीति को लेकर है। प्रथम दृष्टि का प्रेम हृदय का प्रेम नहीं होता वरन् इसके मूल में वही आदिम पशुप्रवृत्ति है। हृदय के स्नेह रज्जु जुड़ जाना इतना सहज नहीं। परिचय का सूत्र प्रेम की प्रथम सीढ़ी है, अन्तिम नहीं।

"आज का पेपर देखा है तूने ?"

"नहीं।"

"अविश्वास प्रस्ताव पास करके लोक सभा ने हृदयनाथ तिवारी का मन्त्रित्व पद छीन लिया है सुना है अगले इलैक्शन के लिये वे जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं।

रणजीत ने बात उड़ा दी—"होगा यार।"

"लेकिन यार इन महाशय जी के बारे में अपने पास जो रिपोर्ट आई

है वह तो अच्छी नहीं है ।"

"संसार में कौन अच्छा है कौन बुरा, इसका पता कहाँ से लगाओगे ।"

"और यार अपने को करना ही क्या है । स्वार्थी कौन नहीं होता अपनी सहायता यदि तिवारी जी ने स्वीकार की तो अहोभाग्य समझूंगा ।"

कमलानी हंस कर बोला—"बड़े परोपकारी हो भाई पर यह तो बताओ कि यह भाव उषा को देखकर पैदा हुआ है या आशा को देख कर ।"

रणजीत कान पर हाथ रख कर बोला—राम-राम कैसी बातें करते हो । मैं साधु पुरुष ठहरा इन चीजों से सौ कोस दूर रहता हूँ ।" कहते हुए हंक दिया—"अच्छा चल दिये, चियरियो ।"

"अरे रणु, जयहिन्द, कालेज की ओर से एक वैरायटी प्रोग्राम होने वाला है । चन्द्रकान्ता और राधाकृष्ण भरतनाट्यम प्रस्तुत करने वाले हैं । तुम टिकिट लोगे क्या ?"

"कितने का है ?"

रणजीत कुछ सोच कर बोला—"ले लेना पर देखो निश्चित उत्तर कल दूंगा कि एक लेना है अथवा दो । इस समय जरा कुछ जल्दी में हूँ क्षमा करना ।" कह कर कमलानी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह तेजी से वहाँ से चला गया । लायब्रेरी से बाहर आते ही ठंडी हवा का एक झोंका उसे सिहराते हुए वैसे ही निकल गया जिस प्रकार एक अभिसारिका मन को ललचाती हुई निकल जाए और देखने वाला कुछ भी न पा सके। अभिसारिका की कल्पना सुन्दर नहीं है फिर भी इतनी सत्य तो है ही कि प्राचीन कविगण ने उसका जो रूप प्रस्तुत किया है वह आज के समाज में संभव नहीं है और न उसे इतना सुन्दर नाम ही दिया जाता है । सीधे सादे शब्दों में समाज उसे वेश्या का नाम देता है । वेश्या, जो हमारी संस्कृति का एक ऐसा काला धब्बा है जिसे

युगों तक धोकर भी साफ नहीं किया जा सकता। पुरुष समाज का दावा है वेश्यावृत्ति के लिये वे इतने दोषी नहीं हैं जितनी स्त्रियाँ। क्या सचमुच उनका यह दावा सत्य है ? जरा भी नहीं। स्त्री को गिराने में हाथ पुरुष का होता है, उसे वेश्यावृत्ति करने के लिये बाध्य कर देने वाला वह है। छोटी सी भूल के पीछे समाज उसे अपने में से बाहर निकाल देता है और समानरूप से दोषी पुरुष समाज का सर्व-सर्वा बन बैठता है। समाज निर्माण में स्त्री व पुरुष दोनों का सहयोग समान रूप से अपेक्षित है, फिर यह भेदभाव क्यों। उच्चता की गारन्टी केवल पुरुष को ही क्यों मिले। वह गिर-गिर कर भी ऊँचा बना रह सकता है। अपने उसी घिनौने आदर्श को लिये वह गर्व से सिर ऊँचा किये घूमता है। कितने हैं आज जो स्त्री को भी अपने बराबर ही समझते हैं, अपना पूर्ण जीवन साथी मानते हैं। पुरुष समुदाय के एक बड़े भाग का प्रेम और सहयोग यौन आकर्षण को लेकर ही तो है। यही है उसका सच्चा स्वरूप और यही है उसका दूसरे पक्ष के प्रति न्याय।

सामने के खुले लान और गैलरी में से लड़कों के झुण्ड जा आ रहे थे। रणजीत कालेज में पढ़ने के लिये नहीं आता, आनन्द लूटने के लिये आता है। कक्षा में उपस्थिति लिखा देने के बाद विषयवस्तु से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। समय और द्रव्य का उसके निकट कोई महत्व नहीं है। उसे बड़ा आश्चर्य होता है कि लोग एक ही साल में एक कक्षा कैसे पास कर लेते हैं। उसकी दृष्टि किताबों के साथ नहीं लड़कियों के साथ घूमती है।

पास से एक लड़की सैन्ट की सुगन्ध फैलाती हुई निकल गई। उसकी साड़ी का पल्ला रणजीत के सूट को स्पर्श करता हुआ चला गया। उसने वक्ष पर हाथ रख कर एक अनोखे अन्दाज से कहा, "साड़ी का पल्ला कि साँप का घेरा, बता दे ऐ जालिम तेरा या मेरा।"

लड़की हंसती हुई चली गई।

रणजीत सन्तोषपूर्वक मुस्करा दिया ।

"तकदीर वाला है बेटे ।"

रणजीत ने मुख घुमाया और हंस कर पूछा, "कौन, तू या मैं ?"

अजय साँस भर कर बोला, "तेरे सामने हमें कौन पूछेगा दोस्त ।"

उसकी पीठ थपथपा कर रणजीत हँसता हुआ आगे बढ़ गया ।

## आठवाँ अध्याय

कालेज-गेट से बाहर निकल कर उषा कुछ पल दुविधा में पड़ी खड़ी रही। कान्ता को एक बार देखने की अदम्य इच्छा उसके मन में हो रही थी। इस नितान्त आवश्यकता के समय वह उसे और कुछ भले ही नहीं दे सके सांत्वना तो दे ही सकती है। दुःख के समय सहानुभूति की कामना करना मनुष्य का स्वभाव होता है। रमानाथ के विचार को उसने मन से ठेल रखा था। कान्ता का आँसू भरा मुख उसकी आँखों में तैर रहा था। कितनी असहाय है वह आज। और रतिनाथ, वह जो एक छोटे से बच्चे के समान माँ को प्यार करता था, उन पर असहाय भाव से निर्भर था, इस बात को लेकर उसने सैकड़ों बार उसे चिढ़ाया और रुलाया है। अनाथ-सा रतिनाथ आज कैसा होगा! उसे अनुभव होने लगा जैसे वह एक भोले शिशु के समान निरंतर माँ की रट लगा रहा है और कान्ता उसे अपने घुटनों में मुख छिपाये लुटी-सी बैठी है। मन से दूर ठेलने की भरसक कोशिश करके भी रमानाथ का मुख उसकी आँखों के सामने खिल उठा। उसकी भावना के रुद्ध कपाट कोई नहीं खोल सकता। इस सत्य से जहाँ वह परिचित थी वहाँ यह आशंका भी उसके मन के किसी कोने में छिपी बैठी थी कि यदि कभी वह विचलित हो गया तो अपने को सम्हाल नहीं सकेगा। इस श्रेणी के व्यक्ति किसी मार्ग को छोड़ने के लिये नहीं पकड़ते। असाधारणता उनमें नहीं होती किन्तु

साधारण श्रेणी के मनुष्यों से जो एक स्पष्ट विभिन्नता उनमें होती है उसे भुलाया नहीं जा सकता। दृढ़ता चिरस्थायी होती है, मानव की सब से अमूल्य पूंजी है। दृढ़ता न होती तो उसमें और पशु में कोई भेद नहीं रह जाता। यही विशिष्टता तो उसे गिर-गिर कर उठने के लिये प्रेरित करती है। भविष्य के सुनहरे स्वप्नों का निर्माण और विध्वंस को मनुष्य का मन किया करता है, इसके लिये दृढ़ता उत्तरदायी है वह स्वयं जो असंभव को भी साकार करने का स्वप्न अपने हृदय में संजोये रहता है। विश्वास और नेत्र यदि "आज" पर हैं तो व्यतीत "कल" का विनष्ट और भविष्य का कल्पित मनुष्य को विचलित नहीं कर सकता।

रमानाथ के विषय में उसने अधिक नहीं सोचा। अपनी भावनाओं की दृष्टि से अधिक प्रिय उसका सुरक्षित भविष्य था। उससे साक्षात करके ही कौन-सा लाभ होगा? जो व्यक्ति किसी की सहानुभूति और सहयोग की अपेक्षा ही नहीं करे उसके प्रति संवेदना प्रदर्शित करने में भी झिझक आती है। उसका और उसकी माँ के बीच जो नीरस सम्बन्ध था उसका कारण उसे आज तक समझ में नहीं आ पाया था, और तो और कान्ता ने स्वयं कितनी ही बार उससे कहा था कि माँ की ममता दादा के लिये स्वप्न की वस्तु है। न जाने कौन-सा रहस्य था इसमें। जानने का कोई उपाय नहीं है, बताने वाली जो थीं वे अब स्वर्ग में हैं।

उषा ने एक गहरी साँस भरी।

"मधुबाला।"

तीखी दृष्टि से उषा ने सामने देखा और तब तक देखती रही जब तक कहने वाला सामने से हट नहीं गया। उसकी आँख से ओझल होते ही वह हँस पड़ी। तुलना करने के लिये लोगों को अभिनेता और अभिनेत्रियों से बढ़ कर कुछ दिखाई ही नहीं देता। मात्र तुलना तक ही यह रोग सीमित रहता तब भी सह्य था पर यह रोग तो अब वर्णन और चित्रण तक पहुँच गया है।

हँसी के बाद की हल्की-सी मुस्कराहट उषा के अछूते मुख पर लिपटी हुई थी। बस-स्टाप आधे फर्लांग पर था जहाँ से वह गिरगाँव के लिये सीधी बस पा सकती थी पर जब कान्ता का घर ही नहीं मालूम तो जाये कहाँ, यद्यपि मन उसका यही कह रहा था कि उसे जाना चाहिये। इस आवश्यकता के समय ही यदि वह नहीं जा सकी तो बाद में जाने से क्या लाभ। एक बार मन हुआ, लौट कर पुष्पा को बुला लाये फिर सोचा माँ से आज्ञा लेकर बिशन को साथ लेकर ही जाएगी और यह सोच कर वह आगे बढ़ गई। स्वच्छ चिकनी सड़क अपेक्षाकृत सुनसान थी। दोपहर का समय होने के कारण भीड़ नहीं थी, संध्या का समय होता तो सड़क पार करके निकलना एक कठिन बात थी। इक्की-दुक्की कारें सर्र करती हुई निकल जाती थीं। "स्टाप" तक जाने के लिये उषा को चौराहा पार करना पड़ा। "शेड" के नीचे केवल एक महिला यात्री तीन चार वर्ष के बालक का हाथ पकड़े खड़ी थी। सुनसान वातावरण के अनाकर्षण से ऊब कर उषा ने झुक कर बच्चे के कपोल थपथपा दिये और कहा, "बड़ा सुन्दर बच्चा है।"

महिला के सुन्दर मुख पर तृप्ति की मुस्कराहट बिखर गई, बोली, "धन्यवाद।"

उषा ने दूर तक दृष्टि दौड़ा कर देखा। बस का कोई भी चिह्न दिखाई नहीं दिया। ठंड के बावजूद धूप बहुत तेज थी। बालक ने मां के घुटने में मुख छिपा कर कहा, "ममी, प्यास लगी है।"

महिला उसके सिर पर हाथ फिरा कर बोली, "अभी बस आने ही वाली है बेटा। दो मिनट में आई जाती है, घर चल कर पीना।"

उषा ने बटुआ खोल कर लल्ली पौप की दो गोलियां बालक के हाथ में देते हुए कहा, "गोली खालो, अभी प्यास मिट जाएगी।"

बालक ने मां के मुख की ओर देखा और मां ने कहा, "ले ले।"

हाथ में लेकर उसने बड़ी सभ्यता से गोली पर लिपटा हुआ कागज

दूर किया और उसे मुख में रखने से पहले उसने उषा की ओर मुख करके शरीर को थोड़ा सा झुका कर कहा, "धन्यवाद दीदी।"

उषा को बहुत प्रसन्नता हुई। इतने छोटे से बालक से इतनी सभ्यता की आशा नहीं थी। चुपचाप प्रसन्न आँखों से उसका गोली चूसना देखती रही फिर बोली, "तुम्हारा नाम, नहीं बताओगे ?"

बालक ने अपना कोमल मुख उठा कर कहा, "मेरा नाम अनुराग है।"

महिला ने पूछा, "आपका नाम जान सकती हूँ।"

"क्यों नहीं, मेरा नाम उषा है, उषा तिवारी।"

और तब बात चली, परिचय बढ़ा। कुछ मिनट पश्चात् ही बस आ गई। उषा ने आगे बढ़ते हुए कहा, "आइये।"

महिला ने हाथ उठा कर नमस्कार करते हुए कहा, "जी नहीं मुझे जौहरी बाजार जाना है।"

अनुराग ने भी अपने छोटे-छोटे हाथ उठा कर कहा, "नमस्ते दीदी।"

बस चल दी।

परिचय के सूत्र कितनी जल्दी बनते और मिटते हैं।

"टिकिट।"

"एक, कोलाबा कौजवे।"

कंडक्टर का दिया हुआ एक आने वाला टिकिट लेकर उषा ने बायें हाथ में बंधी कलाई घड़ी के पट्टे में घुसा लिया और खिड़की की ओर खिसक कर बाहर मुख निकाल कर देखने लगी। पीछे बैठा कोई लड़का सामने लगे 'चैक बोर्ड' को पढ़ रहा था। आस-पास के सभी यात्री किसी न किसी बात को लेकर व्यस्त थे। सहसा आभास हुआ कि कोई पास आकर बैठ गया है। उषा कुछ खिसक कर बैठ गई।

"क्षमा कीजिये क्या आपका नाम माला वर्मा है ?"

उषा ने मुख घुमा कर देखा। व्यक्ति का मुख उसे कुछ परिचित सा लगा पर उसे उसने कहां कब देखा है, यह स्मरण नहीं आया। धुंधली

स्मृति पर छाया कोहरा हटाने के प्रयत्न में जो हल्की सी रुक्षता उसके मस्तक पर पड़ी लकीरों में झलक उठी थी उन्हें देख कर व्यक्ति कुछ अप्रतिम सा हो गया, लज्जित भाव से बोला, "कुछ अन्यथा न सोचें। तीन चार साल पहले जब मैं यहाँ पहली बार आया था तो चौपाटी पर आप ही के से मुख वाली एक बाला रोज मिला करती थी। उससे मेरी काफी मित्रता हो गई थी। आपको देख कर मुझे उसी का ध्यान आ गया था।"

उषा मधुर भाव से मुस्करा कर बोली, "एक सी आकृति मनुष्य को कभी-कभी बड़े धोखे में डाल देती है। अब ध्यान आता है कि कुछ दिन पहले मैं ने आपको न्यू एम्पायर में देखा था। तभी मैं सोच रही थी कि आपको कब कहाँ देखा है।"

व्यक्ति ने ,कहा, "लव इज ए मैनी स्पलैंडर्ड थिंग, अच्छा लगा आपको ?"

"जी हाँ, विशेष कर के जैनीफर का अभिनय। इन लोगों का अभिनय देख कर अपने देश के अभिनेता और अभिनेत्रियों का ध्यान आ जाता है। और तो और इन लोगों को हंसना भी तो नहीं आता। न ढंग का अभिनय है न ढंग की कहानी। मैं तो बेहद उकता चुकी हूँ हिन्दी फिल्मों से।"

"कोलाबा कौजवे।"

उषा उठकर खड़ी हो गई और व्यक्ति के किये नमस्कार के उत्तर में धीरे से मुस्करा कर बस से उतर पड़ी। और भी कुछ व्यक्ति उसके पीछे बस से उतरे लेकिन जिस ओर उसे जाना था उस ओर को वह अकेली ही थी। चिलचिलाती धूप में पसीने से तर मुख को पोंछती हुई वह सड़क पार करके घर के सामने जा पहुँची। लिफ्ट तैयार थी पर उसमें चढ़ कर जाने का मन नहीं हुआ। धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर उसने बालकनी में पहुँचकर काल बैल दबाया।

आशा ने किवाड़ खोल दिये।

"हलो दीदी ।"

सूखी हंसी हंस कर आशा ने कहा, "हलो, आज जल्दी कैसे आ गई ।"

अन्दर आकर मेज पर किताबें और नोट बुक पटक कर उषा पैर फैला कर कौच पर लेट गई, बोली, "मन नहीं लगा। सोचा शाम की पार्टी का भी इन्तजाम करना है इस कारण चलना ही उत्तम है। पंखा तो खोलो दीदी। हे भगवान् इस दिसम्बर के महीने में भी मारे गर्मी के पसीने की धार बह रही है।" कहते-कहते उसकी दृष्टि आशा के मुख की ओर चली गयी। ध्यान से देख कर बोली, "आज तबियत कुछ खराब है क्या ?"

आशा ने मुख फिरा कर कहा, "नही तो।"

"फिर इतनी उदास क्यों हो ? सुबह भी तुमने ठीक से बात नहीं की, अभी भी नहीं कर रही हो, क्या बात है ?"

"कुछ भी तो नहीं है, तुझे वहम हो गया है।"

उषा ने हाथ से आशा का मुख अपनी ओर करके कहा, "तुम्हारी आंखों में आंसू दीदी ?"

आशा ने चट से आंखें पोंछ डालीं और बात उड़ाने के लिये बोली, "क्यों तो, क्या रोने का ठेका तूने ही ले रखा है ?"

उषा के मन का स्वाभाविक स्नेह उभर आया, "अवश्य ही हंसने रोने का अधिकार किसी एक की बपौती नहीं है पर तुम्हें कभी रोते हुए नहीं देखा। मेरी कसम दीदी, बताओ न क्या बात है।"

आशा स्वस्थ होकर हंस पड़ी, "कहा न कि कुछ भी नहीं।" उषा का संदेह इस छद्म हंसी से दूर नहीं हुआ लेकिन आगे और कुछ भी न कह कर वह अन्दर चली गई। शान्ता देवी पलंग पर लेटी थीं। उषा धीरे से उनके पास आकर लेट गई और बड़े प्यार से पुकारा, "मां।"

शान्ता देवी ने आँखें खोल दीं, स्नेह से उसके मुख पर हाथ फिरा

कर कहा, "बड़ी जल्दी आ गयी आज। तेरा मुख दिन पर दिन दुबला क्यों होता जा रहा है उषा। देख छिपाना नहीं।"

उषा ने बहुत ही भोलेपन से कहा, "नहीं माँ। माँ, कान्ता की माँ मर गई।"

"अरे ?"

जितना भी उसने पुष्पा से सुना माँ को बता दिया, कहा, "ऐसे समय में क्या एक बार भी उसके घर नहीं जाना होगा माँ ?"

"जाना चाहिये उषा।"

स्वीकृति पाकर उषा पलंग से उठ कर दर्पण के सामने जा कर खड़ी हो गई। ध्यान से कुछ पल अपने को देखती रही, कुछ दुबला-सा मुख तो अवश्य हो गया था लेकिन और कोई कमी उसे अपने में दिखाई नहीं दी। दोनों हाथ ऊँचे करके उसने शरीर को मोड़ा। झुक कर कंधे से बाल ठीक करती-करती वह हँस पड़ी। शान्ता देवी पलंग पर बैठी हँसते मुख से उसकी ओर देख रही थीं। बिना मुड़े ही उषा ने पूछा, "क्या देख रही हो माँ ?" कह कर वह घूमी और उनके पैरों के पास बैठ कर बोली, "जानती हो माँ लोगों ने मेरा क्या नाम रखा है ?"

"नहीं।"

"मधुबाला, हिन्दी चित्रपट की सब से सुन्दर तारिका। उपमा देने के लिये लोगों को और कुछ नहीं सूझता। जहाँ जाओ बस इस फिल्म की चर्चा ही सुनने को मिलती है। मैं तो ऊब गई हूँ। अरे हाँ, बाजार से सब सामान मंगवा लिया ?"

"हाँ। सभी कुछ तैयार है लेकिन यह आशा को क्या हो गया है आज। रात को तो देखा नहीं था सवेरे से बिना खाये-पिये पड़ी है। पूछ देख क्या हुआ है। तबियत खराब हो तो कह दे उपाध्याय की दूकान पर चली जाए।"

उषा मुख झुका कर कुछ सोचने लगी। सब से अधिक आश्चर्य उसे आशा को देख कर हुआ था। सहसा ही उसमें इतना अधिक परिवर्तन हो

जाना असंगत सा लगता था, जीवन के सब से निर्बल पहलू को ही उसने प्राथमिकता दी थी। उषा को इन सब बातों से बड़ी ग्लानि होती थी। उस समय और भी दुःख होता था जब वह माँ का पीड़ित मुख देखती तथा बाहर के लोगों के अनपेक्षित मंतव्य उसके कानों में पड़ते। मुख पर कोई भले ही न कहे, पीठ पीछे बुराई करने वालों की संसार में कमी नहीं है। कहने वाला यह नहीं देखता कि उसकी धारणा सत्य पर अवलंबित है अथवा असत्य पर। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि किसी के बारे में हम कोई निश्चित धारणा तब तक नहीं बना सकते जब तक हम स्वयं अपने को उसी परिस्थिति में रख कर न देख लें। असमर्थता मनुष्य से अनिच्छित कार्य करवा सकती है इसे उषा मानती थी पर इस सत्य को स्वीकार करने के लिये उसका मन कभी भी तैयार नहीं होता था कि आशा पर किसी भी प्रकार का दबाव है अथवा वह स्वार्थ साधन का हेतु बनने का विरोध नहीं कर सकती। चरित्र और मर्यादा की रक्षा करने का सम्पूर्ण दायित्व स्वयं अपने पर होता है। आशा के कार्य कलाप के प्रति उसके मन में अत्यधिक घृणा थी। वह उसी की बहन है इस सत्य को स्वीकार करते भी वह हिचकती थी, लेकिन सत्य के नीचे जो सहज स्नेह छिपा रहता है उसी ने आज उसे स्मरण करवा दिया कि कैसी भी हो आशा है उसी की बहन, उससे घृणा करना उसे शोभा नहीं देता। यह सोच कर वह उठ खड़ी हो गई। बाहर के कमरे में आकर वह धीरे से आशा के पास बैठ गई।

साड़ी के पल्ले से मुख ढंके आशा सोफे पर पड़ी थी। उषा स्नेह से उसके शरीर पर हाथ रख कर बोली, "दीदी ?"

लाल सुर्ख आँखों पर से पल्ला हटा कर आशा ने क्षण भर के लिये उषा की ओर देखा और तत्क्षण ही नेत्र झुका लिये। पल भर की असहाय दृष्टि में भरी असीमित वेदना का अनुभव कर उषा का मन भर आया, कहा, "दुःख का क्षेत्र असीमित अवश्य होता है दीदी, पर उसे

सीमा में बाँधा ही नहीं जा सके ऐसी तो व्यवस्था किसी ने नहीं रखी मन की व्यथा कभी न कभी बाहर आ ही जाती है। मैं तुम्हें वह सब कभी नहीं दे सकी जो मुझे देना चाहिये था लेकिन बहन का दावा मेरा आज भी नहीं खोया है। उसी जोर से कहती हूँ, अपनी व्यथा मुझे भी बाँट दो।"

आशा उठकर बैठ गई और धीरे से हंसी। उस हंसी के पीछे सर्वस्व खो देने वाले मनुष्य की आह छिपी थी। दबे हुए संस्कार उभरे बिना नहीं रहते। स्वाभाविक लज्जा को दबा भले ही दिया जाय पर उसे जड़ से नहीं उखाड़ा जा सकता। मनुष्य की आन्तरिक अनुभूतियां कभी सुप्त नहीं होतीं वे मानों बिखर उठने की बाट जोहा करती हैं। आशा के मन में दबे संस्कारों पर एक के बाद एक करके इतनी चोटें पड़ रही थीं कि उसे लगता था वह पागल हो जाएगी। पिता के प्रति उभरती घृणा को वह कहां दबाये, उसे लगता था वह उसका विरोध नहीं कर सकती। विवशता जिस शून्यता को जन्म देती है वह उसके रोम २ में फैल चुकी थी। जब समझ नहीं थी तब सारे कार्य तिवारी जी की आज्ञा पालन करने के लिये करती रही और समझ आने पर अतीत की लज्जा ने उसे ऊपर नहीं आने दिया। चारित्रिक पतन की लज्जा ने उसे मर्माहत किया है, मां के अन्तर में कचोटने वाली आह और उषा के मन में उसके प्रति पनपती लज्जा का अनुभव करके भी वह कुछ नहीं कर सकी। पिता हो कर जब तिवारी जी ही दिन रात उसकी लज्जा के धागे तोड़ते जा रहे थे तो वह किस से आशा करती। सोच विचार करने का प्रयत्न नहीं किया, करती तो उसे अपने को समाप्त कर देना पड़ता। उषा के प्रश्न के उत्तर में उसने धीरे से आह भर कर मुख झुका लिया।

उसके पैरों पर हाथ रखकर उषा बोली, "नहीं बताओगी दीदी ?"

आशा ने मुख उठा कर शून्य भाव से दीवार की ओर देखा, कहा, "बोझ अपने आप ही ढोना पड़ता है उषा। अपने भार से दूसरे को बोझिल बना देना तो मानवीय नहीं है।"

"न हो मानवीय लेकिन बोझ हल्का करने का प्रयास तो स्वाभाविक है। श्रोता की ओर से सहानुभूति न भी मिले पर अपना मन तो शान्त हो जाता है।"

उषा के स्वर का स्नेह जितना अपरिचित था उतना ही अप्रत्याशित भी। विनष्ट आशा यदि संभावित हो उठती है तो मन स्तब्ध रह जाता है। वह कभी उषा के साथ नहीं चल सकी। जीवन का उपभोग, उचित रीति से हो या अनुचित, उसने किया था। पवित्रता का कोई भी मूल्य वह निर्धारित नहीं कर सकी थी। भौतिक सुख की लालसा नहीं वरन् लज्जित मन की भीरुता उसे घृणित बहाव की ओर खींच कर ले गई थी। नदी में बहते पानी के बहाव के समान सहज भाव से ही उसने उस घृणित जीवन को अपना लिया था पर जैसे बरसात में नदी का वृक्ष भंवरों से घिर जाता है वैसे ही उसका मन भी विभिन्न अनपेक्षित घटनाओं के घात प्रतिघात से आन्दोलित हो उठा। उषा कभी भी उसके प्रति स्नेहालु हो सकती है इस आशा को वह आज तक असंभव समझती आई है। अतः उसी नितांत अपरिचित स्नेह का अनुभव कर उसके नेत्र भर आये। मुख वह ऊपर उठा ही नहीं सकी; रूखे स्वर में बोली, "दुःख का सृजन तो मैंने ही किया है, उषा, फिर उसके लिये शिकायत कैसी!"

"मैं इससे इन्कार नहीं करती। दुःख को हम स्वयं आमंत्रित करते हैं, असंभव को संभावित सीमाओं में बांधकर लेकिन भूल मालूम हो जाने पर उसे सुधारा भी तो जा सकता है।"

आशा उत्सुक आशा भरी दृष्टि से उसकी ओर देख कर बोली, "सच कहती है?"

उषा ने दृढ़ स्वर में कहा, "हां दीदी। जो गिरा है वही उठने के माने समझ सकता है। जो कभी गिरा ही नहीं वह क्या जानेगा कि क्या होता है पश्चाताप और क्या है गिर कर उठने का प्रयत्न। मनुष्य अपने आप कभी नहीं गिरता, परिस्थितियां उसे गिरा देती हैं। गिर कर उठना

ही मनुष्य की पहचान है। सुधरने वाले को कोई नहीं रोक सकता दीदी।"

उषा से लिपट कर आशा हठात् रो पड़ी। रात्रि का अत्याचार अभी भी उसके रोम २ को जला रहा था। अत्याचारी के विरुद्ध विद्रोह करने की उसकी अशक्तता का लाभ उठाने वाले बर्बर पशु की अमानवता को उसने बिल्कुल नहीं छिपाया। "शर्मा को जानती है तू ?"

स्मृति पर जोर देते हुए उषा ने पूछा, "वही गोरा सा आदमी तो नहीं, जिसके यहां पापा अक्सर जाया करते हैं ?"

"हां वही। उसकी असलियत तू नहीं जानती। उसका असली नाम शेरसिंह है।"

उषा की आंखें फैल गयीं, "शेरसिंह ? बापरे !"

"पापा का मंत्रित्व इसी कारण छिना है। पुलिस शेरसिंह की खोज पिछले तीन सालों से कर रही थी। अचानक ही कल वाले पारसी की हत्या के सिलसिले में वह पकड़ में आ गया। हत्या के न जाने कितने अपराध उसके सिर पर हैं। उसका छूटना तो कठिन है ही पर मुझे नहीं लगता कि इतनी बदनामी के पश्चात् भी पापा यह रास्ता छोड़ देंगे। शर्मा के साथ मुझे जो कुछ करना पड़ा है उसका स्मरण कर तो मन करता है मैं मर जाऊं उषा। वह नहीं, कल कोई और आएगा और मैं कभी इस पंक से नहीं निकल सकूंगी।"

क्रोध और घृणा से उषा के शरीर में फुरफुरी सी आ गई, "पापा के ये अत्याचार तुम आखिर कहां तक सहती रहोगी दीदी ? नीचता की भी सीमा होती है। ओह, एक बाप इतना नीच भी हो सकता है। इससे तो हम पितृहीन होतीं सो ही अच्छा था। पापा को अपना पिता स्वीकार करते भी लज्जा आती है।"

"मैं कुछ भी नहीं कर सकती उषा। तुझसे छिपाऊंगी नहीं, पहले कभी पापा का दबाव इतना नहीं खला पर जब हाथ पाकर भी रमा ने कुछ नहीं किया तो उस समय मुझे अपने से इतनी घृणा हो गई थी कि

तब से कितनी ही बार मन चाहा है कि आत्म-हत्या करलूँ। उस दिन जो भी हुआ है मैंने नहीं किया, पापा ने मुझे वैसा करने के लिये मजबूर कर दिया था। वे रमा को उसके अधिकृत रुपये नहीं देना चाहते थे और इसी कारण मुझे वह सब करना पड़ा जिसे स्मरण कर के आज भी मैं मारे लज्जा और दुःख के सिर नहीं उठा सकती। उसी दिन रात को मैंने उसे शर्मा के यहाँ देखा था, तभी से मारे आशंका के मेरे प्राण निकल रहे हैं। समाज में मेरा जो स्थान है वह तुझ से छिपा नहीं है। मैं इतनी नीचे गिर चुकी हूँ कि उठने की सभी संभावित आशाएँ समाप्त हो चुकी हैं। मुझे ऐसी ही रहने दे पर रमा को तू कभी मत गिरने देना उषा। वह पशु नहीं वास्तव में मानव है।"

उषा खिले मुख से बोली, "रमा निर्बल नहीं है दीदी।"

आशा आँखें पोंछ कर बोली, "तेरी बात ईश्वर करे सच हो। रुपये का मोह इतना बड़ा होता है कि सरलता से उससे छुटकारा नहीं पाया जा सकता। वह गरीब है उसकी आवश्यकताएँ पूरी होनी ही चाहियें। शर्मा के जाल में वह अब नहीं फंसेगा, सोच कर मन को कितनी शान्ति मिली है कह नहीं सकती। अपने लिये मैं कोई दुःख नहीं करती उषा। मेरे जैसी सैंकड़ों लड़कियाँ इसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं। कोई विशेष दुःख नहीं होता। न अपनाने तक ही सोच विचार आते हैं, अपना लेने के पश्चात् मन स्वयं ही शान्त हो जाता है। प्रकृति का यही क्रम है अन्यथा कितने पागल हो जाते, मर जाते। हाँ, रमा को रुपये की बहुत आवश्यकता है। माँ से लेकर तू उसकी चार महीने की ट्यूशन के रुपये दे देना।"

कपाल पर आँखें चढ़ा कर उषा बोली, "मैं उसे रुपये दूँगी और वह ले लेगा? तुम पागल तो नहीं हो गई हो दीदी?"

आशा क्षण भर चुप रह कर बोली, "अच्छा तू मत देना, मैं ही उसे रुपये दूँगी। तू उसके घर चल सकती है?"

"मुझे उसका मकान तो नहीं मालूम । विशन जानता है । उसकी मां मर गई है जाना तो चाहिये ही । अरे चार बज गये । क्यों दीदी यह भौंसले कौन है ?"

आशा अजीब से स्वर में हँस पड़ी, "पापा का नया शिकार। मंत्रित्व-पद से उन्हें त्याग-पत्र देना पड़ा है पर विधान-सभा के एक दलीय मेम्बर वे अभी भी हैं। भौंसले की कोशिश से वे अपना खोया अधिकार पुनः प्राप्त कर सकेंगे। गनीमत यही हुई है कि पापा को सजा नहीं हुई अन्यथा शर्मा के चक्कर में वे फंसे तो इतने अधिक थे कि उन्हें भी काला पानी हो सकता था। अभी क्या हुआ है, उषा देखे जा।"

उषा को हँसी आ गई।

भौंसले और रणजीत उस दिन की पार्टी के प्रमुख अतिथि थे। आशा ने पहले तो इस पार्टी में सम्मिलित नहीं होना चाहा था पर उषा ने कहा, "आज क्या होता है सो तो देख लो दीदी। पापा ने सभी को एक जैसा समझ रखा है। इन रणजीत साहब के कारनामे बहुत सुने हैं आज हो जाय एक प्रदर्शन।"

आशा हँस पड़ी।

भौंसले ने आते ही आशा का हाथ थाम कर कहा, "बहुत इच्छा थी आप से मिलने की आशा देवी, वह आज पूरी हो गई। मैं आशा करता हूँ हमारी यह मित्रता कभी नहीं टूटेगी।" और उसी समय उसके नेत्र तिवारी जी के नेत्रों से जा मिले। हठात् उषा भी उधर देख उठी। तिवारी जी के नेत्रों का स्पष्ट आज्ञा का भाव दोनों से छिपा नहीं रहा। उषा के पलक नहीं झुके लेकिन आशा अधिक देर तक उनकी ओर नहीं देख सकी। उस दृष्टि में छिपी आज्ञा का भाव समझ कर वह जैसे ही उठने लगी कि उषा ने अपने पैर से उसका पैर दबा दिया। नीचे गिरा रूमाल उठाने के बहाने झुक कर आशा ने धीरे से कहा, "विरोध का मार्ग मेरे लिये खुला नहीं है उषा।" कह कर वह उठी और भौंसले के बढ़ाये हुए

हाथ में अपना हाथ देकर तिवारी जी की ओर मुख करके बोली, "आपको आपत्ति न हो तो पापा हम आज ताज में टी लेना चाहेंगे।"

तिवारी जी रणजीत की ओर देख कर बोले, "मुझे भला क्या आपत्ति हो सकती है बेटी ?"

आशा ने रणजीत की ओर देख कर कहा, "आशा करती हूँ आप कुछ अन्यथा नहीं समझेंगे मिस्टर साहू।"

रणजीत के ललाट पर न जाने क्यों पसीना आ गया, रूमाल से उसे पोंछ कर बोला, "जी नहीं, जी नहीं।"

"आइये मिस्टर भोंसले," कह कर आशा भौंसले का हाथ पकड़ कर धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई। उषा का मुख लाल हो गया, किसी प्रकार अपने को संवरण करके बोली, "आपको चीनी कितनी दूँ मिस्टर साहू।"

रणजीत उषा का यह भावहीन स्वर सुन कर एकाएक सारी हिम्मत छोड़ बैठा। सच पूछा जाय तो उषा के आगे उसका मुख खुलता ही नहीं था लेकिन कुछ भी न कहने से तो अच्छा नहीं दीखेगा, सोच कर उसने स्वर को यथासंभव संयत बना कर धीरे से कहा, "जितनी आप चाहें। आपके हाथ का दिया तो जहर भी अमृत हो सकता है फिर यह तो चीनी है।"

अपनी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों को विस्फारित करके उषा परिहास-तरल कंठ से बोली, "ऐसी बात है क्या ? तब तो प्रयोग करके देख लेना चाहिए। आपकी कृपा से पौटेशियम सायनाइड की एक-आधा बूँद तो घर में निकल ही आएगी, क्यों पापा ?"

रणजीत का मुख फक पड़ गया। खिसियानी हँसी मुख पर लाकर वह बैठा रहा। उषा निश्चिन्तता से तिवारी जी के क्रोध से लाल मुख को देख कर हँसती हुई बोली, "साधारण-सी बात कही है पापा। एक बात मैं तुम्हें बताऊँ। एक अभिनेत्री थी। प्रसिद्ध थी, अतः प्रेमियों की कमी

नहीं थी। एक दिन एक प्रेमीजी ने आकर कहा, मैं तुम्हारे लिये जान भी दे सकता हूँ। अभिनेत्री उन्हें अपने सोने के कमरे में ले गई। प्रेमीजी बहुत प्रसन्न थे। अभिनेत्री ने उनके हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा, 'तुम मेरे लिये अपनी जान भी दे सकते हो न ?" प्रेमीजी उत्साह से बोले, 'अवश्य मेरी प्राण।' अभिनेत्री मधुर भाव से छत की ओर उंगली उठा कर बोली, 'तो जरा उस फन्दे पर झूल जाओ मेरे प्रियतम।' फाँसी के फन्दे को देखते ही प्रेमीजी के होश उड़ गये। उन्होंने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा और सिर पर पैर रख कर भाग खड़े हुए, कहते हुए उषा खिलखिला कर हँस पड़ी। रणजीत का मुख राख के समान फीका पड़ गया, "मैं जाता हूँ," कह कर वह तेजी से उठा और तिवारीजी के रोकते-रोकते भी कमरे से बाहर निकल गया।

तिवारीजी से क्रोध संवरण नहीं हो सका, रणजीत के बाहर जाते ही वे उठे और क्रोध के मारे हाथों को मरोड़ते हुए बोले, "साधारण शिष्टाचार की सीमायें नहीं तोड़ी जातीं। अतिथि का सम्मान करना कर्तव्य होता है, इसे भी तू भूल गई है ?"

उषा तीव्र दृष्टि से उनकी ओर देख कर बोली, "नहीं भूली हूँ लेकिन आप पर यह प्रकट करने के लिये कि मैं दीदी के समान आपके हाथों की कठपुतली नहीं बन सकती, मुझे इस प्रकार का व्यवहार करना पड़ा है। इस पार्टी के मूल में कौन-सी भावना छिपी है वह मुझ से छिपी नहीं पापा। नकेल के साथ खिंचना मुझे नहीं आता यह आप जानते हैं। आप अपना यह अस्त्र मुझ पर उपयोग करने का प्रयत्न न कीजियेगा," कहकर वह मुड़ी और अन्दर चली गई।

पापा उसे भी आशा के समान अपनी उंगलियों पर नचाना चाहते हैं। सोचते होंगे उसे वे चींटी के समान मसल सकते हैं लेकिन उसे उन्होंने अभी ठीक से देखा जो नहीं है। किसी प्रकार वह उनका ऊपरी आवरण फाड़ डाले तो उन्हें संसार के सामने मुख दिखाने की हिम्मत नहीं

होगी। श्वेत खद्दर के परिधान के नीचे छिपे काले मन को किसी ने देखा नहीं है। यह श्वेत खद्दर का परिधान उनके देश प्रेम का परमिट है, समाज के अग्रणी उच्च सम्मानित पुरुषों के बीच सिर ऊंचा करके खड़े होने का अस्त्र है। उनका यह आवरण काश कोई फाड़ दे ताकि उनकी असलियत का भेद संसार पर खुल जाये।

उषा ने मानों सम्पूर्ण हृदय से पोल खोल देने की कामना की।

## नौवाँ अध्याय

शर्मा की असलियत का पता लगने पर रमानाथ निश्चिन्त हो गया और जब उसने तिवारी जी का मंत्रित्व पद छिन जाने का समाचार सुना तो वह ठठाकर हंस पड़ा। फीस जमा करने की अन्तिम अवधि भी समाप्त हो गई। अपने लिये उसे कोई दुःख नहीं था लेकिन रतिनाथ और कान्ता का जीवन भी मात्र इन्हीं कुछ रुपयों के कारण नष्ट हो जाएगा यह सोच कर उसका मन जैसे बैठ-सा गया। मां के मरने से इतना धक्का नहीं लगा था जितना इस विवशता से लगा।

आधुनिक युग में शिक्षा अर्थात् डिग्री का महत्व ही सबसे बड़ा है। नाम के आगे लम्बी चौड़ी डिग्री के बिना कहीं आदर नहीं होता। रतिनाथ का सम्पूर्ण जीवन पड़ा है, कान्ता के विवाह का दायित्व पूर्ण करना है। इतना सरल कोई नहीं है जो किसी की असमर्थता देख कर उसके प्रति सदय हो सके। विवाह के बाजार में रूप, धन और शिक्षा, तीनों का नीलाम होता है। लगाया हुआ दाव तीनों में से कोई भी जीत सकता है, वैसे खरीददार तीनों को एक साथ ही खरीदना चाहता है पर चूंकि भाग्य इतना पूर्ण नहीं होता अतः किसी न किसी कमी का रह जाना ही अधिक संभव है। बड़े-बूढ़ों से पूछिये, उनसे जिनके यहां विवाह योग्य लड़कियां कुंवारी बैठी रहती हैं, वे यही कहेंगे कि आजकल के लड़के लड़की को नहीं लड़की के बाप को देखते हैं। झूठ इसमें रत्ती भर भी

नहीं है। आज के ९९ प्रतिशत युवक यही चाहते हैं कि लड़की या तो अपने साथ ढेर सा दहेज लेकर आये या फिर इतना कमा सके जिससे उनका आर्थिक भार हल्का हो सके, अर्थात् उन्हें सब रूपों में रुपये का रूप ही अधिक प्रिय है। धन दौलत है भी बड़ी वस्तु, इसके बिना आधुनिक सुरुचि सम्पन्न समाज में आदर नहीं होता, और सबसे मुख्य बात देश सेवा नहीं हो सकती। चुनाव जीतने के लिये पैसा चाहिये, उसकी आवश्यकता कहीं पर भी कम नहीं पड़ती। मनुष्य की सत्ता भले ही कम हो जाय पर रुपये की नहीं हो सकती, वह आवश्यक है क्योंकि उससे पेट भरता है, ऐशो-आराम के साधन जुटते हैं। रमानाथ के पास कुछ भी नहीं है। कुछ भी हो कान्ता का विवाह वह अवश्य करेगा। यहां उसे कभी सुख नहीं मिला पराये घर जाकर कदाचित मिल जाये, इसी एक मात्र आशा में बंधकर उसके मानस में सैंकड़ों चित्र उभरने लगे। अपना विवाह वह करेगा नहीं। कान्ता के बच्चे को अपने पास रख लेगा, बस उसकी सभी आशाएँ और आकांक्षाएँ पूर्ण हो जाएँगी। बड़े २ स्वप्न देखना तो पागलपन है सो वह तो उसने नहीं देखे; हाँ, इतनी कामना की कि उसे अच्छा साथी मिले पर वह कहां मिलेगा, किस स्थान पर वह उसे खोजेगा। अपने समाज में वह कभी जाता नहीं, किसी सजातीय युवक से उसकी परिचय नहीं है और न परिचितों में ही ऐसा कोई है जिस पर वह विश्वास करके कान्ता का हाथ उसे सौंप सके। वह झूठ नहीं कहेगा। उसके पास धन नहीं है, है केवल कान्ता जिसे वह संसार भर के खजाने से भी अधिक मूल्यवान् समझता है।

रतिनाथ ने पास आकर हाथ का अखबार दिखा कर कहा "नारायण दास एण्ड कम्पनी की ओर से एक अकाउन्टैन्ट की मांग निकली है दादा। मैं प्रार्थना-पत्र भेज दूं ?"

रमानाथ ने पास खींच कर एकदम उसे छाती से लगा लिया, कहा, "ना रे, तुझे अभी से नौकरी के चक्कर में नहीं पड़ना होगा। इतनी चिन्ता क्यों करता है, खाने भर को अभी तो कमी है नहीं। मैं स्वयं आज

सेक्रेटरी से मिलूंगा।"

रतिनाथ ने भाई के मुख पर आंखें निबद्ध कर कहा, "तुम परीक्षा नहीं दोगे दादा ? एम. ए. का यह अन्तिम वर्ष है। पास होते ही तुम्हें अच्छी सी नौकरी मिल जाएगी। नहीं दादा तुम अपना वर्ष बेकार मत करो।"

रमानाथ की आंखें भर आयीं। रतिनाथ के स्वर में छलकते स्नेह का अनुभव कर उसका मन गद्गद् हो गया। बोला "मैं अब नहीं पढ़ूंगा रति। नौकरी मिलनी होगी तो बिना एम. ए. किये भी मिल जाएगी, नहीं मिलनी होगी तो नाम के आगे डिग्रियां लगाने से भी कोई लाभ नहीं होगा। कान्ता से तू कहना नहीं, हां। और देख तेरी फीस जुर्माने सहित मैं दो एक दिन में अवश्य जमा करवा दूंगा, तू अपने मास्टर साहब से कह देना।" और फिर उसे आगे कुछ भी कहने का अवसर न देकर बोला, "जा आज जरा अपने दोस्तों के यहां चक्कर लगा आ, बहुत दिन से गया नहीं है।"

रतिनाथ में इतना साहस नहीं था कि दादा की आज्ञा का उल्लंघन कर सकता, चुपचाप उठ कर चला गया। तेरह वर्ष के बच्चे को नौकरी कौन देता पर उसने जो अपनी ओर से प्रस्ताव किया था उसका स्मरण करके रमानाथ मन ही मन हंस पड़ा। धन उसे चाहिये इसमें सन्देह नहीं और यह सोच कर वह उठा। आलमारी खोल कर रखे हुए कपड़ों पर एक दृष्टि डाली। एक भी कमीज और पैण्ट साबुत नहीं बचा था। एक निर्बलता उसमें आरम्भ से ही रही थी। पाजामा पहनते उसे न जाने क्यों झेंप सी आती थी। बाहर वह कभी पैण्ट पहने बिना नहीं गया शायद इस कारण कि उसे देखकर कोई यह न कह सके कि वह इतना निर्धन है, इतना सा भी समेट नहीं सकता।

पैण्ट हाथ में लेकर देखा, उलटा-पलटा और तब सुई डोरा लेकर उसे रफू करने बैठ गया।

कान्ता किसी काम से उधर आई। मुख बहुत अधिक उतरा हुआ

और उदास था। रमानाथ को सुई डोरा हाथ में लिये दत्तचित्त हो फटी पैण्ट ठीक करते देखा तो एक फीकी सी मुस्कराहट मुख पर फैल गई, बोली "अभाव देवता से सामना कर रहे हो ?"

रमानाथ ने मुख ऊपर उठाये बिना ही कहा, "अवश्य। देखना है इस देवता के साथ किस सीमा तक लड़ाई की जा सकती है। हो सकता है वह हमसे पराजित हो जाए और नहीं भी हो तो भी इस लड़ाई को तो बन्द नहीं किया जा सकता। तेरा क्या विचार है। यह देवता हमें चुभन देता है तो हमें भी उसे चुभन देनी चाहिये।"

पंजों के बल खड़े हो कर कान्ता पंखी उतारती हुई बोली, "शठे शाठ्यं समाचरेत, हमारे शास्त्रों की ही उक्ति है लेकिन दादा इस नकली लड़ाई से किस का भला होगा। क्षत-विक्षत मन तो दिखाई देगा नहीं, दृष्टि में भूखा तन और फटे कपड़े ही आएँगे," कह कर उसके पास आ कर बैठ गई, कुछ पल देखती रही फिर बोली, "नाराज न होना दादा ! मुझे भी कहीं नौकरी कर लेने दो। मेरे भविष्य से अधिक तुम्हारा और रति का भविष्य मूल्यवान् है। सोचो तो, मेरा कहीं न कहीं विवाह हो जाएगा। पति से और कुछ न भी मिले तब भी खाने को रोटी और पहनने को कपड़ा तो मिलेगा ही। लड़की हो कर मैं इस से अधिक की न कामना ही करती हूँ न सोचती ही हूँ पर तुम दोनों क्या करोगे। इसी नष्ट-भविष्य को ले कर जीवन भर जलते रहोगे ?"

जब तक कान्ता बोलती रही रमानाथ मन लगा कर उसकी बात सुनता रहा। उस के चुप होते ही वह खिलखिला कर हंस पड़ा। कान्ता के नेत्रों में वेदना छलक उठी, उसने मुख झुका लिया। हंसी थमने पर रमानाथ सरस स्वर में बोला, "दुःख न मानना बहन। हंसी यों तो कभी आती नहीं लेकिन अवसर मिलने पर मैं उस का उपभोग करने से वंचित नहीं रहना चाहता। तू कहती है तेरा विवाह हो जाएगा। प्रथम तो उस का होना इतना सरल ही नहीं है, दूसरे विवाह ही तो जीवन का चरम नहीं है। तेरा विवाह मैं करना चाहता हूँ यह सत्य है लेकिन मन

न मिला तो विवाह करके क्या होगा । यह जीवन की एक आवश्यकता है लेकिन ऐसी नहीं जिस के बिना चल ही नहीं सके । विवाह से बढ़ कर मन का सुख है कान्ता, वह क्या विवाह करने से मिल ही जाता है ?"

कान्ता ने झुके हुए मुख से कहा, "मन को तो बेच देना पड़ता है न दादा अन्यथा वैवाहिक जीवन का सुख अभिशाप में परिवर्तित होते कितना समय लगता है । अपना सुख, अपनी स्वतन्त्रता स्त्री पति के सुख के लिए बलिदान कर दे यही तो हमारा समाज उस से चाहता है, तब मन का प्रश्न कहाँ रह जाता है ।"

रमानाथ के हाथ की सुई रुक गई थी । कान्ता की बात सुन कर जैसे उस की चेतना लौट आई । कपड़े में सुई फोड़ता हुआ बोला, "समाज का निर्माण हम ने किया है । स्त्री और पुरुष दोनों उस के अभिन्न अंग हैं । हम में यदि शक्ति और साहस है तो हम उसे अपने पीछे ले जा सकते हैं, शर्त केवल यही है कि हमारी शक्ति में चरित्र और दृढ़ता की शक्ति होनी चाहिये । कुछ लोगों ने मिल कर जो आदर्श बना दिये हैं उन्हें मान कर हम क्यों चलें । समाज पर अपना प्रभुत्व जमा लेने वाले उन गिने चुने व्यक्तियों के पास प्रभुत्व धन का ही तो होता है लेकिन यह स्थिति सदा नहीं रहेगी । "दि वर्ल्ड गोज विद मी" नहीं सुना तू ने ? दम्भ की बात नहीं है । अच्छाई को अधिक दिन तक नहीं दबाया जा सकता, वह एक दिन जीत कर रहती है ।"

"तो दादा, प्रमुख कौन है व्यक्ति या समाज ?"

"व्यक्ति । समाज व्यक्ति की इकाई की समष्टि है और व्यक्ति समाज का निर्माण करता है । मूर्तिकार मूर्ति का निर्माण कितनी सावधानी और सुघड़ता से करता है, अच्छी नहीं बनती तो फिर बनाता है फिर बिगाड़ता है और बनाने बिगाड़ने का यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक उसे अपनी सृष्टि से सन्तोष नहीं हो जाता । व्यक्ति भी मूर्तिकार है और समाज साधन । यदि वह कुशल कलाकार है तो अपनी इकाइयों को ले कर वह समाज की सर्वांग सुन्दर मूर्ति गढ़ सकेगा, सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

का प्रतिष्ठान कर सकेगा यदि स्वयं ही निर्बल है तो समाज कहाँ से उन्नत होगा, कैसे सम्पूर्ण बनेगा ?"

कान्ता मुस्करा कर बोली, "चारों ओर निर्बलता ही दिखाई देती है मुझे। इस के लिए दोषी व्यक्ति ही हुआ, फिर इस का प्रतिकार कैसे हो ?"

"क्रान्ति से। प्रत्येक वस्तु का अच्छा व बुरा पहलू होता है। बुरे पहलू को काट फेंका जाए तो क्या उन्नति की संभावना दिखाई ही नहीं देगी ? हाँ इसके लिए साहस की अवश्य भारी आवश्यकता है। एक छोटी-सी बात कहता हूँ। इतना सुधार हो जाने पर भी हमारे समाज ने विधवा को सुख से जीने का अधिकार नहीं दिया है। बातें सब करते हैं पर अपना समय आने पर मुख छिपा लेते हैं और विधवा यदि विवाह कर ले तो कैसे भूचाल ही आ जाता है। जानती है इस विवाह के विरोधी क्या दलील देते हैं ? कहते हैं। स्त्री का दो पुरुषों से शारीरिक संपर्क पाप है। पूछो इन कहने वालों से क्या पुरुष इस पाप का भागी नहीं बनता ? दूसरा विवाह करने पर क्या उसका पत्नी से शारीरिक संबन्ध नहीं होता ? पाप और पुण्य की यह दुहाई स्त्री के सम्बन्ध में ही क्यों दी है। विधवा विवाह चूंकि प्रथा सम्मत नहीं है इस कारण उसे घृणित समझा जाये इसे मैं नहीं मानूंगा। प्रथाओं का निर्माण मनुष्य मनोरंजन के लिये करता है कि जान लेवा बना देने के लिये। जिस बात को हमारे समाज के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने अच्छा मान लिया है उसे हम क्यों मानें। किसी भी चीज को स्वीकार करने से पहले उसे तर्क की कसौटी पर कसना चाहिये," कह कर उसने फिर पैण्ट सीने में मन लगा दिया।

कान्ता ने हाथ बढ़ा कर उसके हाथ से पैण्ट लेना चाहा पर उसने हाथ ऊँचा कर लिया, हँस कर कहा, "मुझे भी तो कुछ करने दे कान्ता। बैठा-बैठा निकम्मा हो रहा हूँ। विधान ने स्त्री-पुरुष दोनों को जब समान अधिकार प्रदान किये हैं तो कार्यक्षेत्र भी समान होना चाहिये।"

सुन कर कान्ता हँसने लगी तो बोला, "अभी हँस रही है। शादी

होगी तो पतिदेवता से बढ़-बढ़ कर बातें करेगी। तेरे सामने वह बेचारा मुख भी नहीं खोल सकेगा।"

कान्ता टेढी आँखें करके कृत्रिम रुष्ट स्वर में बोली, "हाँ जैसे तुम बहुत डरते हो न ? तुम देखने आ जाना। अभी कहते थे विवाह जरूरी नहीं है और अभी उसकी बात करने लगे। तुम्हारे मुँह में एक जबान है या दो ?"

"दो। एक तेरे लिये और एक अपने लिये। मेरे कहने से जैसे शादी करेगी ही नहीं, बड़ी भोली हो न।"

कान्ता हँस पड़ी, "मैं क्यों नही करूँगी। तपस्या करनी है तो तुम करो। दादा सच बताओ, तुम कब ब्याह करोगे ? माँ नहीं रहीं, अकेला घर मुझे काटने को दौड़ता है।" कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आई।

बात को हल्का करने के लिये रमानाथ ने परिहास करते हुए कहा, "शादी तो जरूर कर लूँ पर उसे खिलाऊँगा क्या। तेरा-मेरा सिर तो वह जरूर ही नहीं खाना चाहेगी और यह समझ रखना भाभी नाम का जीव सिर पर दो सींग लगा कर आता है। आ कर लड़ेगी तो मुख छिपाने को भी जगह नही मिलेगी।"

कान्ता चिढ़ कर बोली, "मैं जैसे उससे लड़ने के लिये ही तो बैठी हूँ। लड़ेगी तो तुम से लड़ेगी, मुझ से क्यों लड़ने लगी। आने दो, दो ऐसे प्यार से रखूँगी कि तुम मुँह बाये ताकते ही रह जाओगे।"

"आ हा हा हा। जा ले आ जा कर कहीं से मिले तो लेकिन कह देना उससे कि हमारे घर में खाने को हवा और पीने को पानी ही मिलता है।"

"अरे, उषा सब जानती है।"

रमानाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा, "जरा मुख तो देख आ काँच में।" फिर धूप की ओर देखा तो चौक कर बोला, "अरे इतनी धूप चढ़ आई। कम्बख्त घड़ी न होने से कितनी मुश्किल होती है। चल अब भाग यहाँ से, मुझे आज एक से मिलने जाना है। आज रुपये कमाने जाता हूँ।

फाइन के साथ तेरी और रति की फीस कल तक अवश्य जमा करवा दूँगा।"

कान्ता आशंकित हो कर बोली, "नहीं पढ़ना है मुझे।"

रमानाथ उठ गया, "तुझे पढ़ना है यह मैं कहाँ कहता हूँ, पर मुझे तो तुझे पढ़ाना है।" कह कर वह नल के नीचे जा कर बैठ गया। पानी की ठंडी धारा सिर पर गिरी तो उसे बहुत अच्छा लगा। क्षण भर के लिये वह रतिनाथ, कान्ता सभी को जैसे भूल गया। एक स्वप्न-सा उसके मानस में उभरने लगा जहाँ दुःख की अनुभूति नहीं थी, सुख का साम्राज्य था। उसकी अन्तर्निहित आकाँक्षाएँ ही देह धारण कर उसके नेत्रों के आगे नाचने लगीं। एक छोटा-सा घर, अच्छा पद और सुखी परिवार; बस इससे अधिक की उसने कामना नहीं की। और कान्ता तथा रतिनाथ को समृद्धि की सब से ऊँची सीढ़ी पर चढा कर वह मुक्त हो जाएगा। जिस आकाँक्षा को माँ ने कभी वाणी में नहीं बाँधा उसे ही वह पूर्ण करना चाहता था। जीवन-भर जलीं, अन्त भी सुखद नहीं हुआ। आत्मा को नहीं मानता। अपनी ओर से सब करके वह उनके प्रति अपने दायित्व से मुक्त होना चाहता था। और इन सब कामनाओं के मध्य में छिपी पड़ी थी उषा की वही तरल दृष्टि और कंपित ओठ वाला मुख। नल का पानी सिर पर पड़ता रहा, रमानाथ अपने ही स्वप्न में विभोर हो गया।

"नहाते ही रहोगे क्या दादा, खाओगे नहीं?"

हँस कर रमानाथ ने नल बन्द कर दिया। उसका मुख खिला हुआ था। कान्ता का मन उसका प्रसन्न मुख देख कर भीग गया। काश उसका यह दादा कभी दुखी न हो। कहाँ ले जा कर उसे वह छिपा दे कि दुःख की आँच उसका एक बाल भी नहीं छू सके।

कान्ता की एक पुरानी साड़ी को तहमद की तरह लपेटे रमानाथ नंगे बदन चटाई पर आ कर बैठ गया, बोला, "ला। रति नहीं आया अभी तक?"

रमानाथ खाते हुए बोला, "कल तक के लिये तो आटा है न घर में। आज संध्या तक कुछ रुपयों का जुगाड मैं अवश्य कर लाऊँगा लेकिन तू यह तो बता कि घर का काम सम्हाल सकेगी या नहीं। न कर सके तो सवेरे का खाना मुझ पर छोड़ दे, मैं बना लिया करूँगा।"

"और मैं राजपाट करूँगी। तुम्हारी बुद्धि क्या बिल्कुल ही उल्टी ओर चलने लगी है दादा ?"

"पर खाना बनाएगी तो पढ़ेगी कैसे।"

तवे पर रोटी डालने के बहाने कान्ता ने मुख फेर लिया, "तुम इस की चिन्ता मत करो।"

रमानाथ ने इस सम्बन्ध में आगे कोई बात नहीं कही। ऐसी बातों से कान्ता चिढ़ती है पर वह आखिर करे तो क्या करे। उसके पास साधन होता तो वह कभी उसे इतना काम नहीं करने देता, पर जब खुद का पेट भरने के लिये ही पैसे नहीं जुटते तो नौकरानी कहां से रखे। मां के जीवन काल में यह अभाव कभी अनुभव नहीं हुआ। इन कुछ दिनों में ही जैसे युग बदल गया। कान्ता तो कान्ता लगता था रतिनाथ तक भी मानों बहुत प्रौढ़ हो गया था और वह। आरम्भ से ही वह गम्भीर है लेकिन आज कल वह अपने को उतना संतुलित नहीं रख पा रहा है। उसे धन चाहिये, कहीं से भी, कैसे भी।

कान्ता उसकी थाली में रोटी डालने लगी तो वह हड़बड़ा कर बोल पड़ा, "अरे रे रखना नहीं। अधिक खा गया तो घर से निकला भी नहीं जाएगा।"

थाली में हाथ धोकर वह उठ गया।

अचानक कान्ता की दृष्टि खुले किवाड़ों की ओर चली गई "अरे ?" और वह बेलन छोड़ कर खड़ी हो गई। रमानाथ ने चकित हो कर पूछा "क्या हुआ ?" और कान्ता की दृष्टि का अनुसरण कर जिसे उसने देखा उसे देख कर उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। किवाड़ों के बीच आशा, उषा का हाथ पकड़े खड़ी थी। उघड़े बदन वह स्तब्ध-सा खड़ा रह गया।

आशा कभी उसके घर आ सकती है, यह उसकी कल्पना से परे की बात थी।

उसे वैसे ही स्तब्ध छोड़ कर कान्ता ने आगे बढ़ कर आटा सने हाथों से उषा का हाथ पकड़ लिया और भीगे स्वर में कहा "तू आई है उषा और दीदी आप भी। मेरे धन्य भाग्य, आइये।" रमानाथ के मुख से सारी कथा सुन कर भी उस ने घृणा या अरुचि की एक भी रेखा प्रकट नहीं होने दी, यह देख कर रमानाथ के नेत्र आश्चर्य से फैल गये। वह अपने को कितना अधिक संयत कर सकती है यह उसने आज देखा और देखता ही रह गया। हठात् तभी उसकी दृष्टि आशा की ओर चली गई, वह हंसती हुई उसकी ओर देख रही थी। मारे अरुचि के उसने मुख फेर लिया अचानक ही मुख से निकल गया, "अब यहां किस लिये आई हैं आप। कोई और कसर बाकी रह गई है ?"

कान्ता ने मारे लज्जा के लाल मुख करके कहा "छि: दादा।"

रमानाथ ठहरा नहीं। मुड़कर तेजी से अन्दर चला गया और कुछ ही पल बाद कपड़े पहन कर बाहर चला गया।

आशा के मुख पर म्लानता की एक भी रेखा दिखाई नहीं दी। वह उषा का हाथ पकड़े हुए जमीन पर बिछी चटाई पर आ कर बैठ गई। आशा दीवार पर टंगे लीलावती के चित्र को देखने लगी।

"खाना खाएगी उषा ?"

उषा ने अपने को सम्हाल कर कहा, "भूख तो है और तू बना रही है तो मैं ना क्यों करने लगी ?"

कान्ता बहुत ही अधिक प्रसन्न हो कर चौकी पर जा बैठी, हंस कर बोली "आप नहीं खाएँगी दीदी ?"

आशा ने मुख फिरा कर कहा "क्यों मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है ?"

उसका यह निर्मल स्वर सुन कर कान्ता का मन पुलकित हो गया। उसे लगा, रमानाथ ने सब झूठ कहा है। इतनी सभ्य और शिष्ट दिखाई

देने वाली युवती इतनी हीन क्या हो सकती है ? वस्तुतः कान्ता की प्रकृति अविश्वासी नहीं थी और मनुष्य के चेहरे-मोहरे से अधिक उसका स्वर उसे लुभा लेता था। मीठा स्वर उसकी सबसे बड़ी निर्बलता थी। उषा की ओर भी वह उसका स्वर सुन कर ही आकर्षित हुई थी। धीरे २ यह आकर्षण इतना अधिक बढ़ा कि उसने अपने को पूर्णतया उसी में जैसे खो दिया। रमानाथ, मां और रतिनाथ के बाद उसे यदि कोई प्रिय था तो वह उषा थी, उसी उषा की बहन आशा है। दादा ने झूठ सच जो भी मन में आया मिलाकर कह दिया है। सरल और स्निग्ध स्वर में वह हंस पड़ी, "तो फिर खड़ी क्यों हैं, आकर बैठिये न ?"

उषा की ओर पलभर देख कर आशा तुरन्त ही एक चौकी खींच कर उस पर बैठ गई। रमानाथ की जूठी थाली अभी तक वहीं पड़ी थी। उषा के उधर देखते ही कान्ता व्यस्त होकर बोल पड़ी, "ओह मुझे थाली उठाने का ध्यान ही नहीं आया।" और फिर उसने थाली दीवार की ओर सरका दी।

आराम से पैर फैलाकर उषा दीवार से टिक कर बैठ गई और हाथ के पास पड़ा पीतल का ढकना उठा कर उसे धीरे-धीरे बजाने लगी। आशा टकटकी लगा कर कान्ता के हाथों की ओर देख रही थी। कितने गोल और कितने पतले फुलके थे। उसने आज तक यह काम कभी नहीं किया था। मां बीमार हो जातीं या नहीं बनातीं तो वह उषा का मुख ही ताका करती है। उषा भी बनाये न बनाये कुछ भरोसा नहीं और तब कोई न कोई उपाहार गृह ही सहारा बनता है। कान्ता को इतने स्वच्छ और सुन्दर ढंग से रोटी बेलते देख उसे अपने पर बड़ी शर्म आई, कहा, "तुम तो कान्ता इस व्यापार में पूरी गुरु हो। मुझे अंगीठी तक जलाना नहीं आता। किसने सिखाया तुम्हें यह काम ?"

"आवश्यकता ने दीदी।"

कभी कभी की बात हो तो किया भी जा सकता है पर रोज-रोज का यह झंझट, बोली, "तुम्हें कभी आलस नहीं आता ?"

इस प्रश्न का उत्तर उषा ने दिया, "आलस की दुहाई पेट के आगे नहीं चलती दीदी। भूख जब अपने दल बल सहित सामने आकर खड़ी हो जाती है तब कच्ची पक्की जैसी भी बनाकर पेट में डालनी पड़ती है।"

कान्ता ने भी सहज भाव से कह दिया, "हाथ से काम करने में आलस कैसे दीदी, झूठा दिखावा करने से क्या लाभ। होटलों में हम खा नहीं सकते और नौकर रखने का भी बूता नहीं है। मां के जीवन काल में मैंने अक्सर ही यह काम किया है। आज वे मेरे पास नहीं है इस पर जैसे विश्वास ही नहीं होता," कहते-कहते वह सहसा रो पड़ी।

बात अचानक कहाँ जा कर उलझ गई थी। उषा तरल नेत्रों से कान्ता की ओर देखने लगी। पास जा कर सांत्वना देने की कोशिश नहीं की। उस से लाभ भी कौन-सा होता। रोने से और कुछ नहीं होगा जी की घुटन तो निकल जाएगी,-यही सोच कर उसने उसे रोने दिया किन्तु आशा का मुख झुक गया। सन्तान के लिये मां का अभाव कितना गम्भीर है इसका अनुभव उसका आज का नहीं है। मां के होने पर भी वह आज तक बिना मां की लड़की के समान रहती आई है। बहुत बचपन से तिवारी जी ने उसे शान्तादेवी की गोद से हटा लिया था और जो गोद आरम्भ में ही छूट गयी उसे वह दिन पर दिन और दूर हटाती गई। मां की ममता को उसने पाने से पहले ही खो दिया। यह खोना आज उसकी छाती में गहरे तक जा कर चुभ गया।

कान्ता धीरे २ अपने आप ही शान्त हो गई। सहने की शक्ति उसमें कम नहीं थी। उषा को देख कर वह न जाने क्यों अपने आवेग को रोक नहीं पाई, आंखें पोंछ कर हंसने का प्रयत्न करते हुए बोली, "मन कभी २ वश में नहीं रह पाता दीदी, फूट पड़ने का अवसर वह जैसे छोड़ना नहीं चाहता।" फिर उषा की ओर देख कर कहा, "खाएगी नहीं ?"

चुपके से आंखें पोंछ कर उषा सीधी होकर बैठ गई। थाली में बिना चुपड़े फुलके और दाल रख कर कान्ता ने दोनों के सामने रख दी।

ज़रा-सी भी लज्जित न हो कर कहा, "दाल के सिवा और कोई शाक नहीं है।"

बात कान्ता ने यद्यपि सीधे स्वर में ही कही थी पर वह दोनों के मन में जा कर चुभ गई। उषा का मुख ऊपर उठा ही नहीं, बिना चुपड़ी रोटी का कौर तोड़ते हुए उसकी आंखों से आंसू निकल कर थाली में टपक पड़े लेकिन इसे सिवा उसके और कोई नहीं जान पाया। मुख झुकाये वह चुपचाप खाना खाती रही।

खाना खा चुकने के पश्चात् आशा ने कहा, "तू यहीं ठहरेगी उषा ?"

"हां, मां से कह देना मैं दो तीन घंटे पश्चात् आऊंगी। तुम क्या घर जा रही हो ?"

आशा कुछ सोच कर बोली "घर ? अच्छा घर ही जाऊंगी वैसे··· लेकिन जाने दे। हां···।" कह कर उसने चुपके से बटुए की ओर इंगित कर दिया। उषा ने भयभीत भाव से सिर हिला कर बता दिया कि रमानाथ को रुपये देना उसके वश की बात नहीं है। वह उस से लड़ सकती है, चिढ़ा सकती है पर रुपये नहीं दे सकती चाहे वे उसके अधिकृत ही क्यों न हों। वह वास्तव में उससे डरती है इतना उसने नेत्रों से ही कह दिया।

आशा ने दस २ के कुछ नोट निकाल कर खाट पर रख दिये और कहा, "रमा की ट्यूशन के रुपये हैं।" और कान्ता के कुछ कहने से पहले ही वह मुड़ कर तेजी से कमरे के बाहर चली गई। कान्ता कहती ही रह गई, "मुझे नहीं रुपये आप दादा को ही दें दीदी।" पर आशा ने सुना ही नहीं तो वह उषा पर बिगड़ी, "मुझे क्यों आफत में डाल दिया तूने। रुपये देखते ही दादा मुझे खा जाएँगे।"

उषा पीछे हटकर बोली, "मैं क्या जानूं। मेरी अच्छी बहन, तू मेरा नाम मत लेना। उसे रुपये देने की हिम्मत मुझ में नहीं है यह तू जानती है। वह पहले ही मुझ से रुष्ट है रुपये देखकर और भी चिढ़ जाएगा। तू इन्हें छिपाकर रख दे और जब उसका मस्तिष्क शान्त हो तब दे देना।"

रुपये उठा कर चिन्तित भाव से कान्ता ने उन्हें दरी के नीचे रख दिया। ये रुपये पहले मिल गये होते तो कदाचित् मां नहीं मरती और दादा भी इतने अस्थिर न हो जाते। रमानाथ को चिन्तित देखकर उसका सैंकड़ों बार मन हुआ है कि कहीं भी कैसी भी नौकरी कर ले। कुछ तो भार वह कम कर ही सकती थी। रमानाथ कभी करने नहीं देगा इस कारण उसने इस विषय में उससे कोई चर्चा नहीं की थी पर मन ही मन वह एक प्रकार से सोच चुकी थी नौकरी अवश्य करेगी। जिस समय कालेज जाती है उस समय में कहीं भी उसे कार्य मिल सकता है। उषा से कहा, "एक बात कहूँ ?"

"हूँ।"

"मैं नौकरी कर लूँ तो कैसा रहे ?"

उषा पल भर चुप रही फिर बोली, "कर ले पर कहाँ करेगी।"

"यही सोच रही हूँ। जान-पहचान किसी से है नहीं, तू कहीं लगवा सकती है बात करके देख ले।"

उषा ने इस बार एकदम उसे अपने पास खींच लिया और उसके वक्ष में मुख छिपा कर रो पड़ी, "तू इतने कष्ट में है कान्ता!" इससे आगे उसके मुख से और कुछ नहीं निकला। रमानाथ इतने कष्ट में है इसकी कल्पना उसे नहीं थी। निर्धनता वास्तव में क्या होती है इसे देखने का अवसर पहले जिसने नहीं पाया है वह उसका जीर्ण रूप देखकर स्तब्ध रह जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। हवा के समान ऊपर से बहकर निकल जाने से ही तो थाह नहीं मिल जाती। गहराई का रहस्य जानने के लिए अन्दर तक घुसना पड़ता है। उषा को सबसे अधिक दुःख उन लोगों का खाना-पीना देख कर हुआ था। घी नहीं, शाक नहीं, जिस खाने को उसने कभी खाना नहीं समझा, रमानाथ और कान्ता उसी पर जीते हैं और वह कुछ कर भी नहीं सकती। आर्थिक सहायता यदि करना भी चाहे तो कोई उसे स्वीकार नहीं करेगा। दूसरे उसके अपने पास भी ऐसा कुछ नहीं कि किसी की सहायता कर सके। तिवारी जी का जितना

विरोध वह कर रही थी उसका परिणाम क्या होगा वह नहीं जानती थी, इस पर वह सोचना भी नहीं चाहती, जो होना है वह तो होगा ही फिर उस पर सोच विचार करके भी क्या होगा।

स्नेह पूर्ण दृढ़ता से अपने को उषा के बाहुपाश से छुड़ा कर कान्ता धीमे से मुस्करा दी और इतने मधुर भाव से कि उषा की पलक ही नहीं गिरी। उसे अपनी ओर एकटक ताकते देख कर कान्ता मुँह बना कर बोली, "देखती क्या है, यह कोई दादा का मुख है जो घूर रही है ?" उषा का मुख लाल हो गया, "हां बड़ा सुन्दर है ना वह, जो मैं देखूँगी ?"

"नहीं जी बड़ा कुरूप है। अरे उषा रानी अब इतनी न बनो कि मानने में ही नहीं आये। सच उषा तू जो दादा का हाथ थाम ले तो वह न जाने कहाँ के कहाँ पहुँच जाएँ। तू मानेगी नहीं पर सच कहती हूँ मुख से न कहकर भी वह तुझे न जाने कितना मानते हैं। पता नहीं क्यों आजकल मैं घड़ी भर भी उनकी ओर से निश्चिन्त नहीं रह पाती। वे कहीं भटक न जाएं उषा।"

बहुत ही प्रयत्न से मुस्कराकर उषा ने कहा, "कुछ भी नहीं होगा। तू डर मत। हाँ, एक बात तू उससे कह देना कि दीदी को जैसा उसने समझा है वैसी वे नहीं हैं। परिस्थिति मनुष्य से न जाने क्या-क्या करवा लेती है। उनका जो रूप उसने देखा है वह उनकी वास्तविकता नहीं है बल्कि असमर्थता है।" और फिर धीरे से कान्ता का हाथ छोड़ कर वह सीढ़ियाँ उतर गयी।

## दसवाँ अध्याय

रमानाथ के पास न कालेज की लम्बी चौड़ी डिग्रियाँ थीं और न किसी के दिये प्रशंसा-पत्र ही। ऐसे किसी व्यक्ति से उसका परिचय भी नहीं था जो उसकी सिफारिश कर सकता, सिफारिश जो नौकरी के संसार में सबसे महान वस्तु है। नौकरी के इच्छुक व्यक्ति के पीछे यदि किसी प्रसिद्ध आदमी द्वारा प्रदत्त प्रशंसा-पत्रों की पूँछ लगी है अथवा जहाँ वह नौकरी करना चाहता है वहाँ उसका कोई सम्बन्धी उच्च पद पर आसीन है, तो विश्वास कीजिये उसे बड़ी सरलता से नौकरी प्राप्त हो सकती है और लम्बी चौड़ी डिग्रियाँ होने पर भी यदि आपकी जेब प्रशंसा पत्रों के मोटे बंडलों से भारी नहीं है तो उन डिग्रियों को बाहर निकलने तक का अवसर नहीं मिलेगा। वैसे कभी-कभी आश्चर्य-प्रद घटना हो जाएँ तो कोई बड़ी बात नहीं है। खाली जेब लिए रमानाथ दास एण्ड कम्पनी के स्वामी नारायण के० दास से जाकर मिला और बिना किसी हिचक के कहा, "आपने अकाउन्टैन्ट के लिए जो मांग निकाली है मैं उसके सम्बन्ध में आपसे मिलने आया हूँ। मैं इस पद पर कार्य करने का इच्छुक हूँ।"

दास के पास इस पद के लिए इतने प्रार्थना-पत्र आ रहे थे कि वह असमंजस में पड़ गया था। किसे बुलाये, किससे ना कहे, कुछ भी समझ में नहीं आ सका था। कोई प्रार्थना-पत्र नहीं, पूर्व परिचय नहीं, वह

इतना स्पष्ट प्रश्न सुन कर चकित-सा होकर बोला, "क्षमा करें आपका परिचय जान सकता हूँ ?"

नौकरी के लिए उम्मीदवारी करने वाले लोगों में जिस भय और चिरौरी का भाव पाया जाता है वह रमानाथ में नहीं था। मिल जाये तो उत्तम है न मिले तो और भी कई राहें हैं। पूर्ण दृढ़ एवं स्थिर कंठ से कहा, "मेरा नाम रमानाथ है और मेरा ऐसा कोई आत्मीय स्वजन नहीं है जिसका नाम लेकर मैं किसी को प्रभावित कर सकूँ। किसी से इतना परिचय भी नहीं है जो आपको मेरी ईमानदारी का विश्वास दिला सके। यह अवश्य नहीं छिपाऊँगा कि मैं एम० ए० का विद्यार्थी था पर अब नहीं हूँ। आप स्थान दे सकें तो अवश्य मैं नौकरी करना चाहूँगा।"

दास एकटक उसके मुख की ओर देख रहा था। उसके चुप होते ही बोला, "पर आपने प्रार्थना-पत्र क्यों नहीं भेजा। ये देखिये इस पोष्ट के लिए मेरे पास कितने प्रार्थना-पत्र आये हैं।" कह कर उसने एक मोटा बंडल रमानाथ के सामने रख दिया।

रमानाथ ने उस ओर नहीं देखा, मुख झुका कर कहा, "नौकरी मिलनी होगी तो बिना प्रार्थना-पत्र दिये भी मिल जाएगी। मैंने आपसे कहा न कि अपने सिवा मेरा और कोई परिचय ही नहीं तो फिर बताइये क्या होगा प्रार्थना-पत्र देकर ? मैं आपको बाध्य नहीं कर रहा हूँ। आपका इतना समय नष्ट किया इसके लिए दुखित हूँ।" यह कह कर उसने जाने के लिए शरीर को मोड़ा ही था कि दास ने झुक कर उसका हाथ पकड़ लिया। रमानाथ चकित होकर मुड़ा।

उसके मुड़ते ही दास हँस कर बोला, "आप जा कहाँ रहे हैं। यह आपने कैसे समझ लिया कि आपके साथ बात करके मैंने अपना समय नष्ट किया है ? मैं आपको स्थान दूँगा पर एक शर्त पर।"

"क्या ?"

"आपको अपने बारे में मुझे सब कुछ बताना होगा। इतना तो मैं समझ सकता हूँ कि यह नौकरी आपने विवश होकर ही की होगी, कारण

बीच में ही पढ़ाई छोड़ कर आना किसी साधारण कारण का परिणाम नहीं होता। मुझ पर यदि विश्वास कर सकें तो अपना इतिहास कह दीजिये, नहीं भी कहेंगे तब भी चूँकि कह चुका हूँ, इस कारण आपको मैं स्थान तो दूँगा ही। आप जब चाहें आकर जायन कर लीजिये।"

मारे कृतज्ञता के रमानाथ की आँखों में आंसू भर आये। निर्बलता कहीं प्रकट न हो जाये इस भय के मारे उसने चुपके से अपनी आँखें पोंछ डालीं। निर्बलता का प्रकटीकरण मानव के व्यक्तित्व की महत्ता को नष्ट कर देता है। स्वभावजन्य कमजोरी को जो लोग छिपा सकते हैं वह दूसरों को बहुत जल्दी प्रभावित कर लेते हैं। यों मत एक नहीं, दो हैं। एक पक्ष का कथन है कि निर्बलता को प्रकट न करना दुबका चोरी है, अविश्वसनीय है; और दूसरा पक्ष कहता है कि क्यों अपनी कमजोरी को दूसरे के सामने प्रकट किया जाय। संसार रोने वाले का परिहास करने के लिए सदा तैयार रहता है, उसके साथ कोई नहीं रोना चाहेगा पर जो हंस सकता है वह संसार को भी अपने साथ हंसा सकता है। वस्तुतः निर्वलता को छिपा लेना ही उत्तम है। कमजोर समझ कर विपक्षी वार करने से नहीं चूकता। उसके पास कोई और जोर तो था नहीं स्वभाव और व्यक्तित्व की दृढ़ता ही तो थी जिनके कारण ही आज वह दास को प्रभावित कर सका अन्यथा कितने ही योग्य से योग्य व्यक्ति असहाय भटकते रह जाते। विना सिफारिश और पीछे के जोर के आजकल नौकरी मिलना असंभव यदि नहीं है तो भी कठिन अवश्य है। देश की आधी से अधिक जनता नौकरी पेशा है, दिन रात अफसरों के ताने सुनना, अपमान सहते रहना और एक दिन असह्य हो जाने पर त्याग-पत्र देकर वहाँ से हट जाना, लेकिन इस हट जाने की परिणति भी स्वतन्त्र अस्तित्व में नहीं होती। एक को छोड़ कर दूसरे के पास जाना पड़ता है, पेट की आग फिर उसी अपमान और शोषण के क्रम को आरंभ कर देती है। पास में इतनी पूँजी नहीं होती कि कोई स्वतन्त्र व्यापार किया जा सके, किया भी गया तो व्यापारिक बुद्धि के अभाव में पास का

सब स्वाहा ही जाता है ।

"क्या सोचने लगे आप ?"

रमानाथ ने अपने को सम्हाल कर कहा, "जी कुछ नहीं । मैं सचमुच ही आपका बहुत कृतज्ञ हूँ । बिना किसी पूर्व परिचय के आप मुझ पर इतना विश्वास कर सके यह मेरा नहीं आपका गौरव है । अपने पर तो सभी विश्वास कर लेते है दूसरों पर कर सकना ही बड़ी बात है । इतना अविश्वास मुझे अपने जीवन में मिला है कि मैं यह भूलने लगा था कि विश्वास भी अब यहाँ बाकी रह गया है । अपने बारे में मैं आपको इतना ही बता सकता हूँ कि मेरे मां बाप नहीं हैं, एक छोटा भाई और छोटी बहन और है जिनके स्कूल की फीस जमा करने के मुझे रुपये चाहिए । मैं बहुत ही आवश्यकताओं से घिरा हुआ हूँ ।"

दास ने सरल स्वर में कहा, "मैं दूँगा ।"

"तो मैं आज से ही काम सम्हाल लूँगा । मुझ पर आपने विश्वास किया है और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसे मेरे सम्बन्ध में खोने का कोई अवसर आपके सामने नहीं आएगा । विश्वासी को विश्वास देना मैंने सीखा है ।"

दास रमानाथ के मुख की ओर देख कर विश्वास पूर्ण ढंग से मुस्कराया और फिर अपना हाथ उसके हाथ में देकर बोला, "वैल, मैं चल दिया । यह रहा आपका बोझ, विशेष मेहनत आपको नहीं करनी होगी, बस जमा-खर्च और इन्कमटैक्स का ध्यान रखना होगा । सबसे अधिक मैं इन्हीं लोगों से घबराता हूँ ।" फिर कुछ हंस कर कहा, "शाक में पड़ने योग्य नमक जितना झूठ तो बोलना ही पड़ता है मिस्टर नाथ, अन्यथा मुझे यह फर्म कल ही बन्द कर देनी पड़े । मैं आशा करता हूँ आप मुझे गलत नहीं समझेंगे । और हां आपने खाना नहीं खाया हो तो मेरे साथ चलिये । मेरा बड़ा लड़का लखनऊ से आया हुआ है आपसे मिल कर उसे प्रसन्नता होगी ।"

रमानाथ के मुख पर आश्चर्य का भाव देख कर वह हंस पड़ा, "लगता

है आपने अपना चेहरा आइने में कभी देखा नहीं है। आप जानते हैं मैं व्यापारी आदमी हूँ और मनुष्य का चेहरा देख कर उसके बारे में पता लगा सकता हूँ। आपके बारे में मैंने जो विचार निश्चित किया है. देखना है वह कहाँ तक सही निकलता है। आप पर विश्वास किया जा सकता है। चलिये घर चलें।"

रमानाथ नम्रता से बोला, "जी नहीं, मैं खा आया हूँ, आप जाएँ।"

"लेकिन आज आप का संध्या का खाना मेरे यहाँ ही होगा।"

किसी का विश्वास मिल जाना कितनी बड़ी चीज है। तरल मन से रमानाथ ने दास का प्रस्ताव मान लिया।

बाहर आकर दास अपनी कार पर चल दिया। ओपेरा हाउस के चौराहे पर कारों की लम्बी कतार खड़ी थी। सामने बाधा देख कर दास को अपनी कार रोक देनी पड़ी। इंजन बन्द करके उसने सिगरेट मुख में लगाकर उसे सुलगाया ही था कि पास की कार में किसी ने पुकारा, "हलो दास।"

"हलो," तीली बुझा कर दास ने सड़क पर फेंक दी। मुख घुमा कर कहा, "कहाँ से आ रहे हो ?"

तिवारी जी जो खादी के शुद्ध श्वेत परिधान में थे बोले, "आ नहीं रहा जा रहा हूँ। विधान सभा के अधिवेशन चल रहे हैं। सोचता हूँ किसी प्रकार अपने सिर पर लगे इस झूठे अविश्वास को दूर कर दूँ। जो कार्य किया नहीं उसकी लज्जा ओढ़ी नहीं जाती दास। मुझे जरा भी नहीं मालूम था कि यह व्यक्ति शेरसिंह है। और तो और कम्बख्त ने मुझसे वचन तक ले लिया था इस बार चुनाव में मैं उसे भरसक वोट दिलाऊंगा। यह भौंसले नहीं होता तो पता नहीं क्या होता।"

दास को आशा का ध्यान आ गया। मुख से कुछ भी नहीं कहा, "बोला, किसी पर एकदम विश्वास कर लेना सरल नहीं है भाई। तो क्या तुम अधिवेशन में भाग लेने जा रहे हो ?"

"हाँ।"

मौज तो तुम्हारी है दोस्त। सत्ताकाल तक घर बैठे तनख्वाह मिलती है, जेब गर्म करने के भी बहुत से साधन हैं। मिल सके तो हमें भी मैम्बरशिप दिलादो, फर्म को ताला लगा आऊँगा।"

तिवारी जी कट गये।

दास हंस दिया। आगे की कारें सरकने लगीं तो दास ने पंक्ति चालू करके कहा, "अभी तो चल दिये, समय मिले तो संध्या को उधर आना, अपने नये अकाउन्टैन्ट से तुम्हारा परिचय करवाऊँगा। मुझे विश्वास है उस युवक को तुम पसन्द करोगे। मैं देखना चाहता हूँ तिवारी मनुष्य की बाह्य आकृति कहाँ तक उसके अन्तर की परिचायक होती है। इस परीक्षण में सफल हो गया तो मुझे उतनी ही प्रसन्नता होगी जितनी तुम्हें चुनाव जीतने पर होती है। अच्छा···।"

एक दूसरे को अभिवादन कर दोनों दो ओर चले गये।

ओपेरा से तिवारी जी राक्सी सिनेमा की ओर मुड़ गये। बगुले से श्वेत परिधान में वे एक सौम्य और उत्साही समाज सेवी नेता दिखाई दे रहे थे। उन्हें देख कर उनके नेक इरादों में अविश्वास नहीं किया जा सकता था। परिधान मनुष्य की वास्तविकता की कसौटी नहीं है लेकिन इसे महत्व कौन देता है।

राक्सी सिनेमा के दरवाजे पर नई डी-सोटो कार की खिड़की के पास खड़ा रणजीत सिगरेट फूँक रहा था। उस दिन के पश्चात तिवारी जी ने उसे आज देखा था उसे देखते ही उन्होंने कार रोक दी, पुकारा, मिस्टर साहू ?

रणजीत ने हाथ उठा कर अभिवादन किया। उस दिन का अपमान स्मरण आते ही उसका मुख लाल हो गया। अपनी लज्जा को सम्हालते हुए उसने सिगरेट नीचे फेंक कर पैर से कुचल दी और पास आकर बोला, "कहिए कुशल है ?"

"कृपा है आपकी, और तो सब प्रसन्न हैं ?"

"जी हाँ।"

तिवारी जी ने स्वर को बहुत मुलायम करके कहा, "आपने उस दिन के बर्ताव के लिए उषा बड़ी दुखित थी। दो तीन दिन से वह कालेज नहीं जा सकी अन्यथा आपसे क्षमा मांग लेती। बड़ी उदास रहती है आजकल। आपने भी बस जरा सी बात पर उससे मिलना-जुलना ही छोड़ दिया। लड़की है जरा परिहास प्रिय लेकिन मन उसका बहुत स्वच्छ और कोमल है। आप क्या सचमुच उससे बिल्कुल ही सम्बन्ध तोड़ आये हैं ?"

रणजीत एकदम फिसल गया, "जी नहीं। मैं आज ही उनसे मिलूँगा। हाँ, एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ। रमा क्या अब आपके यहाँ नहीं आता ?"

रमानाथ का नाम सुनते ही तिवारी जी क्रोधित हो गये, बोले, "उस निर्लज्ज का नाम भी मत लीजिये आप मेरे सामने। अकेली लड़की को देख कर जो अपना पशुत्व उस पर प्रयुक्त करना चाहे उसे मैं अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता हूँ।"

रणजीत स्तब्ध होकर बोला, "कह क्या रहे हैं आप ?"

"मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ मिस्टर साहू, स्वयं उषा ने अपनी भूल स्वीकारकर ली है। मनुष्य की वाह्य आकृति उसके अंतर की परिचायक कभी नहीं हो सकती। अच्छा आज तो मुझे आज्ञा दें, कभी मिलूँगा आपके पिता जी से।"

"जी अवश्य आइयेगा। वे भी आपसे मिल कर बहुत प्रसन्न होंगे।"

उसे वहीं छोड़ कर तिवारी जी आगे बढ़ गये। रमानाथ के लिए रणजीत ने जो सुना था उस पर विश्वास नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में वह उससे बहुत ऊँचा है, इस पर उसने सदा से विश्वास किया था। उसका अपना कोई आदर्श नहीं था। उसका चेहरा-मोहरा और पहनाव-उढ़ाव उसके लिए वरदान था। लोग चकाचौंध की ओर ही खिंचते हैं। स्वाभाविकता का युग गया, आज का युग कृत्रिमता का पुजारी है। जो संसार को ठग सकता है उसका जीवन अबाध गति से सबमें बहता हुआ

चला जाता है। मनुष्य का स्वभाव विभिन्न भावनाओं का स्थल है। अपना भला सभी चाहते हैं और अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए साधारणतया सभी प्रयत्नशील रहते हैं। यह साधारण जन समुदाय का विराट चित्र है। चिन्ता करने के लिए मनुष्य का अपना जीवन ही इतना लम्बा चौड़ा है कि परमार्थ के लिए वह सहसा सोच ही नहीं सकता। समाज में फैली अव्यवस्था ही इस भावना के लिए उत्तरदायी है। देश में उन लोगों की कमी नहीं है जो दो जून भी पेट भर कर नहीं खा सकते, रहने के लिये जिनके पास एक झोंपड़ी तक नहीं है और यहाँ। लाखों मनुष्य फुटपाथ को घर बनाये अपनी उम्र निकाल देते हैं और उन लोगों की भी कमी नहीं है जो कभी जमीन पर अपना पैर नहीं रखते। अपने समाज की विशिष्टता और धन का गर्व उनमें जीवन की वास्तविक अनुभूति कदाचित ही भर सकता है। संसार में उनके लिए अजेय कुछ भी नहीं है। किसी की लज्जा और मर्यादा को भी वे हंस कर खरीदते हैं। इतना वीभत्स और कुरूप होने पर भी समाज का यह अंग आज भी नहीं गला है, सौंदर्य की विकृति धन का सहारा पाकर यहां पूर्ण सशक्त रूप धर कर आ खड़ी होती है लेकिन लज्जा खरीदना ही तो प्राप्ति का चरम नहीं है, धन से मनुष्य का मन भी खरीदा जा सकता है? रणजीत इतने दूर तक नहीं सोचता। भौतिकवादी वह है लेकिन उषा के सम्बन्ध में वह जानता है कि चाँदी का अम्बार लगा कर भी उसे अपना ओर नहीं खींच सकता, तब क्या तिवारी जी सच कहते हैं? सच में क्या रमानाथ इतना गिर गया है। यदि वास्तव में यह सच है तो वह सोच लेगा, संसार में ऐसा कोई नहीं जिस पर विश्वास किया जा सके। मन ही मन अत्यन्त चंचल होकर उसने चित्र देखने का विचार छोड़ दिया और गिरगाँव की ओर मुड़ गया। रास्ते भर उसके मस्तिष्क में तिवारी जी की कही हुई बातें ही घूमती रहीं। रमानाथ को वास्तव में उसने मित्र रूप में देखा था। उससे परिचय प्राप्त करने में बहुत मेहनत उसे करनी पड़ी थी। अन्य युवकों के समान या यों

कहिये धनिक पुत्रों के समान ही उसमें भी कमजोरियां थीं पर रमानाथ को तो उसने सदा से उतना ही दृढ़, उतना ही संयमी पाया है जैसा वह आरम्भ से उसे देखता रहा है। वही रमानाथ इतना गिर गया है ? यह सुन कर उसे उतना ही दुःख हुआ जितना बाप को बेटे की मृत्यु का समाचार सुन कर होता है।

सीढ़ियां चढ़ कर उसने दरवाजा खटखटाया "रमा ?"

कान्ता ने किवाड़ खोल कर देखा, पहचान कर धीरे से हंसी, "आइये।"

रणजीत खड़े २ ही बोला, "तुम मेरी बात का सही २ जवाब दो तो बैठ सकता हूँ। बोलो दोगी ?"

"देने योग्य हुई तो अवश्य दूंगी आइये।"

रणजीत ने बैठते ही पूछा "तिवारी जी और रमा के बीच क्या बात हुई है ?"

कान्ता का पहले तो मन हुआ कि कुछ न कहे पर न कहने से रणजीत गलत धारणा लेकर जाएगा, सदा रमानाथ को दोषी ही समझता रहेगा अतः जहां तक वह कह सकती थी उसने कह दिया और फिर चुप होकर उसका मुख देखती रही।

इतनी देर से रुकी हुई सांस छोड़ कर रणजीत ने कहा "जी गया, सच कहता हूँ कान्ता बहन मैं स्वयं कितना ही खराब क्यों न होऊँ पर यह मैं सहन नहीं कर सकता कि रमानाथ के लिये कोई इतनी घृणित बात कहे।"

"लेकिन आप क्यों अपने को सब की दृष्टि में इतना गिराते है।"

रणजीत खिलखिला कर हंस पड़ा "आनन्द आता है। जीवन है मौज करने के लिये और तपस्या करने में मेरा मन नहीं लगता। खाने पीने की कमी कभी आ नहीं सकती, बताओ किस लिये मैं किसी की चिन्ता करूँ। मुझे इस बात से कभी लज्जा भी नहीं आई कि लोग मुझे आवारा कहते हैं। अरे जिस के पास छाती नहीं है वह क्या खा कर

इस पदवी को पाएगा । मैं शूरवीर हूँ ।"

कान्ता को हंसी आ गई ।

"हंसती क्या हो । दिखा दो कोई ऐसा जो मेरी तरह छाती ठोक कर कह सकता हो कि मैं आतातायी हूँ ।" फिर हंसता हुआ उठ कर बोला "जाता हूँ । परीक्षा के अभी बहुत दिन हैं, कश्मीर का स्नो फाल देखने जा रहा हूँ । रमा शायद नौकरी के चक्कर में ही घूम रहा होगा । जिद्दी है इस कारण कहने की हिम्मत नहीं होती और उसका अपमान करने का भी सहास नहीं है वरना कह सकता था मेरे पास रुपये पैसे की कमी नहीं है । अच्छा जाता हूँ ।"

बाहर निकल कर वह खड़ा ही हुआ था कि दो तीन भिखमंगे लड़कों ने उसे घेर लिया, "एक पैसा सेठ ।"

"भाग जाओ ।"

"कल से कुछ नहीं खाया सेठ । इस पाव रोटी के साथ खाने के लिये भाजी दिला दो सेठ । भगवान तुम्हारा भला करेगा सेठ ।"

मारे घृणा के रणजीत के शरीर में फुरफुरी-सी उठ आई । जेब में हाथ डाल कर जो भी निकला उसने उनकी ओर फेंक दिया और कार की तरफ भाग खड़ा हुआ । बैठते-बैठते देखा, अपंग भिखारी और बच्चे कुत्ते जैसे उन पैसों पर टूट पड़े थे । उसने दृष्टि घुमाली और कार आगे बढ़ा कर अपने से ही बोला, कम्बख्तों ने पैसा बनाने के लिए हाथ पैर कटा दिये हैं ।

उषा से एक बार मिलने के लोभ ने उसकी डी-सोटो का मुख कोलाबा की ओर मोड़ दिया ।

दरवाजा बन्द नहीं था । कमरे में अकेली आशा थी । रणजीत को देख कर परिचय का भाव मुख पर आ गया और वह हंस दी । आज उसके मुख पर प्रसाधन नहीं था और उस बिना प्रसाधन के मुख को देख कर रणजीत को यह समझते देर नहीं लगी कि अव्यवस्थित जीवन के पदचिन्ह उस मुख पर विद्यमान हैं । कितना अन्तर है इसके और

उषा के मुख में। कहाँ वह खिले गुलाब-सा मुख और कहाँ वह झुलसा हुआ चेहरा।

आशा हँसी, "आइये। पापा हैं नहीं और उषा अपनी एक मित्र के यहाँ गई है, आप चाहें तो थोड़ी देर बैठें।"

"जी हाँ बैठूँगा।" कह कर वह लज्जित-सा मुस्करा दिया। आशा उसके मन की बात समझ गई है यह सोच कर उसके ललाट पर पसीना आ गया। आशा उसकी ओर देख रही थी यह समझ कर उसने अपना मुख दीवार की ओर करके एक चित्र देखते हुए कहा, "कश्मीर का है शायद।"

"हाँ। आप गये है कभी वहाँ ?"

"जी हाँ बहुत बार। लोगों को वह स्थान गर्मियों में पसन्द आता है और मुझे सर्दियों में। मैं आज कश्मीर जा रहा हूँ, इसी कारण सोचता था आप सबसे मिल लूँ। कुछ मंगाना हो तो आज्ञा कीजिये।"

आशा हंस कर बोली, "जी कृपा है आपकी।" जमीन पर पैर रखने से पहले ही आसमान की ओर ताकने वाले युवकों के सपर्क में वह बहुत आई है। वीभत्स को सौंदर्य का आवरण ओढ़ा कर ही वे आधुनिकता की इति श्री समझते हैं। उचित अनुचित समझे बिना आँखों को अच्छी लगने वाली वस्तु की ओर वे भाग खड़े होते हैं। रणजीत भी वैसा ही है और यह समझ कर उसके मुख पर मुस्कराहट फैल गई।

यह उषा नहीं है सोच कर रणजीत का मन हो रहा था कि उठ कर भाग जाय लेकिन बैठने के बाद यह कैसे कहे कि वह जाना चाहता है।

आशा ने ही पूछा, "कुछ पीएँगे ?"

रणजीत धीरे से बोला, "क्यों नहीं।"

आशा हँसती हुई बोली, "सुरा देवी की अराधना तो यहाँ हो नहीं सकेगी, उषा को बहुत घृणा है। चाय शर्बत स्क्वैश जो कहें पिला सकती हूँ।"

"मैं शराब नहीं पीता।"

"आश्चर्य है", कह कर आशा उठी और अन्दर चली गई। आशा के यह शब्द रणजीत को चुभ गये। यह लड़की अपने को आखिर समझती क्या हो। वह बहुत चालाक है इसमें सन्देह नहीं और वह उससे जीत नहीं सकता इसका भी उसे विश्वास था। मन में कटुता नहीं थी लज्जा थी। आशा उस दिन बाहर चली गई थी लेकिन उषा ने इससे छिपाया तो नहीं होगा सोचते ही वह उठा और तेजी से जाने के लिए घूमा ही था कि उषा आ गई। रणजीत उसे देखते ही सिटपिटा गया। उसके पैर वहाँ चिपक गये। उषा ने कहा, "अरे जा रहे हैं आप। बैठिये न। कहिये कुशल तो है ?"

रणजीत क्या करता, चुपचाप आकर बैठ गया। इसी समय आशा आई, बोली, "रणजीत साहब मिलने आये हैं तुमसे।"

"पर ये तो उठ कर भागे जा रहे थे दीदी। गनीमत समझो कि मैं आ गई। अन्यथा दर्शनों से वंचित ही रह जाना पड़ता।"

रणजीत कट गया।

"मुझे देर तो नहीं हुई दीदी ?"

"ना।" फिर धीरे से पूछा, "रुपयों का क्या हुआ ?"

"होता क्या। कान्ता के पास हैं। रमा आया नहीं था और मैं बच गई।" रणजीत की ओर देख कर वह हंस पड़ी, बोली, "कहिये महाशय, आज फिर विष पान करने का विचार है क्या ? उस दिन आप चले गये और आपकी इच्छित वस्तु मैं नहीं दे सकी इसका दुख आज भी कम नहीं हुआ है। आज्ञा हो तो सेवा में उपस्थित करूं।" और खिलखिला कर हंस पड़ी।

रणजीत यह भी नहीं कह सका कि वह आज पुराना व्यवहार तोड़ कर नया सम्बन्ध गढ़ने आया था। उषा की हंसी से घबरा कर वह उठा और तेजी से बाहर निकल गया। आशा उषा बहुत देर तक हँसती रहीं।

## ग्यारहवाँ अध्याय

विपक्षी जहाँ मिलते हैं वहाँ एक दूसरे पर कीचड़ उछालने में वे पीछे नहीं रहते। सदन में बैठे-बैठे मेहता और श्रीमती मलहोत्रा के बीच बहस छिड़ गई। सभापति महोदय एवं अन्य सदस्य सदन के नियमों के विरुद्ध होने पर भी इस बहस के बीच में नहीं बोले। बात थी तलाक की लेकिन जा पहुँची वह किसी और ही रूप पर। तलाक बिल पास हो जाने पर भी सदन का अधिकांश भाग इसका विरोधी थी। समाजवादी जितेन्द्र मेहता ने जब यह कहा कि यह अमानवीय है तो श्रीमती मलहोत्रा व्यंगपूर्वक बोल पड़ीं, "जी हाँ आप क्यों नहीं इसे अमानवीय कहेंगे। स्त्री को जितना दबा सकते हैं उतना दबाइये। लेकिन मुझे यह तो बता दीजिये कि विवाह को आखिर आप मानते क्या हैं।"

मेहता ने कहा, "विवाह को मैं एक पवित्र आत्मिक बन्धन मानता हूँ, ऐसा बन्धन जो कभी नहीं टूट सकता। शरीर के रज्जु टूट जाते हैं आत्मा के नहीं। विवाहादि कर्म का पूर्वजन्म से सम्बन्ध है इस धारणा पर मेरा विश्वास है अन्यथा दूर-दूर रहने वाले नितान्त अपरिचित युवक युवतियों का सम्बन्ध हो कैसे जाता है और कैसे वे आपस में इतने हिल-मिल कर रह लेते हैं। मैं ईश्वर की सत्ता पर बल नहीं दूँगा लेकिन ईश्वर की सत्यता न मानने से ही पूर्वजन्म की असत्यता सिद्ध नहीं हो

जाती। विवाह जहाँ शरीर का होता है वहाँ आत्मा का भी होता है, और आत्मा का विच्छेद भ्रमात्मक है।"

श्रीमती मलहोत्रा हंस पड़ीं, "आश्चर्य है अनिच्छित समर्पण को आप आत्मा का मिलन मान रहे हैं। आप का कथन है कि पुरुष स्त्री पर कितने ही अत्याचार क्यों न करे, यह सम्बन्ध फिर भी चिर ही रहेगा, लेकिन महोदय मेरा नम्र निवेदन है कि विवाह को आत्मिक बन्धन मानने की भ्रमपूर्ण धारणा पुरुष का स्त्री पर वैसा ही अधिकार स्थापित करती है जैसा एक किसान का अपने बैल पर होता है।"

साम्यवादी नरेश राय बोला, "मैं श्रीमती मलहोत्रा का समर्थन करता हूँ। विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है। यह तो सत्य है ही कि यह सम्बन्ध स्थायी, दृढ़ और स्वार्थ रहित हो पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि विवाह के पश्चात् पति को पत्नी पर एकाधिकार मिल जाता है।"

मेहता कुछ रुष्ट हो कर बोला, "तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि यह एक व्यापार है जो चला तब तक चला और नहीं चला तो ठप्प हो गया ?"

राय नम्रता से बोला, "माननीय सदस्य मुझे समझने में भूल कर रहे हैं। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि विवाह को आत्मिक बन्धन मानने की परिस्थितियाँ अब नहीं रहीं। स्त्री कूप-मंडूक नहीं रही है ऐसी स्थिति में आप क्या यह आशा करते हैं कि वह आप की दासी हो कर रहेगी ? आप की उचित अनुचित सभी आज्ञाओं का पालन मुख बन्द रख कर करती रहेगी न ? महाशय यह बीसवीं सदी है जहाँ विवाह को एक आर्थिक समझौता मात्र मानने वालों की कमी नहीं है।"

स्वतन्त्र सदस्य यशपाल बोल पड़ा, "आर्थिक सम्बन्ध के माने तो यह हुए कि यह सम्बन्ध जब चाहें टूट सकता है और इच्छा करते ही जुड़ सकता है। मुझे शंका है कि इस सिद्धांत को स्वीकार करने के पश्चात् पति-पत्नी के बीच वास्तविक प्रेम बना रह सकेगा ? यह तो मानो एक

व्यापारिक समझौता हो गया जहाँ सम्बन्ध स्वार्थ की भित्ति पर बनते और बिगड़ते हैं। निस्वार्थ प्रेम का जहाँ कोई स्थान नहीं होता। यह तो मानो कुछ समय का साथ है प्रेम रहित, त्याग रहित। नहीं महाशय, मैं इतने क्रान्तिकारी विचार नहीं रखता। भारतीयता से मुझे मोह है और मैं उसे जीवित रखना चाहता हूँ।"

श्रीमती मलहोत्रा जो अभी तक चुप बैठीं इन सबकी बात सुन रही थीं इस बार कुछ सोचकर बोलीं, "वस्तुतः आप सभी एक संकुचित दृष्टिकोण से सोच रहे हैं। विवाह को आप आत्मिक आर्थिक सम्बन्ध न मान कर पुरुष और स्त्री के बीच की एक अटूट मित्रता क्यों न मानें। यह सम्बन्ध चिर रहे इससे बढ़ कर सुख की बात दूसरी नहीं है, लेकिन प्रयत्न करके भी यदि स्त्री इस मित्रता को बनाये न रख सके तो क्या उसे विच्छेद का अधिकार देना आप अमानवीय समझेंगे? मर्यादा निभाने का सारा बोझ स्त्री के मस्तक पर ही क्यों? पति के अत्याचारों को मुख बन्द करके सहना ही यदि भारतीय संस्कृति और मर्यादा की इतिश्री है तो स्त्री अमर्यादित और असंस्कृत ही अच्छी। पुरुष समाज तिरस्कृत कर दे लेकिन मन का सुख तो मिल ही जाएगा।"

श्रीमती मलहोत्रा की बात सुनकर मेहता और यशपाल के मुख जरा से निकल आये और राय जोर से ताली बजा उठा।

घड़ी की ओर देखकर सभापति महोदय ने कहा, "क्षमा करें समय हो चुका है और मैं कल के असमाप्त विषय पर फिर आता हूँ। मैं माननीय सदस्य हृदयनाथ तिवारी से निवेदन करता हूँ कि वे अपना असमाप्त विषय सदन के सामने लायें।"

तिवारी जी जो कदाचित् सो गये थे, एक अन्य सदस्य द्वारा कोंचे जाने पर हड़बड़ा कर बोले, "क्या है?"

सदन में खिलखिलाहट गूंज गई। अध्यक्ष महोदय ने अपनी हंसी दबाते हुए कहा, "माननीय सदस्य से मेरा निवेदन है कि यहाँ पलंग न होने के कारण उन्हें जो असुविधा हुई है उसके लिये क्षमा करते हुए वे

अपने असमाप्त विषय पर आयें।"

सदन में एक बार और खिलखिलाहट गूंज गई। लज्जित से तिवारी जी टोपी को ठीक करते हुए बोले, "मैं राज्य की आन्तरिक परिस्थितियों को सुधारने के विषय में कानून बनाने पर जोर देना चाहता हूँ। हम लोगों का इतना नैतिक पतन हो चुका है और अब भी हमारे नेत्र नहीं खुलते।"

यशपाल जो तिवारी जी से जलता था बोला, "लेकिन इस पतन के लिये दोषी कौन है माननीय महाशय ?"

"दोषी ?" तिवारी जी ने गर्व से सिर ऊंचा करते हुए कहा, "दोषी है हमारी सभ्यता, हमारा समाज और हम स्वयं जो अपने आदर्शों और मर्यादा को भूल चुके हैं। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये हम क्या नहीं करते। हमारा 'अहं' हमारा 'सत्य' आज बिक रहा है। भ्रष्टाचार के विरूद्ध कानून पास करने के लिये मैं निवेदन करता हूँ।"

यशपाल धीमे किन्तु तीखे स्वर में बोला, "शेरसिंह को भूल गये हैं आप !"

अध्यक्ष ने कहा, "व्यक्तिगत रूप से किसी पर छींटे उछालना सदन के नियमों के विरुद्ध है। आशा करता हूँ माननीय सदस्य दुबारा मुझे यह कहने का अवसर नहीं देंगे।"

श्रीमती मलहोत्रा ने धीरे से कहा, "मैं माननीय सदस्य हृदयनाथ तिवारी के प्रस्ताव का समर्थन करती हूँ।"

मेहता जो श्रीमती मलहोत्रा पर जला भुना बैठा था, अवसर पाते ही कड़वे स्वर में बोल पड़ा, "कानून की दुहाई आखिर क्यों। मनुष्य को नेक बनाने के लिये कानून का ही भरोसा किया जा सकता तो रिश्वतों का यह बाजार गर्म नहीं होता, ये आये दिन के लज्जाजनक कार्य नहीं होते। क्या आप यह समझती हैं कि इस सम्बन्ध में पुरुष पर दोष लाद कर ही आप अपनी स्थिति को दृढ़ बना लेंगी ? लेकिन मैं निवेदन करना चाहूँगा कि इस स्थिति के लिये पुरुष इतना दोषी नहीं है जितनी स्त्री।

स्वतंत्रता का ढोल पीट कर स्वच्छंदता को अपनाने वाली स्त्री का पतन के गर्त में गिरना ही तो स्वाभाविक है। शील नहीं, नारीत्व का स्वाभाविक माधुर्य नहीं। समानता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि आप भी पुरुषों के जैसा आचरण करें, क्लबों में जाकर सुरा पान करें। दुःख की बात है कि स्वतंत्रता के इसी घिनौने अर्थ को ही आप लोग अपनी उन्नति की चरम सीमा मान रही हैं, कानून का समर्थन उस समय कीजियेगा जब आप लोग अपने श्याम पक्ष को उज्ज्वल बनालें, अपना 'तितलीपन' छोड़कर मातृत्व, पत्नीत्व और गृहिणीत्व के उत्तरदायित्व को सम्हाल लें और तभी आप पुरुष पर लगे इस आरोप का समर्थन करें।"

"शेम, शेम!" सदन में शोर-सा मच गया और जितनी भी महिला सदस्याएं थीं उनके मुख इस अपमान से सुर्ख हो गये। अध्यक्ष को गम्भीर स्वर में कहना पड़ा, "तर्क का अर्थ यह नहीं होता कि आप लोग मानापमान पर उतर आयें। तर्क कीजिये क्योंकि यह आपकी बुद्धि की, आपकी विचारधारा की माँग है पर उसे वीभत्स न बनाइये। माननीय सदस्य से मैं कहना चाहूँगा कि उन्हें अपने इस व्यवहार के लिये लज्जित होना चाहिये और व्यक्तिगत रूप से किसी की छीछालेदर करने के कारण उन्हें अपने शब्द वापस लेने होंगे।"

"मैं नहीं लूँगा मैंने सच बात कही है।"

"सच हो या झूठ, सदन के नियमों के अनुसार कोई सदस्य किसी दूसरे सदस्य का अपमान नहीं कर सकता। तर्क का खण्डन कर सकते हैं, कीचड़ नहीं उछाल सकते। इस नियम को आपको मानना ही होगा अन्यथा सदन आपको अपना स्थान छोड़ देने के लिये बाधित कर सकता है।"

लाल सुर्ख मुख लेकर मेहता उठ कर खड़ा हो गया। क्षण-भर इधर-उधर देखा फिर दूसरे ही क्षण तेजी से बाहर निकल गया। इस घटना से प्रायः सभी कुछ खिन्न से हो उठे थे। अध्यक्ष ने कहा, "मुझे बहुत दुःख है कि इस प्रकार की असभ्यता हमारे माननीय सदस्य द्वारा हुई इसके

लिये सदन श्रीमती मलहोत्रा का क्षमाप्रार्थी है और अध्यक्ष-पद से मेरा निवेदन है कि इस कटुतापूर्ण तर्क-वितर्क के पश्चात् मैं नहीं चाहता कि आज की बैठक चलती रहे। मैं उसे समाप्त करने की प्रार्थना करता हूँ।"

किसी ने विरोध नही किया। सदन की बैठक स्थगित करदी गई। एक-एक करके सभी बाहर निकल गये। सब से अन्त में भौंसले और तिवारीजी निकले। दोनों के मुख पर गम्भीरता छाई हुई थी। भौसले ने कहा, "बोरीविली में कई सौ फुट जमीन खाली पड़ी है। सेठ रामनारायण लाल उसे लेना चाहता है पर वह जमीन म्युनिसिपैलिटी की सम्पत्ति है और वह उसे देना नहीं चाहती। सेठ लाल वहाँ पर एक सिनेमाहाल बनाना चाहता है। मेरी उससे कल ही बात हुई थी। कहता था कि वह जमीन मिल गई तो हम लोगों को प्रसन्न कर देगा। तुम जानते हो हो अगले चुनाव के लिये हमें पैसे की सहायता भी इसी से मिल सकती है। अपना खोया पद प्राप्त करना चाहते हो तो इस प्रस्ताव को मान लो।"

"तिवारीजी कुछ सोचकर बोले, "लेकिन चेयरमैन को कैसे राजी किया जा सकता है?"

भौंसले ने अंगूठे से उंगली को उछालकर कहा, "इससे, अर्थात् रुपये से। कोई ऐसा नहीं है जो रुपया न चाहे। चाहो तो आज ही चला जाय। कठिनाई इसमें रत्ती-भर भी नहीं है। सेठ लाल पाँच हजार का चैक मुझे दे चुका है। आधा तुम्हारा है और आधा मेरा। कहो क्या विचार है?"

"मुझे स्वीकार है। हाँ, वह जीप-गाड़ियों के सप्लाई की जो बात थी उसका क्या हुआ। इसमें लाभ होने की बहुत आशा है। मैं सोचता हूँ दस-पन्द्रह हजार हमें मिल जाएगा।"

भौंसले ने कहा, "हाँ, मैं आर्डर फारवर्ड करने की कोशिश में हूँ। देखो तिवारी जब तक हमारा पद कायम है हम चाँदी बना सकते हैं, बाद में कोई दो टके को भी नहीं पूछेगा। देशभक्ति का चोला पहनकर दुनिया

को ठगने वालों की आज कमी नहीं है। धर्म और मर्यादा का पालन करने के लिये फिर कोशिश कर ली जाएगी। आजकल तो भगवान के यहाँ भी घूस चलती है।"

तिवारीजी हँस पड़े।

भौंसले अपनी बात पर आता हुआ बोला, "मलाड में जमीन ली है, किसी कान्ट्रैक्टर को पटा दो न यार।"

"करवा दूँगा। रामनाथन से मेरी जान-पहचान है। मुझे स्वयं उससे इसी सम्बन्ध में मिलना है। 'तुम्हारा और मेरा स्वार्थ भिन्न नहीं है। तुम न होते तो आज मुझे भी शेरसिंह का अनुसरण करना पड़ता। लेकिन देखो सब काम सावधानी से होना चाहिये। सेठ लाल को फंसाये रखना।"

"अवश्य। आशा देवी तो प्रसन्न हैं?"

"हाँ।"

भौंसले आह भरकर बोला, "मेरी किस्मत ही खोटी है। पत्नी है पर इतनी गंवार और जाहिल कि उसे अपनी पत्नी कहते भी मुझे लजा आती है। इससे तो मैं कुँवारा ही रहता तो अच्छा था। न सभा-सोसायटी के तौर-तरीके जानती है और न मेरा साथ देने की योग्यता ही है उसमें। मैं कूप-मंडूक पत्नी नहीं चाहता, सुधारने का कोई उपाय भी नहीं रहा है। मन यही करता है कि कहीं चला जाऊँ, कम से कम उसकी ऊल-जलूल बातों से तो कष्ट नहीं पाऊँगा।"

"तलाक क्यों नहीं ले लेते?"

भौंसले क्षण-भर चुप रहकर बोला, "यह सोचता हूँ। आज आशा देवी मेरे साथ मैजेस्टिक में भोजन करना पसन्द करेंगी?"

"मुझे क्यों इन्कार होगा? वह जाएगी।"

भौंसले ने हाथ उठा कर अभिवादन किया और अपनी कार लेकर चला गया। प्रसन्न मन से तिवारीजी ने कार स्टार्ट की। अपनी सच्चरित्रता और देशभक्ति का आज वे भारी प्रदर्शन कर आये थे। आते-आते व्या-

पारिक अनुबन्ध उन्हें मिले इस सफलता से खिलकर उन्होंने कार मंगाई। जितना बटोर सकते हैं क्यों न बटोरें। अगले चुनाव को किसने देखा है, जब तक हाथ में कुछ सत्ता है तभी तक वे चाँदी बटोर सकते हैं। बोरीविली में एक बंगला बनाकर वे किराये पर दे चुके थे, एक बांदरा में बनवाने का विचार रखते थे। संसार नाम के पीछे पागल है दुराचार भी नाम की आड़ में कोमल फूल-सा पनपता है और सदाचार को सत्य का पल्ला पकड़ने पर भी मुँह की खानी पड़ती है। सदाचार और सत्य केवल कल्पना और तर्क का आश्रय-स्थल रह गया है। स्वार्थ ने मानव को उनकी ओर से एकदम विमुख कर दिया है। इनकी सीमा में बंधकर वह क्यों दुःख उठाये, रागरंग छोड़े। पारलौकिक आनन्द की मिथ्या तृष्णा के पीछे इहलोक का प्रकट सुख उपभोग न करना अभाग्य का चिन्ह है। परलोक मिथ्या है, इहलोक सत्य। पारलौकिक आनन्द की कल्पना करना है तो अवश्य कीजिये पर यह मत भूलिये कि यह कल्पना मन को बहकाने और भयभीत कराने वाली मात्र है। नरक और स्वर्ग की कल्पना मानव-मन की निर्बलता है, कोरी गप्प है सत्यता है संसार में इसी संसार में जहाँ आप रोते और हँसते हैं। यह हँसना और रोना ही आपके मनुष्यत्व का चिन्ह है। इनके ऊपर उठ कर आप देवत्व प्राप्त कर सकते हैं, दानवता को जीत सकते हैं लेकिन इस संसार में रहकर ही और प्रकृति का अनुसरण कर। प्रकृति से बढ़कर कोई परमात्मा नहीं, सत्य से बढ़ कर कोई परमात्मा नहीं, सत्य से बढ़कर कोई स्वर्ग नहीं, मुक्ति नहीं।

ईश्वर, सत्य और स्वर्ग तिवारीजी के मुख-साथी हैं, हृदय-साथी नहीं। देववाद, मानवतावाद उनके अवसरवाद के नीचे इस प्रकार छिप गये हैं जिस प्रकार अंधेरे में चमक कर जुगनू छिप जाता है। रौप्य देवता से बढ़ कर दूसरा देवता उनके लिये नहीं है।

बिना किसी विचार के वे दास की फर्म की ओर मुड़ गये। फर्म के सामने जाकर उन्होंने कार रोक दी और खिड़की से मुँह निकाल कर अपनी ओर पीठ किये बैठे व्यक्ति से पूछा, "दास हैं ?"

रमानाथ ने मुख घुमाया। दोनों के नेत्र मिले और क्षण-भर के लिये मानों चिपक कर रह गये।

पूर्व परिचय का कोई भी भाव मुख पर न लाकर तिवारीजी ने पूछा, "दास कब तक आयेंगे ?"

"वे आ गये है," रमानाथ ने कहा। तिवारीजी ने देखा, दास उनकी कार के पास खड़ा मुस्करा रहा है।

तिवारीजी उतर पड़े। रमानाथ चुपचाप उनका अंदर आना देखता रहा। उस दिन के बाद आज वह उन्हें देख रहा था। वही व्यक्ति जो उसकी पढ़ाई में बाधक हुआ है, माँ की मृत्यु का कारण बना है। देखते ही प्रतिशोध की भावना उसके मन में जोर पकड़ गई। मंत्रित्व-पद छिन गया है, काश यह सदस्यता और निकल जाये उनके हाथ से। किसी का जीवन नष्ट करना कैसा होता है इसका भी तो अनुभव हो उन्हें। उसके सारे स्वप्न सारी कल्पनायें जिस व्यक्ति ने नष्ट करदी हैं वह आखिर कब तक बचा रहेगा। काश, कोई अकाट्य सूत्र उसके हाथ लग जाये। मन ही मन विचार करता हुआ वह चुपचाप दास और तिवारीजी की ओर देखता रहा।

दास समझ नहीं सका, कहा, "यही हैं मेरे नये अकाउन्टैन्ट मिस्टर नाथ, बहुत ही निडर और साहसी जिसका अभाव प्रत्येक नौकरी-पेशा मनुष्य में होता है। मुझे ऐसा ही मनुष्य चाहिये जिसमें काम करने का 'स्टैमिना' हो, साहस हो और मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि अवसर दिया जाय तो मिस्टर रमानाथ कुछ न कुछ करके रहेंगे। वास्तव में काम करने के लिये जितने गुण होने चाहियें वे सब आप में है। और आप से मिलिये, आप हैं श्री हृदयनाथ तिवारी, प्रसिद्ध नेता और राज-नीतिज्ञ····।" इसके आगे के शब्द दास ने अपनी मुस्कराहट से कह दिये।

रमानाथ ने अपना हाथ बढ़ा दिया, और व्यंगपूर्ण भाव से मुस्कराया, "मिस्टर दास की बातों पर विश्वास न कीजियेगा मिस्टर तिवारी। आप

शायद जानते होंगे कि मैं कुछ नहीं कर सकता। निडरता और साहस आवश्यक हैं डाका डालने के लिये, दूसरे स्थानों पर पैर रोपने के लिये तो छल व कपट की कला में पारंगत होना पड़ता है। डरिये नहीं, मैं भी उन्हें सीख रहा हूं।"

तिवारीजी व्यंग से तिलमिला गये, "बहुत वाचाल प्रतीत होते हो युवक।"

दास कुछ चकित-सा होकर बोला, "तुम मिस्टर नाथ को जानते हो क्या तिवारी ?"

तिवारीजी घृणापूर्णक बोले, "तुम मुझे समझते क्या हो दास। हरएक को पहचानना मेरे लिये आवश्यक नहीं है। मेरा भी आखिर कोई स्थान है, सम्मान है।"

दास कुछ अप्रतिभ-सा हो गया लेकिन रमानाथ हँस पड़ा, कहा—"परिचय का सूत्र प्रकट करने से ही तो परिचय का पता नहीं लगता मिस्टर दास। आप शायद जानते नहीं कि मनुष्य चमत्कार प्रिय है और सदा कोई न कोई चमत्कार दिखाने की खोज में रहता है। दो के परिचय के पीछे भी इसी चमत्कार का हाथ होता है। आशा है मेरा आशय आप समझ गये होंगे मिस्टर तिवारी ?"

तिवारीजी ने उसे घूर कर देखते हुए कहा, "क्या अर्थ है तुम्हारा ?"

रमानाथ भोला-सा मुख बना कर बोला, "इतनी जल्दी न कीजिये, अर्थ भी समझ में आ जायेगा। उतावली अधिकांश क्षेत्रों में खतरनाक साबित होती है, अतः मनुष्य को धैर्य से काम लेना चाहिये। मैं सोचता हूँ शेरसिंह ने जल्दी न की होती तो अधिक कार्य कर सकता था। आपका क्या विचार है ?"

"शट-अप।"

रमानाथ ने झुककर नम्रता से कहा, "धन्यवाद।"

दास खिलखिलाकर हँस पड़ा। क्रोध से तिवारीजी का मुख लाल हो गया मेज पर मुक्का मारकर कहा, "रमानाथ तुम अपनी सीमा से बाहर

जा रहे हो। तुम जैसे कितने ही युवकों को मैंने चींटी की तरह मसल दिया है। उस दिन छोड़ दिया था आज भी छोड़ दूँगा लेकिन आगे तुमने कभी इतना दुस्साहस किया तो मैं तुम्हें उस दिन की गुंडागिरी के अपराध में जेल में ठुँसवा दूँगा।"

"और संसार को शायद मालूम ही नहीं है कि यह शब्द कहने वाला स्वयं कितना उच्च है। सत्यता छिपती नहीं तिवारी साहब, कभी तो सामने आ ही जाती है। मेरा नाम भी रमानाथ है और सोचे हुए कार्य को पूरा करने की मुझ में हिम्मत है। आज आपका समय है, कल मेरा आएगा।" तिवारी जी की पूर्ण उपेक्षा कर वह दास को अभिवादन कर नीचे उतर गया।

## बारहवाँ अध्याय

कान्ता नौकरी करने का विचार रमानाथ से छिपा नहीं सकी। बिना उसकी आज्ञा के कुछ करने का साहस उसमें नहीं था और इतना विश्वास भी था कि दादा कभी उसे उचित बात के लिये मना नहीं कर सकता। बहुत जिद की तो रमानाथ ने कहा, 'मेरी बात तू नहीं सुनेगी तो मैं यह घर छोड़कर चला जाऊँगा फिर जो तेरे जी में आये करना। न रहूँगा, न देखना पड़ूँगा। तू क्या इतना सुख भी मुझे नहीं पाने देना चाहती कि अपने स्नेह की पूर्णता मैं तुझे उन्नति के शिखर पर पहुँचाकर देखूं? दुःख योंही कौन कम है कान्ता पर इतना बड़ा दुःख तो तू मुझे मत दे।

आँखों के आँसू रोक कर कान्ता किसी प्रकार बोली, "लेकिन तुम्हारी पढ़ाई दादा, तुम्हारे स्वप्न तुम्हारी आकांक्षायें। दादा उन्हें यों मत तोड़ो। मेरा कहा मानों तुम वापस कालेज जायन कर लो।"

"मैं नहीं पढ़ूंगा।"

"लेकिन क्यों?"

रमानाथ स्थिर में बोला, "हर एक प्रश्न का उत्तर नहीं होता कान्ता। मानता हूँ मनुष्य की आकांक्षायें होती हैं, सुख से जीने की और समृद्धि की उसे चाह होती है। दुःख लेकर कौन जीना चाहता है पर

चाहने से ही तो सब मिल नहीं जाता बहन । तब बता मैं क्यों इन नष्ट-स्वप्नों की व्यथा को लेकर दिन रात घूमता रहूँ । अपनी अपूर्णता को तुम दोनों में पूर्ण देखने की प्रसन्नता भी तो कम नहीं है । तू चिन्ता मत कर मेरे लिये कुछ मत सोच, मात्र डिग्री ही तो मनुष्य की योग्यता की कसौटी नहीं है ।"

कान्ता से अपने आंसू रोके नहीं गये । अर्थाभाव के कारण उस जैसा योग्य युवक अधूरा रह जाएगा । वह करे भी तो क्या । वह किसी की नहीं मानता । उसकी बात सबको माननी पड़ेगी । उसका मन वह कैसे तोड़े । वह जो उसे उन्नत देखने की आकांक्षा है उस आकांक्षा को वह नष्ट करके क्या उसे दुखी करेगी ? काश वह नहीं होती, मां के साथ ही वह भी चली जाती तो दादा का एक बोझ तो कम हो जाता । लेकिन क्या करे वह अपनी उपायविहीनता का । दादा की बात ही पूरी हो । अपना भविष्य नष्ट करके वह यदि उसे पढ़ाना ही चाहता है तो वह ना नहीं करेगी, सोचकर उसने बल पूर्वक अपने आंसू रोक लिये और उसकी गोद में मुख छिपाकर बोली, "दादा, तुम मनुष्य नहीं, देवता हो ।"

"सच ? तब तो तैंतीस करोड़ देवताओं में एक की और बढ़ती हो गई । चल उठ चन्दन घिस कर टीका लगा और ताक में बिठा कर धूप अक्षत चढ़ा," कहते-कहते रमानाथ जोर से हंस पड़ा ।

हृदय के भक्ति पूर्ण उद्गार पर रमानाथ की यह हंसी देख कर मारे क्रोध के कान्ता उठ कर बैठ गई । दोनों हाथ उसकी छाती पर मारती हुई बोली, "तुम जब देखो तब मेरी हंसी उड़ाया करते हो," कहकर वह रो पड़ा ।

रमानाथ ने हंसते हुए उसे अपने पास खींच लिया, सिर पर हाथ फिराकर कहा, "बात भी तो तू ऐसी कह जाती है जिसका न कोई सिर होता है न पैर । तू क्या यह समझती है कि देवता मनुष्य से बड़ा होता है ? अरे जिस मनुष्य ने अपनी कल्पना के आधार पर देवता का निर्माण किया है वह तो उससे बड़ा ही होना चाहिये । देवता अपने आप हमारे

बीच आकर खड़े नहीं हो गये हैं वरन्, वे हमारी सृष्टि हैं। मेरी बहन मनुष्य हर तरह देवता से ऊंचा है। जो अदृश्य है वह मान्य नहीं होना चाहिये लेकिन मनुष्य की क्रूरता की सीमा नहीं है। उसी अदृष्य को प्रसन्न करने के लिये वह मनुष्य की जान लेने से भी नहीं हिचकता। तेरे ये देवता लोग हमारी तरह बलिदान करके प्रसन्न नहीं होते बल्कि बलिदान लेकर प्रसन्न होते हैं समझी।"

"तो क्या तुम्हारा यह मतलब है कि इतने लोग जो देवताओं को पूजते हैं वह यों ही हैं? देवता नहीं ईश्वर नहीं, क्या कुछ भी नहीं है?"

"अवश्य। ईश्वर हमारी ही कल्पना है। हमें सृजनात्मक जीवन चाहिये बहन, और यह तत्व है केवल प्रकृति के पास, जिसके पास रुदन नहीं है हास्य नहीं है, है केवल निरंतर क्रियाशीलता का संदेश। बहन तेरा परमात्मा उसी का पक्ष लेता है जो सबल है जिसके पास पैसा है।'

कान्ता रुष्ट होकर बोली, "तुम्हारे नास्तिकपन की हद है दादा। परमात्मा है कैसे नहीं। वह नहीं है तो इस सृष्टि को कार्यान्वित कौन करता है, प्रकृति पर प्रभुत्व किसका है। माना कि वह कोरी कल्पना है पर इतनी निम्न तो नहीं है कि तुम उस शक्ति के जो प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त है अस्तित्व से ही इन्कार कर दो।"

रमानाथ हंस कर बोला, "अच्छा, एक सीधी-सी बात पूछता हूँ। तेरा परमात्मा सत्य है न?"

"है।"

"तो फिर असत्य क्या है, मनुष्य?"

कान्ता इधर उधर करके बोली, "असत्य क्यों होगा। परमात्मा भी सत्य और मनुष्य की सत्ता भी, सत्य नहीं है तो मनुष्य का दम्भ, जिसे तुम्हें मानना ही होगा। देखो दादा परमात्मा में विश्वास करने के लिये यदि हम कल्पना का सहारा लेते हैं तो इससे हमारी हानि कौन-सी होती है बल्कि मैं तो कहती हूँ कि इस विश्वास से लाभ ही होता है। कम से कम पूर्व-

जन्म के पापों का प्रायश्चित हम वर्तमान की देह मे करके भविष्य के अनन्त सुख की कामना तो कर सकते हैं।"

"और जब-जब उस अनन्त सुख की कामना मृगतृष्णा बनकर रह जाती है तो हम हाथ मलते रह जाते हैं।" कान्ता की बात काटता हुआ रमानाथ बोला, "परलोक किसने देखा है और पूर्वजन्म की कथा भी किसे मालूम है। देख कान्ता मनुष्य दुःख उठाता है अपनी किसी कमीके कारण उसके लिये तू पूर्वजन्म या परमात्मा की दुहाई मत दे। जो असत्य है, भ्रमात्मक कल्पना है मैं उसपर विश्वास नहीं करता। मैंने परमात्मा को नहीं देखा, देखा है प्रकृति को, मनुष्य को और उन्हीं की शक्ति पर मैं विश्वास करता हूँ। मन्दिरों में प्रस्थापित तेरे परमात्मा की ये मूर्तियां दिन रात सिर रगडने पर भी किसी को फिर कुछ देतीं क्यों नहीं, अभाव में आफत और विपद में आगे बढ़कर किसी की सहायता क्यों नहीं करतीं ? सहायता तो स्थूल जगत ही करता है, मनुष्य ही करता है फिर उसकी शक्ति पर विश्वास क्यों न किया जाय।"

कान्ता ने तीखे स्वर में कहा, "मनुष्य सहायता करता है तो तिवारीजी ने तुम्हें धोखा क्यों दिया। क्या तुम्हें उस समय आवश्यकता नहीं थी ? परमात्मा की प्रेरणा नहीं होती तो बिना किसी पूर्व परिचय के दास तुम्हें नौकरी नहीं दे देता। इतना दम्भ न करो दादा कि मानने में ही नहीं आये। नहीं है परलोक तो क्यों मनुष्य इतने व्रत उपवास कर करके मरता है ?"

रमानाथ ने कह दिया, "सनक के कारण। उपवास यदि स्वस्थ्य की दृष्टि से किया जाये तो मुझे कोई ऐतराज नहीं है लेकिन वह उस अदृष्य देवता की सन्तुष्टि या आत्मशुद्धि के झूठे विश्वास के कारण से हो तो मैं उसे मूर्खता ही कहूंगा। परलोक एक मिथ्या धारणा है। इस पृथ्वी पर जन्म लेकर मनुष्य एक दिन यहीं समाप्त हो जाता है। परलोक और पूर्वजन्म की यह धारणायें सत्य होतीं तो तेरे परमात्मा के ये जो दूत हैं, पुरोहित और पंडे वे हर याचक को धन दौलत पुत्रादि दे दिया

करते। आस्तिक ही तो कहते हैं कि परमात्मा के दरबार से कोई खाली हाथ नहीं लौटता फिर वह सड़क पर रेंगने वाला भिखारी क्यों नहीं हाथ पैर पा लेता ?" कह कर उसने सड़क पर पीठ के बल रेंगते भिखारी की ओर इंगित कर दिया।

खिड़की से दिखते इस घिनौने दृश्य की ओर से तुरन्त ही नेत्र हटा-कान्ता खीजे हुए स्वर में बोली, "तुम बड़े दुष्ट हो दादा।"

रमानाथ शान्त स्वर में बोला, "दुष्ट ही सही, लेकिन कहता तो सत्य हूँ। परमात्मा, परलोक मिथ्या विश्वास हैं और मानवता सत्य है। सभी मनुष्यों में मनुष्यत्व नहीं होता पशुत्व भी विद्यमान रहता है। तिवारीजी में यदि है तो मुझमें भी है। प्रतिशोध लेने की इस शैतानी बुद्धि को पशुत्व ही कहना चाहिये। खैर ऐसी मनुष्यता तो मैं अंगीकार करता नहीं कि वार पर वार सहता चला जाऊं और उसका विरोध न करूँ, पशुत्व ही सही पर मैं मनुष्य हूँ। घृणा प्रेम, क्रोध विद्वेश की भावनायें उसकी चेतनता की साक्षी हैं। बात थी देवता की सो बहन विश्वास कर कि ये सब एक वर्ग विशेष की भ्रमपूर्ण धारणायें हैं। परमात्मा का अस्तित्व यदि है तो वह इस प्रकृति में ही विद्यमान है इससे परे नहीं। प्रकृति स्वयं अपने में पूर्ण है। सम्पूर्ण तत्व उसमें विद्यमान हैं और उन तत्वों को खोज निकालना मनुष्य का काम है। विज्ञापन के नये-नये आविष्कार कैसे हो रहे हैं उड़ना उसने कहाँ से सीखा, ये तत्व उसने पाये कहाँ से अवश्य ही परमात्मा से नहीं। प्रकृति की पूर्णता तेरे इस परमात्मा में कहां से आयेगी बहन।"

कान्ता उपेक्षा से "ऊँह" करके रह गई।

कान्ता की इस "ऊँह" को सुन कर रमानाथ उसके अन्तर में उत्पन्न हुई खीझ और अपने विश्वास पर लगी चोट की वेदना को समझ गया। किसी का विश्वास उसने कभी तोड़ना नहीं चाहा था लेकिन वह स्वयं जिसे नहीं मानता उसे दूसरे का मुख देखकर भी नहीं मान सकता था। उसकी आस्था थी 'आज' में। बीते 'कल' के लिये वह कभी दुखी नहीं

हुआ और आने वाले 'कल' की कल्पना से भी उसने अपने को कभी चिन्तित नहीं किया। परमात्मा को उसने कभी पुकारा है यह उसे स्मरण नहीं आया। कभी पुकारा भी हो तो पाया नहीं था वह विश्वास करे तो कैसे करे, बोला, अपने परमात्मा के अस्तित्व के विषय में यदि तू कोई निश्चित तर्क कर सकती और उसे सिद्ध कर सकती तो तेरी बात मैं मान लेता पर तू तो चुप हो रही। तुम्हीं लोग तो कहा करते हो न कि ईश्वर जो करता है अच्छे के लिये ही करता है। माँ की मृत्यु से, मेरे पढ़ाई छोड़ने से किसका भला हुआ है, समझ नहीं पाया। यह धारणा अधिक नहीं टिक सकती और वह समय दूर नहीं है जब इस परमात्मा पर मनुष्य का प्रभुत्व होगा। लोगों के बीच कोई असमानता नहीं रहेगी जिसे तेरे इस परमात्मा ने जन्म दिया है। एक चुपड़ी रोटी खाये और दूसरा भूखे पेट रहे ? इस असमानता का अन्त होना ही चाहिये। देवता के प्रतिनिधी पुरोहितों, मठाधीशों और धनाधिपतियों को और समाज के उपेक्षित अंगों को एक श्रेणी में आकर खड़ा होना पड़ेगा। इस परमात्मा का नाश हुए बिना मानववाद की स्थापना नहीं हो सकती। सभ्य होकर भी मनुष्य वैसा ही संकीर्ण रह जाये ? यह सोचना अच्छा नहीं लगता। सोच न, कोई गलत बात कही है मैंने ?"

इस बार कान्ता ने चुपचाप स्वीकार कर लिया। उठकर जाने लगी कि रतिनाथ आकर उससे लिपट गया, चुपके से बोला, "एक बात मानोगी दीदी ?"

"मानने की होगी तो जरूर मानूँगी।"

"यूकीवारीसू पिक्चर आया है। अजय कहता था बहुत अच्छा है, वह इसे दो तीन बार देख आया है। मुझे भी यह पिक्चर देखने के लिये तुम दादा से कह दो न।"

"अच्छा" कान्ता हंसी, रमानाथ से कहा, रति पिक्चर जाने के लिये कह रहा है।

"कौन-सा है ?"

"यूकीवारीमू।"

"हाँ, यह पिक्चर बहुत अच्छा है। रति ही क्यों हम सभी आज इसे देखने चलेंगे। पर देख रति, आज के बाद से इम्तहान होने तक एक भी पिक्चर देखने के लिये तू नहीं कह सकेगा, सो याद रखना।"

मारे प्रसन्नता के लाल मुख करके रति बोला, "नहीं कहूँगा। मैं अजय से कह आता हूँ वह भी आज आयेगा," कहकर वह आंधी की तरह भाग गया।

मैट्रो घर से विशेष दूर नहीं था लेकिन पैदल जाने के दुःख के मारे रमानाथ ने कान्ता के मना करने पर भी ट्राम पकड़ ली। अभी इतना पास में था जिससे वह कुछ दिन आनन्द का उपभोग कर सकता था। पढ़ाई जब छोड़ ही दी तो उस पर सोचना कैसा। सोच-सोच कर मनुष्य जी की परेशानी ही मोल लेता है और मस्तिष्क की अशान्ति के सिवा और कुछ पल्ले नहीं पड़ता।

रास्ते में कान्ता ने धीरे से कहा, "एक बात तुम्हें अभी तक बताई नहीं दादा। आशा दीदी उस दिन एक सौ बीस रुपये दे गयी थीं।"

सुनते ही रमानाथ का शरीर जल गया, कहा, "तूने लिये क्यों ?"

उसका मुख देखकर कान्ता के प्राण सूख गये। इस क्रोध की आशंका उसे पहले से ही थी, इसी कारण उसने घर में रहते हुए यह बात उसे नहीं बताई थी। रास्ते में कहने का तात्पर्य यही था कि वह अपना क्रोध दबाने के लिये बाध्य हो जाये। डरते-डरते धीरे से कहा, "वे मानी ही नहीं और उषा ने भी कहा.........।"

बीच में ही रमानाथ क्रोध के मारे कुछ जोर से बोल उठा, "क्या कहा उषा ने" कि आसपास के यात्रियों की कुतूहल पूर्ण दृष्टि देखकर स्तब्ध होकर चुप हो गया। मुख से कुछ नहीं कहा लेकिन आशा द्वारा चली गई इस चाल का भीतरी अर्थ समझ कर उसका मन उफनने लगा। जी चाहा अभी जाकर ये रुपये उसके मुख पर दे मारे। उपाय नहीं था, इस कारण उसी उपायविहीन निष्फल क्रोध को लेकर वह धीमे किन्तु

अत्यंत "तू क्यों मेरा अपमान करवाने पर तुली हुई है कान्ता !"

जिसने आज तक कभी मुख खोलकर डांटा तक नहीं, उसी के मुख से इतनी कठोर बात सुनकर कान्ता की आंखें भर आई। रतिनाथ है, ट्राम में दूसरे यात्री बैठे हैं। मारे शर्म के कान्ता ने साड़ी के पल्ले से मुख छिपा लिया लेकिन आँखों से गिरते आंसुओं को वह प्रयत्न करके भी नहीं रोक पाई। रमानाथ की बात ने उसके मर्म में गहरे तक चुभकर आघात किया था। वह कुछ और कह लेता, अपमान करवाने की बात उसने क्यों कही। वह क्या कभी भी उसका अपमान करवाती रही है ? जिस उम्र में घृणा-द्वेष, मोह, माया को बच्चे समझते भी नहीं, उस उम्र में उसने उसे माँ की ममता दी थी, असमय प्रौढ़ हो जाना भी तो इतना सरल नहीं हो जाता। अपना बालकपन उसने उसके लिये भुला दिया था और वह उसी त्याग, उसी ममता पर चोट करता हुआ कह गया कि वह उसका अपमान करवाना चाहती है। उसने क्या अपनी इच्छा से रुपये रखे थे ? उषा से उसने कहा नहीं था कि वह उस पर बिगड़ेगा। वह उससे मन ही मन कितना डरती है इसे क्या वह जानती नहीं है फिर क्यों वह उसे इस विपत्ति में डाल गई है ? क्यों नहीं आकर कहती कि रुपये लेने की वह दोषी नहीं है। रमानाथ के प्रति अपने अभिमान और उषा के प्रति क्रोध को रोकने का प्रयत्न करने पर भी उसकी आँखों से गिरते आंसू नहीं थमे।

रतिनाथ चित्र की कल्पना में इतना लीन था कि रमानाथ और कान्ता के बीच हुई बात का उसे जरा भी पता नहीं चला। मैट्रिक में अवश्य आ गया था पर अपने बचपन को उसने अभी पूरी तरह विदा नहीं किया था। मन का आवेग जब नहीं रोक सका तो पीछे मुड़कर रमानाथ से बोला—"अजय इसे तीन बार देख आया है दादा ! कहता था कि एक छोटे से बच्चे ने इतना अच्छा काम किया है कि यहाँ का कोई बाल-अभिनेता नहीं कर सकता। क्यों दादा रूप कुमार भी नहीं कर

सकता क्या ऐसा अभिनय ?"

रमानाथ ने इस प्रसन्नता से छलकती बातों के उत्तर में केवल एक लम्बी सी 'हूँ' की और चुप हो गया। उसकी ओर से कोई भी प्रोत्साहन न पाकर रतिनाथ ने कान्ता की ओर देखा पर पाया कि खिड़की की ओर मुख किये वह इस प्रकार बैठी है कि वह उसका मुख नहीं देख सकता और तब उसने वापस मुख घुमा लिया। साल भर से ऊपर हो गया उसने एक भी चित्र नहीं देखा था जबकि अजय सप्ताह में एक चित्र अवश्य देखता था। मन तो उसका भी बहुत ललचाता था लेकिन रमानाथ से कहने का साहस नहीं होता था और मां उसकी आज्ञा के बिना उसे जाने नही देती थीं। पिता की मृत्यु का उसे ध्यान नहीं था एक धुँधली सी स्मृति बाकी थी। भाई और पिता के रूप में उसने रमानाथ को ही देखा था। वह उससे बड़ा भी तो बहुत था। जो नाराज नही होता उससे भय बहुत लगता है। मन नहीं चाहता कि उसे नाराज किया जाये। रतिनाथ ने भी आजतक रमानाथ को क्रोधित होने का अवसर नहीं दिया है। भली बुरी सब बातों के लिये पहले थी मां और उनके बाद अब है कान्ता। मां का ध्यान आते ही उसकी आँखें भर आयीं। कितने दिन हो गये उन्हें मरे पर लगता है वह जैसे कल की ही बात हो। बिना मां के साथ खाये, सोये उसका मन ही नहीं भरता था। उषा दीदी कितना चिढ़ाती थीं, उसे इस बात पर और वह मारे क्रोध के मां के सामने आकर रो दिया करता था, वही मां अब नहीं रहीं। परमात्मा इतना निष्ठुर क्यों है। मां को उससे विलग करके उसे मिला क्या है। वह जो कभी उसे पा जाये तो बस क्या न करदे उसका। अचानक ही उसने रमानाथ से पूछना चाहा कि मरा हुआ व्यक्ति क्या दुबारा जन्म ले सकता है, लेकिन पूछने का साहस नही हुआ। दादा नाराज हो गये तो और इस भय ने उसके प्रश्न का द्वार रूद्ध कर दिया, यद्यपि मन में यह जानने की उथल-पुथल हो रही थी कि मरने के पश्चात् मनुष्य जाता कहाँ है। आत्मा की अमरता सत्य है अथवा मन को बहलाने का उपाय मात्र।

कौन उसे समझा सकेगा ।

"दादा मैट्रो आ गया ।"

रमानाथ उठकर खड़ा हो गया और कान्ता अपने नेत्रों को रोशनी से बचाती हुई धीरे-धीरे रमानाथ के पीछे उतर पड़ी । रतिनाथ पहले ही उतर गया था ।

मैट्रो के बाहर चमकती तीव्र रोशनी में कान्ता के नेत्रों पर दृष्टि पड़ते ही रतिनाथ चौंक पड़ा । दीदी को यह क्या हो गया । घर से आते समय तो कोई बात नहीं हुई थी । इतना पीड़ित और दुखित मुख तो उसने माँ की मृत्यु के दिन भी नहीं देखा था । उसका मुख उतर गया, एकदम रुँआसा होकर धीरे से बोला, "तुम क्या पिक्चर आना नहीं चाहती थीं दीदी ? अजय ने कहा कि बहुत अच्छा है वरना मैं कभी नहीं कहता । तुम नहीं देखना चाहो तो रहने दो, मैं नही देखूँगा ।"

रतिनाथ का उतरा हुआ मुख देखकर कान्ता ने उसे अपने पास खींच लिया, स्वर को यथासंभव सहज बनाकर कहा, "नहीं रे, ऐसी कोई बात नहीं है । देखने आये हैं तो बिना देखे वापस नहीं जायेंगे, तू चल ।" रमानाथ की ओर उसने जान-बूझकर नही देखा । उसके नेत्रों में जलन का भाव इतना अधिक स्पष्ट था कि रतिनाथ उसकी ओर देख कर डर गया । यह क्रोध नहीं है लेकिन क्या है, यह समझने की बुद्धि अभी उसकी थी ही नहीं । कान्ता के एकदम पीछे आकर चुपके से बोला, 'चलो दीदी ।'

अचानक इसी समय अजय आ गया । उम्र में रतिनाथ से दो एक बर्ष बड़ा ही होगा । पहनाव-उढ़ाव से पता लगता था कि वह धनिक पुत्र है । कान्ता के पास आकर उसने आदर पूर्वक नमस्कार किया, कहा, "रतिनाथ का टिकट मैंने ले रखा है दीदी, आपकी आज्ञा हो तो मैं इसे ले जाऊं । शो समाप्त होने पर आपके पास छोड़ जाऊंगा ।" रमानाथ की ओर देखकर कहा, "क्या मैं रति को ले जा सकता हूँ भाई साहब ?"

रमानाथ ने इन्कार नहीं किया ।

चित्र आरम्भ होते ही रमानाथ धीरे से कठोर स्वर में बोला, "रुपये कहाँ रखे हैं ?"

कान्ता ने स्वर का कंपन छिपाकर किसी प्रकार कहा, "अलमारी में कपड़ों के नीचे रखे हैं।"

"चाबी दे।"

कान्ता ने चुपचाप तालों का गुच्छा रमानाथ को पकड़ा दिया। यह भी नहीं पूछा कि इस समय रुपये लेकर वह क्या करेगा, कहाँ जाएगा और वापस लौटकर उन लोगों के पास आएगा भी या नहीं। तालियां लेकर वह पल भर भी नहीं ठहरा, तेजी से मुड़कर बाहर निकल गया। कान्ता के नेत्र चलती फिरती तस्वीर पर लगे अवश्य रहे लेकिन वह कुछ देख रही थी यह कहना कठिन है। रुपये लेकर वह उषा के यहां जाएगा और सीधे-सीधे वापस नहीं आएगा इसका उसे विश्वास था। आशा के प्रति उसके मन में इतनी घृणा थी कि वह जानती थी उससे अकर्म हो सकता है, उषा की तरलता और उसका स्नेह भी उसे रोक नहीं सकेगा। कितना चाहती थी उषा उसे और इस निष्ठुर ने कभी उसके मन की बात जानने की कोशिश नहीं की। वह भी उसका पद नहीं ले सकती थी। क्यों इतना उग्र होता जा रहा है यह रमानाथ। तिवारी जी ने एक बार जो कर दिया है और आशा ने जिसमें असहाय होकर साथ दिया है, उसे लेकर ही वह क्यों बैठा है, क्यों नहीं उसे सत्यता समझ में आती ? निष्ठुर, न कभी मां को ही प्यार कर सका, न उसे ही अपना सम्पूर्ण स्नेह दे सका। तिवारी और यह रमानाथ !

कान्ता स्तब्ध सी होकर बैठी रही।

रतिनाथ अजय के साथ चित्र देखने में निमग्न था, उसे कुछ भी पता नहीं चल सका और कान्ता की आँखों के आगे चित्र धुल-पुंछ कर एकाकार हो चुका था।

चित्र समाप्त होने से कुछ ही पहले रमानाथ लौट आया। कान्ता कुछ नहीं बोली।

## तेरहवाँ अध्याय

सेठ सुन्दरलाल साहू पर तिवारीजी का जाल नहीं बिछ सका। उषा का उस दिन का बर्ताव उन्हें अभी भी स्मरण था और जब उन्हें रणजीत के साथ दूसरी बार किये गये व्यवहार का पता चला तो क्रोध से उनका शरीर जलने लगा। भौंसले के साथ वे आशा को जिस प्रकार भेजते थे वैसे इस उषा को क्यों नहीं राजी कर सकते। क्यों नहीं इस लड़की पर उनका वश चलता। जब सहन नहीं हुआ तो उषा को बुलाकर कहा, "तू शायद जानती नहीं कि विरोध का फल अच्छा नहीं होता। तुझे रणजीत से क्षमा मांगनी होगी।"

उषा ने गर्व से सिर ऊंचा करके कहा, "किस लिये?"

"इसलिये कि मैं चाहता हूँ तू उससे क्षमा मांगे।"

उषा ने दृढ़ स्वर में कहा, "आपके चाहने से मेरा चाहना बड़ा है, मां का चाहना बड़ा है। इतनी शक्ति किसी में नहीं है कि वह मनुष्य की सहज दृढ़ता और संयम को कुचल सके। आप खूब जानते हैं, मैं कभी आपके साथ नहीं चल सकती, दीदी के समान आपके हाथों की कठपुतली नहीं बन सकती। मुझे आप नहीं झुका सकते पापा।"

तिवारीजी दांत पीसकर बोले, "मैं तेरी रीढ़ तोड़ दूँगा। देखता हूँ तू कहाँ तक अपनी जिद पर अड़ी रहती है।"

उषा उपेक्षा से मुँह बना कर चली गई तो उनका निष्फल क्रोध

शान्ता देवी पर उतरा। वे न होतीं तो उषा को उनके साथ चलना पड़ता, वे उसके विरोध का मार्ग बन्द कर देना चाहते थे। रात के अंधेरे में चारों ओर के किवाड़ बन्द करके उन्होंने बड़ी निर्दयता से उन्हें मारा, उस मनुष्य ने जो शहर का जाना-माना राजनीतिज्ञ था और जो मनुष्य की नैतिक दृढ़ता का हामी था, उसकी सुरक्षा के लिये कानून बनाना चाहता था। देशभक्ति की आड़ मनुष्य के यथार्थ को कितनी सुन्दरता से छिपा लेती है।

मार के नीले-नीले निशान शान्तादेवी के शरीर पर उभर आये। उन्होंने मुख से प्रतिवाद या आह का एक भी स्वर नहीं निकलने दिया। इस मौन के नीचे अपमान की लज्जा थी अथवा उनके स्त्रीत्व की मर्यादा और पतिप्रेम का आदर्श, वही जानें। किसान बैल को पीटता है। जितनी शान्ति से वह मार खाता है उतनी ही शान्ति से उन्होंने भी मार खाई। तिवारी के हाथ जब मारते-मारते दुख चले तो उन्होंने अपने भावशून्य नेत्र उठा कर देखा और पूछा, "जाऊं ?"

तिवारी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

शान्ता देवी के पैर काँप रहे थे। लगता था वे अभी गिर पड़ेंगी। आँख में आँसू नहीं थे, कोई भाव भी नहीं था। धीरे-धीरे बाहर आकर उन्होंने कमरे के किवाड़ लगा दिये। निस्तब्ध रात्रि का अन्धकार चारों ओर सोया पड़ा था। रेलिंग के सहारे कुछ पल खड़े रह कर उन्होंने मानों अपनी नष्ट शक्ति को संचित-सा कर लिया और तब धीरे से उषा के पास जा कर उसके साथ लेट गयीं। उषा गहरी नींद में थी। माँ की छाया को छू कर जैसे उसने नेत्र खोल दिये। उन्हें पास लेटे देख कर उसने भरी-भरी आँखों से उन्हें देखा और 'माँ' कह कर उन की छाती से लिपट कर बालिका के समान सो गई। उषा के सिर को छाती से लगाये वे एकटक कमरे में जलती हरी बत्ती को देख रही थीं कि आशा अपने पलंग से उठ कर चुपचाप उन के पैरों के पास आ कर बैठ गई। वह सोई नहीं थी। तिवारीजी द्वारा प्रदत्त लातों और मार का शब्द उस

ने सुना था। माँ के शरीर पर लगी हर चोट को उस ने जलते कोड़े के समान अपनी पीठ पर अनुभव किया था। वह तिलमिला कर रह गई थी। कभी वह भी इसी प्रकार पिटी थी लेकिन आज जैसी पीड़ा तो तब नहीं हुई थी। उसी असहनीय पीड़ा से छटपटाते हुए उसने अपने काँपते हुए हाथ शान्ता देवी के पैरों पर रख कर एक लम्बे समय के बाद धीमे किन्तु हृदय विदारक स्वर में कहा, "माँ।"

शान्ता को लगा जैसे कोई घिनौना कीड़ा उन के पैरों पर रेंग रहा हो। मारे घृणा और वितृष्णा के उन्होंने झटके से पैर ऊपर खींच लिए, "छू मत मुझे।"

उषा नींद में थी उसे कुछ भी पता नहीं चला।

शान्ता देवी के इस स्वर को सुन कर आशा अपने को भूल गई। गम्भीर निद्रा में अप्रत्याशित विघ्न पड़ जाने से मनुष्य जिस प्रकार आश्चर्य, भय और पीड़ा से अभिभूत देखता ही रह जाता है उसी प्रकार आशा भी उन्हें देखती रह गई और चेतना वापस लौटाने के बाद की दुखमय अनुभूति से जड़ रह गई। मन के अन्दर निरन्तर चलने वाले संघर्ष ने पतझड़ के सूखे पीले पत्ते के समान उसे शान्ता देवी के पैरों पर ला पटका, वह रो पड़ी। बोली, "मैं ने कभी तुम से माँ की ममता नहीं चाही, कभी अपने आप को तुम्हारे सामने खोलने का प्रयत्न नहीं किया और अपनी कोख से जन्म दे कर भी जो तुम ने जो सदा मुझे सदा कुत्ते की तरह दुरदुराया उस अत्याचार के विरुद्ध मैं ने कभी मुख नहीं खोला। मेरी छाती में पीड़ा नहीं होती ऐसा मत समझना माँ। उस में भी दुख है, अपमान की वेदना होती है। तुम ने मुझे घृणा से दूर कर दिया लेकिन क्षण भर के लिए सोचो माँ मेरी इस दुरूह स्थिति का उत्तर-दायित्व किस पर है। मुझ पर, मैं ने किया है यह सब? मुझे उत्तर दो माँ। आँखों के आँसू रोक कर वह सीधी हो कर बैठ गई। दबाये हुए रुदन के मारे उस का सारा शरीर पत्ते की तरह काँप रहा था।"

इस स्वर की उपेक्षा वे नहीं कर सकीं। मुख घुमा कर उन्होंने आशा

की ओर देखा, कुछ पल देखती ही रह गयीं। वह भी उन के हाड़-माँस से बनी है, उस के शरीर में भी वही रक्त है जो उनके शरीर में है। अपने आचरण से जो चोट उस ने उन्हें पहुँचाई थी उसे ले कर कई बार उन्होंने सोचा था कि उषा को ले कर कहीं भाग जाय पर यह हो नहीं सका और उन्होंने सोच लिया कि उन का उषा के सिवा कोई नहीं है, वे अकेली नितान्त असहाय हैं। आशा की ओर देखते-देखते उन्होंने उषा को अपनी छाती से चिपका लिया। छाती में उफनते रुदन को दबा कर कहा, "हाँ तू ने किया है। पैसे और ऐशो-आराम की चमक-दमक के पीछे तू अपने स्त्रीत्व की लज्जा तक को चाट बैठी, वासना के हाथ का खिलौना बन गई। पैदा होते ही तू यदि मर जाती तो आज मुझे यह पीड़ा, यह लज्जा नहीं होती। तेरे इन कलंक भरे आचरणों के मारे मैं किसी के सामने मुख भी नहीं उठा सकती। दूर हो जा मेरी आँखों के आगे से।"

आशा की आँखों के आँसू वाष्प बन कर उड़ गये। कसी हुई वीणा के तार टूट जाने पर जो बेसुरा, अनाकर्षक स्वर निकलता है वैसे ही अनाकर्षक भावहीन स्वर में उसने कहा, "मरने की हिम्मत मुझ में है माँ। अपने को उस राह से लौटा भले ही न सकूँ पर मर अवश्य सकती हूँ। जीवन ही कौन बहुत अच्छा है माँ जो मौत से भय होगा!"

उत्तेजित हो कर शान्ता देवी उठ बैठीं, आग्नेय नेत्रों से आशा के भावहीन मुख की ओर देख कर तीखे स्वर में बोलीं, "हाँ चाहती हूँ, कहती हूँ तू मर जा और अपने कलंक को अपनी मृत्यु से धो डाल। तुझ में मेरा रक्त यदि है तो चूम ले मौत को।"

आशा उठ कर खड़ी हो गई। शान्ता देवी के पैर छू कर वह उषा के पास आ कर कुछ पल खड़ी रही फिर उसके निद्रित मुख को धीरे से चूम लिया। कहा, "मुझे माँ की ममता नहीं मिली, पिता की रक्षा नहीं मिली लेकिन इसके लिए अब शिकायत कैसी। इतना अनुरोध है माँ, उषा के चारों ओर से अपनी ममता को मत खींच लेना अन्यथा उसे भी तुम

उस गर्त में ढकेल दोगी जिस में मैं गिर चुकी हूँ। स्नेह और प्यार कितनी बड़ी सांत्वना और सहारा है इसे तुम ही समझती हो माँ, उषा से कभी वह न छिन सके।" कह कर उसने कमरे के किवाड़ खोले और बालकनी की ओर बढ़ गई।

शान्ता देवी उत्तेजना के मारे उठ कर खड़ी हो गई थीं और अनजाने ही भय से फटे नेत्रों से बालकनी की ओर बढ़ती आशा के पीछे-पीछे जा रही थीं। आशा ने सिर ऊँचा करके अन्धकाराच्छन्न आकाश की ओर देखा। उतना ही गहन अन्धकार उसके हृदय में भी छाया हुआ था। आँखों में आँसू नहीं आये। प्रस्तर के समान निस्पन्द और कठोर हो चुका था उस का हृदय। ऊपर की ओर देखते-देखते उसने मानों मन ही मन कहा, तुम ने मुझे घृणा से दूर फेंक दिया माँ, कभी यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि तुम्हारी ममता के लिए मैं ने भी मन ही मन कंगाल के समान याचना की थी। पापा के अत्याचारों से जर्जरित हो कर तुम्हारी गोद में आश्रय पाना चाहा था, पर तुम ने कभी अपना हाथ मेरी ओर नहीं बढ़ाया। उषा पर तुम विश्वास कर सकीं, मैं भी अविश्वासी नहीं थी। तुम एक बार तो अपनी गोद में मुझे खींच कर देखतीं। तुम ने आज आज्ञा दी है इसे भी मैं अपना सौभाग्य ही मानूंगी। जीवन में तो कभी तुम मुझ पर विश्वास नहीं कर सकीं। इस अन्त समय के इस लोभ को मैं नहीं छोड़ूंगी। और तब मानों मन ही मन माँ को अन्तिम प्रणाम कर उस ने बालकनी से नीचे देखा। सुनसान सड़क कितनी गहरी थी। पल भर के लिए उस का मन हिचकिचाया, भय की हल्की सी लकीर उसके हृदय में खिंच गई लेकिन दूसरे ही क्षण उसने रेलिंग पर अपना पैर रख दिया।

शान्ता देवी ने पागल के समान भाग कर आशा का रेलिंग के सहारे आधा नीचा लटका हुआ शरीर हाथों से पकड़ लिया, चीखीं, "अरे आशा।' आशा के नेत्र बन्द थे, भय से अथवा आने वाली मृत्यु के भीतर छिपी विश्वास की किरण से, कौन जाने। शान्ता देवी के हाथ काँप रहे

थे। उन्हें लग रहा था कि अभी उनके हाथों की शक्ति समाप्त हो जाएगी और आशा···आशा···। वे बोलीं, "उषा, विशन।" आगे के स्वर उन की अश्रु-विहीन सिसकियों में खो गये।

उषा हड़बड़ाकर उठ बैठी, क्या हुआ माँ ? अरे दीदी— माँ—ओ विशन। चीखती हुई वह बालकनी की ओर भागी और झपट कर उसने आशा का मूर्च्छित शरीर रेलिंग पर से खींच लिया। पास के कमरे से विशन भागता चला आया। उसकी आँखों में यद्यपि नींद भरी थी लेकिन पैर स्थिर थे। आशा को उषा के कन्धे पर झुके देखकर वह घबराकर बोला, "दीदी को क्या हुआ ?"

उषा ने धीरे से आशा को पलंग पर लिटा दिया। घटना का कारण उसे अभी भी समझ में नहीं आया था। माँ और दीदी के बीच क्या हुआ था उसे नहीं मालूम। जानने के लिये उसने खम्भे के सहारे टिक बैठी। माँ की ओर देखा पर पाया कि उनकी आँखें बन्द हैं और मस्तक से पसीने की मोटी धार बह रही है। अपने को सम्हालकर उसने विशन से एक गिलास पानी लाने को कहा और फिर धीरे-धीरे आशा के मस्तक पर हाथ फेरने लगी। पीड़ा की घनीभूत छाया उस मुख पर स्पष्ट थी। इतना पीला इतना रक्तहीन मुख किसी जीवित व्यक्ति का भी होता है, यह उसने पहले कभी नहीं देखा था। उसकी आँखों ने नीचे पड़ी काली लकीर और भी काली होकर उस धीमे प्रकाश में चमक रही थी।

विशन ने पानी लाकर उषा के हाथ में पकड़ा दिया तो उसने कहा, "तू दौड़ कर जा और डाक्टर उपाध्याय को बुला ला।"

विशन उसी प्रकार भागा चला गया।

शान्ता देवी उसी प्रकार खम्भे के सहारे टिकी बैठी थीं। उनके मस्तिष्क में केवल एक ही बात चक्कर काट रही थी, आशा कूद जाती तो, तो ···· तो ····। वे झटके से उठीं। सामने की ओर हाथ फैलाकर बोलीं, लौट आ आशा अब कभी मैं ऐसी बात नहीं कहूँगी। और उसे बाहों में भरने के लिये वे आगे बढ़ीं कि उषा दौड़कर उन्हें पकड़ पाती,

इससे पहले ही उनका पीड़ा और दुःख से क्षीण शरीर सामने की दीवार से टकराया, वे नीचे गिर पड़ीं। नीचे रखी चौकी का कोना उनके सिर में गड़ गया।

उषा के प्राण मुख को आ रहे थे। यह सब क्या हो रहा है। क्या वह इसके लिये दोषी है, उसके विरोध का फल क्या माँ और दीदी को भोगना पड़ रहा है ? पापा अपनी मनुष्यता इतनी भूल चुके है ? दीदी को तो उन्होंने सदा अपना दाहिना हाथ माना है फिर आज यह हो क्या रहा है जो इतनी दुर्घटना हो जाने पर भी उन्होंने पल भर के लिये भी इस कमरे में नहीं झाँका। वे मनुष्य है या राक्षस ? शान्ता देवी का रक्त से लथपथ शरीर हाथों में दबाकर वह रोने लगी। कुछ कर सके इतनी शक्ति भी उसमें नहीं थी।

आशा ने धीरे से अपने नेत्र खोल दिये। पहले तो कुछ समझ में ही नहीं आया। माँ की आज्ञा मानकर वह उनका विश्वास पाना चाहती थी। उसे लगा था कि किसी ने उसे पकड़ कर नीचे खींच लिया है। मूर्च्छित वह नहीं हुई थी। हाँ, इतनी जड़ व अवश हो गई थी कि वह न अपने नेत्र ही खोल पाई, न कुछ कह ही सकी। सिर घुमाकर उसने इधर-उधर देखा। अचानक उषा के रुदन का स्वर उसके कानों में पड़ा, देखा शान्ता देवी के शरीर को बाहों में भरे वह वह सिसक-सिसक कर रो रही है।

आशा की आँखों में जैसे प्राण लौट आये। वह उठकर उषा के पास आकर खड़ी हो गई। शान्ता देवी का मुख अपनी ओर करके शान्त-भाव से बोली, "रो मत उषा। सिर जरा-सा कट गया है। डिटौल की शीशी ले आ। खून बन्द हो जाएगा।"

उषा ने डिटौल की शीशी लाकर आशा के हाथ में दे दी। जल्दी के मारे उसने नई साड़ी फाड़ डाली। कपड़े को भिगोकर आशा ने कटे हुए स्थान पर रख दिया। शान्ता देवी जरा-सी कुनमुनाकर फिर शान्त हो गईं। कुछ ही मिनट में बहता हुआ खून रुक गया। डिटौल में भीगा फाया सिर पर रखकर आशा ने शान्ता देवी के मस्तक पर पट्टी बाँध दी।

विशन हाँफता हुआ आ पहुँचा, बोला, "उपाध्याय तो मिले नहीं छोटी दी, ओह दीदी।" उसका कंठ श्रम के मारे भरा हुआ था।

शान्ता देवी के सिर पर चिपके बाल ऊपर करते हुए आशा ने कहा, "जाने दे, डाक्टर की आवश्यकता नहीं है, तू जाकर सो जा।"

विशन क्षण भर खड़ा रह कर चला गया। उषा ने आशा की ओर देखा। आशा उन नेत्रों की ओर देखकर कुछ छिपा नहीं सकी उसने सारी बात उषा से कह दी और फिर स्तब्ध हो रही। माँ को मारा? क्रोध के मारे उषा ने अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँध लीं, "मेरे कारण पापा ने माँ पर हाथ उठाया? इतने नीचे गिर गये हैं वे? माँ पर हाथ उठाने की हिम्मत उनमें आई कहाँ से। पापा को उत्तर देना पड़ेगा दीदी?"

आशा स्नेह मधुर स्वर में बोली, "बेकार है उषा। जो अपनी मनुष्यता को भूल चुका है उसे तू कुछ भी कह, कितना ही कोंच लेकिन तू उसे सीधी राह पर नहीं ला सकती। ठोकर खाये बिना मनुष्य कभी नहीं संभालता मेरी बहन, और बुराई सदा अच्छाई की छाती कुचलकर जी भी नहीं सकती। उतावली मत कर, सत्य एक दिन सामने आ जाएगा। देख, माँ को होश आ रहा है।"

"ओह।" कराह कर शान्ता देवी ने आँखें खोल दीं।

प्रसन्नता के मारे उषा की आँखें छलछला आईं, "कैसी तबियत है माँ?"

आशा ने नेत्र झुका लिये।

शान्ता देवी अपने सिर पर हाथ फेरकर बोलीं, "आशा कहाँ है?"

"दीदी यहीं हैं माँ।"

शान्ता देवी ने नत-मस्तक आशा को देखा और देखते ही उसे छाती पर खींचकर रो उठीं, "अब मैं कभी तुझ से ऐसी बात नहीं कहूँगी आशा।" इससे आगे वे नहीं कह सकीं और जो नहीं कहा वह आशा उनकी आँखों से गिरते आँसुओं से समझ गई। माँ की जिस ममता के

लिये वह कंगाल-सी घूमी है उसे ही वह पा गई थी। सारी घृणा, सारी वितृष्णा को माँ ने मात्र पल भर में धो पोंछ डाला और उस विस्मृत ममता को पाकर आशा को लगा वह पागल हो जाएगी। इस पृथ्वी पर इस से भारी पाने की जैसे कोई और वस्तु ही नहीं है। उनकी छाती में मुख छिपाये हुए वह चुपके-चुपके रोने लगी।

उषा की छाती पर रखा हुआ इतने दिन का बोझ जैसे उतर गया। माँ ने आज दीदी को अपना लिया, इस से अधिक उसे और कुछ भी नहीं चाहिये। आशा के लिये जो करुणा और स्नेह उसके अपने मन में जागृत हो चुका था उसका उद्भव वह शान्ता के हृदय में भी चाहती थी। आशा ने आज स्वयं उन बन्द कपाटों को खोल दिया। उन खुले कपाटों को वापस बन्द कर सके इतनी शक्ति किसी में भी नहीं थी। तृप्त आकाँक्षा की जागृति लकीरों में डूबती सिमटती वह उठी और पूर्ण शान्ति से अपने पलंग पर आकर लेट गई। आज की घटना को लेकर तिवारी जी से कलह करने का उसका मन नहीं हुआ। बहुत देर तक मरे-मरे हृदय से पड़ी रह कर उसके नेत्र गम्भीर निद्रा से मुँद गये।

दूसरे दिन सवेरे नेत्र खुलते ही उसकी दृष्टि आशा के पलंग पर पड़ी। वह मुस्करा दी। मां को पाने के बाद वह क्षण भर के लिये उन्हें खोना नहीं चाहती थी। उठने की इच्छा होने पर भी वह उठी नहीं, पड़ी रही। एक अनोखी सी सुस्ती उसे अपने में समेटे जा रही थी। कोई उससे कारण पूछता तो वह यही कह देती कि उसकी आकांक्षा पूर्ण हो चुकी है, पाने के लिये और कुछ भी संसार में नहीं बचा है। संतुष्टि मानव की कर्मण्यता की मृत्यु है। उषा भी मानों जड़ अवश सी हो गई थी। क्या करे करने के लिये कुछ है ही नहीं। हठात् ही उसके अवश पड़े शरीर में एक हिलोर सी उठी। रमानाथ क्या अब भी दीदी के प्रति अपने विचार नहीं बदलेगा? कैसे समझाये वह उसे कि वे ऐसी नहीं हैं जैसी वह उन्हें समझता है। क्या सभी उसके जितने दृढ़ निकल जाते हैं? निर्बलता को क्या सभी जीत लेते हैं? जिसके लिये विरोध

करने का कोई मार्ग ही नहीं खुला हो उसे क्या गले में पत्थर बांध कर डुबा ही देना चाहिये ? कितना दम्भी है यह रमा।

धीमे स्वर में गुनगुनाती हुई वह उठकर बैठी ही थी कि भौंसले का स्वर उसके कान में पड़ा। वह तिवारीजी से कह रहा था, आज चौपाटी पर होने वाली मीटिंग में यशपाल को अधिक कहने का अवसर मत देना। वह हम लोगों से बहुत चिढ़ा हुआ है। उससे बना कर चलना पड़ेगा अन्यथा सेठ लाल वाला मामला हाथ से निकल जाएगा। तुम जानते हो पांच हजार वह दे चुका है, पांच हजार के लिये उसने वायदा किया है।

तिवारीजी ने कहा, "तुम चिन्ता करो। यदि इस बार के चुनाव में भी जीत गया तो इस यशपाल को मिटा दूंगा। कम्बख्त न खुद खाता है न दूसरे को खाने देता है।"

भौंसले ने इस बार स्वर को बहुत कोमल बनाकर कहा, "तुम कुछ अनुचित न समझो तिवारी तो एक प्रस्ताव करना चाहता हूँ।"

"कहो।"

"आशादेवी का हाथ मुझे पकड़ा दो। पत्नी को मैंने मायके भेज दिया है। विश्वास करो वह अब कभी मेरे घर का मुख नहीं देखेगी। रहा सवाल बच्चों का, सो उन्हें मेरी सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। तुम्हारी दया से इतना है जिससे वे जीवन भर राज करती रहेंगी। ना मत करना तिवारी। जानते हो तुम्हारा और मेरा स्वार्थ भिन्न नहीं है।"

तिवारीजी ने क्या उत्तर दिया, इसे उत्तेजना के मारे उषा नहीं सुन सकी। सुनते ही उसके शरीर में जैसे आग लग गई। तो पापा अब दीदी को मिटाना चाहते हैं, और वह भी उसके रहते हुए। देखती हूँ उसके होते हुए कैसे कोई उनका बाल भी छूता है। कितना साहस है पापा में। प्राण भी देने पड़े तो दे दूंगी पर पापा की इस चाल को कभी चलने नहीं दूंगी और यह भौंसले, छि: नेता बनता है, राजनीति का दम भरता है पर कर्म तो चमार से भी गये बीते हैं। सचमुच क्या आज का राजनीतिज्ञ

इतना पतित हो चुका है ? इतना गिरा हुआ, इतना स्वार्थी। क्या ऐसा ? देश के ये कर्णधार आलसी, द्वेष और अपना घर भरने के लोभ में वास्तविक कार्य को भुलाकर अकर्म करने पर क्यों तुल गये हैं। स्वतन्त्रता नहीं हुई बल्कि ये मनुष्य की बौखलाहट हो गई जो अचानक ही सब कुछ पा लेने पर सोच नहीं पाता, उसे कहां रखे कैसे रखे।"

पापा सब कर सकते हैं पर उसके पीछे वे मां पर हाथ उठायेंगे यह उसने वास्तव में कभी नहीं सोचा था। निर्बल को सभी दबा सकते हैं, मुझ पर हाथ उठाते तो जानती। क्षुद्र कीड़ा छिः। और वह तूफान की तेजी से तिवारीजी के सामने जाकर खड़ी हो गयी। उषा को देखते ही तिवारीजी की आंखों में वितृष्णा का भाव उभर आया कहा, "क्या है।"

नेत्रों को तिवारीजी पर निरुद्ध कर उसने देखा मानों उनकी आंखों से वह उनके अन्तर की गहराई माप लेना चाहती हो। पता नहीं क्यों आज तिवारीजी उसके नेत्रों से अपने नेत्र नहीं मिला सके। उन्हें अपनी आंखें फिरा लेनी पड़ी, स्वर को संयत कर धीरे से अत्यंत कठोर स्वर में "कहा, मेरा समय बर्बाद मत करो, जाओ यहां से।"

"कुछ पूछना चाहती हूं।"

"क्या ?"

"यही कि मेरे विरोध का प्रतिशोध अपने मां से क्यों लिया। साहस था तो मुझसे निपटते।"

इतने उद्धत स्वर में उसने यह वाक्य कहा कि तिवारीजी का मुख लाल हो गया, बोले, "जानती है तू किससे बात कर रही है ?"

उषा कड़वे स्वर में बोली, "जानती हूं। आप हैं विधान सभा के माननीय सदस्य जो धन और सत्ता के लोभ के पीछे निकृष्ट से निकृष्ट कर्म करने में भी नहीं हिचकते। आपके इस वीभत्स घिनौने रूप को सबके सामने उघाड़ कर रख दूं तो कैसा रहे ?"

"कम्बख्त, तू बेटी होकर बाप के लिये ऐसे कह रही है ?"

उषा के सिर पर भूत सवार था, "क्यों न कहूँ। बाप होकर जब

आपने अपनी मर्यादा नहीं निभाई, अपनी प्रतिष्ठा को स्थिर नहीं रखा तो मैं ही क्यों उसे याद रखूं। बहुत सहा है पापा पर अब नहीं। आज तक मां के डर के मारे चुप थी लेकिन आपने जब उन तक का इतना अपमान कर दिया तो क्यों चुप रहूं। हम लोगों की कीमत आपने गाय-बैल से अधिक नहीं की। दीदी को नष्ट कर डाला और अब मुझे भी उसी कीचड़ में घसीटना चाहते हैं। आप मुझे अभी जानते नहीं हैं पापा। आपकी एक भी चाल में सफल नहीं होने दूँगी।"

तिवारीजी दांत पीसकर बोले, "मैं तेरा गला मरोड़ दूँगा।"

"मरोड़ दीजिये। यह भी यदि आपके मन में हो तो पूरी कर लीजिये लेकिन प्राणों का भय दिखा कर आप मेरा मुख बन्द कर देंगे, यह मत सोचियेगा। नृशंसता की भी सीमा होती है पापा पर आप तो उस सीमा को भी लांघ गये हैं। आपने आज मां पर हाथ उठाया, उस सती साध्वी पर जिसे आपने कभी पत्नी का आदर नहीं दिया, मातृत्व का सुख नहीं भोगने दिया, इतने अत्याचार सहकर भी जिन्होंने कभी आपका विरोध नहीं किया। आपकी आज की बात मैंने सुन ली है पापा। आप को अपना पिता स्वीकार करते हुए भी लज्जा आती है। आप पिता नहीं राक्षस हैं।"

तिवारीजी ने बहुत सहन किया था और, सहन नहीं हो सका। क्रोध से कांपते हुए उन्होंने उठकर एक भरपूर थप्पड़ उषा के मुख पर जमा दिया और तब तक मारते रहे जब तक आशा ने बीच में आकर उसे अपने पीछे छिपा नहीं लिया। तिवारीजी का उठा हुआ हाथ रुक गया, गुर्राकर बोले, "हट जा वरना तेरी भी वही गति होगी।"

आशा हंस पड़ी, "कोई नई बात नहीं होगी पापा, होने दीजिये। कसर ही कौनसी छोड़ी है आप ने। शरीर से मोह कभी नहीं रहा, होता तब जब मेरी पवित्रता बची रहती, अपवित्र शरीर ले कर जीते रहने से मृत्यु अच्छी है। मैं सचमुच चाहती हूँ कि मेरी मृत्यु आप के हाथों हो जाय जिस ने बाप हो कर भी बेटी की लज्जा को सरे-आम बेचा है।"

आश्चर्य से तिवारीजी के नेत्र फटे रह गये। जिस ने आज तक निर्विरोध उन की उचित अनुचित आज्ञा का पालन किया था और जिसे वे सचमुच में अपना दाहिना हाथ मानते थे, उसी के मुख से यह बात सुन कर उन्होंने विस्फारित दृष्टि से उसे देख कर कहा, "तू—तू यह कह रही है आशा ?"

आशा सिर उठा कर बोली, "हाँ पापा, मैं कह रही हूँ। अपने आप से मुझे कोई मोह नहीं रहा है। अन्तिम कामना की जो वस्तु थी उसे भी मैं ने पा लिया है, फिर मोह किस लिए करूँ। आप शायद सोचते थे कि मैं जो भी कर रही थी प्रसन्न मन से कर रही थी, यह आप की भूल थी। अकेले में मुझे सैंकड़ों बार मर जाने की इच्छा हुई है, भाग जाने का मन हुआ है, लेकिन इतना साहस मैं अपने में उत्पन्न नहीं कर पाई। उषा के जितनी शक्ति मुझ में होती तो पापा आज आप आप न होते और अपने घृणित जीवन की वेदना भी मुझे इतनी नहीं कचोटती। आप का स्नेह मेरे सौन्दर्य के उपयोग तक था। माँ की ममता से खींच कर आप ने मुझे नरक में अकेला रखा था उसी ममता को मैं फिर से पा गई, और पापा अब आप किसी भी तरह मुझे अपनी इच्छा के आगे नहीं झुका सकेंगे।" कह कर तिवारीजी के कुछ भी कहने से पहले ही वह उषा को खींच कर तीर की तरह बाहर निकल गई।

क्रोध के आवेश में तिवारीजी ने अपने दाँतों से ओठों को इतना जोर से दबाया कि उन से खून निकल आया। आशा से इस विद्रोह की आशंका उन्हें नहीं थी। उसके नारीत्व को वे जड़ से कुचल चुके थे और उन्हें विश्वास था कि वह कुचला हुआ नारीत्व उनके विरुद्ध मुँह नहीं खोल सकेगा। नारी को अपनी चारित्रिक मर्यादा ही सब से प्रिय होती है। उस के विनष्ट हो जाने के बाद वह किसी के आगे मुख नहीं उठा सकती। तिवारीजी ने संसार देखा था और स्त्री की इस निर्बलता का उन्हें खूब गहरा अनुभव था। आशा को उन्होंने आरम्भ से ही अपने स्वार्थ साधन का अस्त्र बना रखा था। बाईस वर्ष तक जो उन के एक-

एक इंगित पर नाचती रही है वह आज इतनी विद्रोहिणी कैसे हो उठी ? उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि अब वे उसे अपने पीछे नहीं घसीट सकेंगे। पद-दलित जब विद्रोह करता है तो साँस के अन्तिम क्षण तक अपने पथ से पीछे नहीं हटता। सत्य को एक बार पकड़ लेने के बाद वह निरन्तर आगे बढ़ता चला जाता है। इस विश्वास के सहारे कि उसने जीवन के वास्तविक को पा लिया है। उस का स्थूल भले ही नष्ट हो जाय लेकिन उसकी खोज का अन्त नहीं आ सकेगा। मृत्यु के अन्तिम क्षण में भी इस सुख और आनन्द से वह कभी वंचित नहीं होगा कि उस ने सत्य को पहचान लिया है। सत्य की खोज वैज्ञानिक परीक्षण के समान ही तो है। विज्ञान प्राकृतिक तत्वों का सहारा ले कर नये-नये परीक्षण करता है और अपनी खोज में सफल होता है। सत्य मनुष्य के जीवन को अपने परीक्षण का माध्यम बनाता है। असत्य कभी चिरजीवी नहीं होता। दो विपक्षी दलों में एक पक्ष के जीतने के समान ही सत्य और असत्य के संघर्ष में सत्य विजयी होता है। बलिदान होते हैं, मनुष्य मरते हैं। बिना त्याग के मनुष्य वास्तविकता को कहाँ पाता है। उस वास्तविक में निहित सत्य को खोज निकालने के लिए उसे समाज में, चली आई रूढ़ियों और परम्पराओं से विद्रोह करना पड़ता है। दबे हुए को शक्तिशाली सदा दबाएगा, यह एक साधारण सी बात है। वह अपनी शक्ति और छल-बल का सहारा ले कर ही निर्बल पर अपना प्रभुत्व जमाता है। पद-दलित के पास न शारीरिक शक्ति है और न सम्पन्नता की। समाज भी उन्हें अपने से निकाल फेंकता है। उनके पास बच रहता है उनका अपना जीवन, वह भी जमीन पर रेंगने वाले कीड़े-मकोड़े के समान सारहीन और घृणित ही होता है। सैंकड़ों मनुष्य प्रतिदिन पैदा होते हैं मर जाते हैं। ईश्वर यदि है तो केवल उसी के रजिस्टर में उनकी जन्म और मृत्यु का लेखा-जोखा रहता होगा, उसके आस-पास विचरने वाला तो उसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता। इस अत्याचार का प्रतिकार आज तक तो नहीं हो सका है। संघर्ष हुए हैं और तब तक होते रहेंगे जब

तक मनुष्य एक श्रेणी में आ कर खड़े नहीं हो जाएंगे। युग-पुरुष का स्वरूप इसी एकता में छिपा हुआ है।

तिवारीजी मानों स्पष्ट देखने लगे कि उनकी आतंकवादी सत्ता का अन्त निकट से निकटतर आ रहा है। विद्रोह के लक्षण उस में प्रकट हो रहे थे जिसके अहं को वे कुचल चुके थे। केंचुआ भी आज साँप के समान कुण्डली मार कर काटने दौड़ा था। इस विद्रोह को वे किसके बल पर दबाएंगे। क्रोध और निराशा से उन्होंने दोनों हाथों से अपने बाल पकड़ कर नोच डाले।

## चौदहवाँ अध्याय

माँ को पा कर आशा अपने को भूल गई। उसे समझ में ही नहीं आया कि इस प्रसन्नता को वह आखिर कहाँ छिपाये। असम्भव की प्राप्ति मनुष्य को आत्म-विस्मृत कर देती है। उस विस्मृति के क्रोड में बंधी आशा चारों ओर की हलचल से उदासीन हो कर अपने में ही न जाने क्या-क्या गुनती रही। बाह्य संसार से एकदम टूट कर उसे लगा जैसे अब ही उसने अपने को पाया है, अब तक जिस झूठे मोह को लेकर वह जी रही थी वह खण्ड-खण्ड हो कर बिखर गया है, और उस बिखरने के भीतर से उसका वास्तविक खिल रहा है। अपने को खो देने की पीड़ा कितनी दुरूह और भेदक होती है, इस का अनुभव अपने स्वाभिमान और आदर्श को इस पंक में फंसा कर ही किया जा सकता है। खोये 'अहं' को प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी पूर्व की वह स्थिति काँटे जैसी दिन-रात चुभती रहती है। पंक से अपने को खींच लेने के पश्चात भी आशा अपने को एकदम स्वच्छ नहीं कर सकी। कीचड़, उसे लगता था, अभी भी उसके शरीर से लिपटा हुआ है। सुख और आत्मपीड़न की इस स्थिति में कितने दिन निकल गये, इसका उसे पता ही नहीं चल सका। अपने अन्तर को टटोलने में वह इतनी खो गई थी कि इस से आगे भी कोई और वस्तु है, इसका उसे ध्यान नहीं रहा। वह अपने स्थूल को भूल चुकी थी। और तब एक दिन उषा ने उसे टोका, "दिन पर दिन तुम्हें

होता क्या जा रहा है दीदी। अपने में इतनी भूली-सी खोई-सी रहोगी तो कैसे काम चलेगा ? तुम्हें कुछ करना चाहिये।"

आशा मानों स्मृति को पा कर बोली, "क्या करना होगा बता। मुझे माँ मिल गयीं यह कम नहीं है। इस प्राप्य के आगे संसार की अमूल्य वस्तुओं की प्राप्ति भी मेरे आगे कोई मूल्य नहीं रखती। जीवन में इस ममता की कामना पूर्ण हो गई, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं चाहती।'

उषा म्लान हंसी से मुख भर कर बोली, "अपने में इतनी भूली रहोगी तो एक दिन वैराग्य लेना पड़ेगा, कहे देती हूं," और हंस दी।

आशा मुस्काई, "वैराग्य ही मेरे लिए सबसे अधिक उपयुक्त रहेगा। कम से कम शरीर की तो शुद्धि हो जायगी।"

उषा व्यंग से बोली, "खूब, वैराग्य लेने और गेरुआ धारण करने से ही यदि मनुष्य पवित्र हो जाया करता तो आये दिन जो इन महात्माओं के कार्यों का लेखा-जोखा सुनकर कानों को पवित्र करना पड़ता है वह नहीं होता। गेरुआ धारण करने से ही कोई शुद्ध नहीं हो जाता, आवश्यकता विचारों की शुद्धि की है दीदी, और वह बिना वैराग्य लिये हो ही नहीं सकती, यह मैं नहीं मानती। संसार में रहकर भी लोग अपने को विरागी रख सकते हैं, पवित्र रह सकते हैं। शरीर की शुद्धि की बात है तो वैराग्य लेने से भी नहीं होगा, वह तो तभी होगी जब चिता पर यह शरीर चढ़ेगा। बिना आग में तपाये सोना निखरा नहीं करता। इस बेकार के विचार को छोड़ो और जीवन के वास्तविक आनन्द को पहचानो।"

आशा ने हाथ बढ़ा कर उषा को अपने पास खींच लिया। उसके दुबले-पतले मुख की ओर देखने-देखते उसके नेत्र भर आये। अध्ययन के नाम उसके पास कोई पूंजी नहीं थी। पढ़ने का सुयोग भी उसे कभी नहीं मिला फिर भी बुद्धिहीना वह नहीं थी। संसार को उसने देखा था, धीरे से आँसू पोंछ कर कहा, "जीवन का आनन्द आज की सस्कृति किस में मानती है, जानती है ? जीवन के पूर्ण उपभोग में आज की सभ्यता

की इति श्री है। आदर्श नहीं, पवित्रता की छाया नहीं, कुछ भी तो नहीं है। उसी आनन्द को भोग करने के लिये कहती है तू मुझसे ? मैंने इसे अपने रोम-रोम में वर्षों तक अनुभव किया है उषा, और अब दिन रात मेरा मन किया करता है कि यहाँ से कहीं दूर भाग जाऊँ। अपने अतीत को मैं भुला नहीं सकती, उसका दंशन अब मुझसे नहीं सहा जाता।"

उषा ने असीम स्नेह से आशा का अश्रुप्लावित मुख चूम लिया और अपने ओठों पर उसके आँसू खींचकर कहा, "तुम विवाह करलो दीदी। सच कहती हूँ इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। परिवर्तन की आवश्यकता स्वाभाविक है।"

"अर्थात् फिर अपने आप को बेच दूँ ?"

उषा ने विस्फारित दृष्टि से कहा, "विवाह के माने क्या अपने आप को बेचना है ? तुम कह क्या रही हो दीदी।"

इस स्वर के आगे एकदम निर्बल पड़ कर आशा ने कहा, "बेचना अवश्य नहीं है पर तू ही सोच देख मेरे पास पूँजी कौन-सी बची है जिससे आकर्षित होकर कोई मुझसे विवाह करना चाहेगा। हर व्यक्ति यही चाहता है कि वह चाहे कैसा भी हो पर उसकी पत्नी को उसके प्रति पूर्ण विश्वासी, पवित्र एवं योग्य होना चाहिए। मेरी असमर्थता को कोई नहीं देखेगा उषा। पवित्रता का मोह इतना बड़ा है कि उससे कोई वंचित नहीं रहना चाहता। कौन है इतना सहृदय जो गिरे हुए को उठाने के लिए आगे आएगा। इस असंभव को मैं कभी नहीं पालूँगी। और कोई राह सुझा जिसे मैं अपना सकूँ।"

तिवारी जी और भौंसले के बीच हुई बात को उषा भूली नहीं थी। अवश्य, डरकर कार्य करना कायरता ही थी लेकिन इसके सिवा और कोई राह भी तो नहीं थी। विवाह के सिवा कोई ऐसा मार्ग नहीं था जिससे आशा अपना खोया हुआ स्थान पुनः पा सकती। अतीत की लज्जा के आगे उसे भौंसले से विवाह करने पर बाध्य भी तो कर सकते थे। उषा ने बहुत सोचा था। जो निर्णय किया था उसने इन दिनों में जैसे

उसे तोड़ दिया था, लेकिन करना है। मन का दुःख जरा सा भी नहीं सह सके तो क्या वह आने को ऊँची उठा पाएगी। मुख झुकाकर उसने अपने को दृढ़ किया। नहीं, वह अपने को आशा के आगे कमजोर नहीं पड़ने देगी। सुख का यह पल क्यों वह अपने हाथ से जाने दे। प्राप्ति का सुख ही तो सुख नहीं है, कहा, 'असाधारण नहीं भी हो पर रमा साधारण लोगों से कुछ ऊँचे विचार रखता है दीदी। तुममें मुझसे भिन्न वह अवश्य नहीं है। अधिकांश युवकों के समान वह भी सुखी और सम्मानित जीवन की कामना करता है लेकिन उनसे अधिक उच्च रूप में। मैं उसके साथ इतना रही हूँ दीदी कि लगता है वह जैसे मुझसे भिन्न है ही नहीं। उसमें सत्य को पहचानने की यदि शक्ति है तो उस पर चलने का साहस भी है। डरकर उसने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया, इसका अनुभव तो तुम्हें भी है...... ।"

आशा बीच में ही उसकी बात काट कर चकित होकर बोली, "तू कहना क्या चाहती है?"

निमिष भर के लिये नेत्रों में झलक उठने वाली वेदना को बलपूर्वक भीतर दबा कर उषा ने कहा, "तुम उससे विवाह करलो," कहकर उषा ने मुख सीधा रख कर हंसना चाहा लेकिन हंस नहीं सकी। अनजाने में ही उसका मुख झुक गया।

आशा स्तब्ध रह गई। उषा की भावना वह अभी तक ठीक से समझ नहीं सकी थी। उसकी उस पल भर की दृष्टि ने उषा को उसके सामने खोल दिया और उस वेदना के नीचे छिपे असीम स्नेह और विश्वास को देख कर वह निःशब्द अभिभूत के समान एकटक उसे देखती रह गई। उसके मन ने भी चाहा था कि वह किसी पर अपने को न्योछावर कर सके, अपने को उस पर लुटा सके। पागलपन की सीमा पर पहुंच कर उसने किसी को प्यार किया था पर निभा नहीं सकी। उसके किसी भी भाव को उसने सच नहीं माना था और एक दिन उसे ठुकरा कर चला गया था। उसी विस्मृत भावना को स्मरण करते ही आशा के हृदय में

हलचल सी मच गई। प्रयत्न करके उसे शान्त कर धीरे से बोली, "यह तू क्या कह गई उषा।"

उषा ने भीतर तक पहुंच कर अपने को निःस्व कर दिया। रमानाथ के लिए उसके मन में जितना प्रेम, जितना विश्वास था उसी से साहस बटोर कर कहा, "मैं ठीक कह रही हूँ दीदी। तुम एक सबल सहारा पा सको, यही मेरी कामना है। उससे अधिक तो मैं किसी को जानती नहीं। यह मेरा अनुरोध समझो, प्रार्थना समझो अथवा जिद समझो, तुम्हें उससे विवाह करना ही होगा।"

आशा ने अपने को सम्हाल लिया, हंस कर बोली, "रमा से विवाह करना मानो हंसी खेल है। भूल गई उस संध्या की बात जब वह मारे क्रोध और घृणा के सारे रुपये मेरे पैरों पर फेंक कर चला गया था? तू यह मत समझना कि वह उसका आक्रोश मात्र था। वह सचमुच में घृणा करता है। जो घृणा करता है उससे मित्रता की कोशिश कर सकती हूं पर जीवन भर उसका साथ नहीं दे सकती उषा।" प्रथम तरुणाई के उस साथी की कथा वह कभी प्रकट नहीं करेगी इसका वह निश्चय कर चुकी थी।

उषा ने अपने को बिल्कुल स्वस्थ कर कहा, "भूल किस से नहीं होती दीदी, पूर्ण तो कोई भी नहीं होता। केवल मात्र इस छोटी-सी भूल को लेकर कोई किसी को जीवन-भर घृणा से दूर ठेले रहेगा यह तो मनुष्यता नहीं दीदी। हाथ बढ़ाकर किसी को ऊँचा उठाने में शर्म नहीं है, यह उसे समझना पड़ेगा।"

परिहास तरल कंठ से आशा ने कहा, "कौन समझायेगा?"

"मैं।"

आशा खिलखिलाकर हंस पड़ी, बहुत देर तक हँसती रही। जब हँसी थमी तो देखा उषा उसकी गोद में मुख छिपाकर रो पड़ी थी। बहन के लिये उसने अपना प्रेम लुटा देना स्वीकार कर लिया था। आशा क्या इतना कर सकती थी? नहीं, उससे इतना नहीं होता। वह सचमुच में

निर्बल है। उषा उससे बहुत ऊँची है। रमानाथ का मोह उसके लिये कितना बड़ा था इसे क्या वह नहीं समझती? हठात् उसकी आँखों से आँसू टपक पड़े। बोली, "तू क्या उससे विवाह नहीं करना चाहती?"

उषा ने मुख नहीं उठाया लेकिन कहा स्पष्ट स्वर में, "प्यार का अन्त विवाह ही तो नहीं होता दीदी। विवाह से परे भी प्रेम का एक स्वरूप है और वह है मित्रता का। रमानाथ को मैंने प्यार किया है इस कारण से उससे विवाह कर लूँ यह तो कोई तर्क नहीं हुआ। फिर मुख उठाकर कहा, प्यार मैंने किया है इसे मैं स्वीकार करती हूँ और यह भी सही है कि उसके स्थान पर कोई दूसरा इस आसन पर आसीन नहीं हो सकता लेकिन अपनी कामना को लेकर ही मैं जरा-सा भी त्याग नहीं कर सकी तो सोचूँगी दीदी मैंने उसे प्यार ही नहीं किया। मात्र एक भ्रम में ही मैं पड़ी रही। रमा को मैं ऊंचा उठाना चाहती हूँ, उसकी साधारण कामना को परिष्कृत करना चाहती हूँ। समाज के सिरमौर जो नहीं कर सकते मैं चाहती हूँ वही रमा करे और भाषणबाज पोंगापंथियों के मुख पर एक करारा थप्पड़ लगाये। जो कहता है वह करता नहीं दीदी। मेरे प्यार में शक्ति होगी तो मैं ऊँचा उठा दूंगी। तुम इससे इन्कार मत करो।" कहकर वह असीम याचना भरी दृष्टि से आशा की ओर देखने लगी। रमानाथ के अनजाने ही वह उसे जो दे चुकी थी, उसका पता उसके अन्तर्यामी को था। हृदय की भावनाओं को उसने कभी मुखर नहीं होने दिया, कभी वह उसके सामने निर्बल नहीं पड़ी। अपने प्रिय को सामने देखकर भी वह कभी अपनी कामना की सीमा से बाहर नहीं पड़ी। अपने को इतना संयत रख लेना सहज नहीं है। यह मैं नहीं कहती कि प्यार असंयमी होता है। हाँ, इतना अवश्य मानती हूँ कि प्रिय को सामने देखकर यदि कोई अपने आवेग को न रोक सके तो उसे दोष भी नहीं दिया जा सकता। प्यार की पवित्रता इस निर्बलता से धुँधली नहीं हो जाती। पवित्रता की कसौटी के मापदंड सभी के भिन्न हैं और ये प्रायः युग के साथ-साथ ही परिवर्तित होते रहे हैं। समाज चाहता है पवित्रता

और मर्यादा के पालन का भार स्त्री के मस्तक पर रखकर पुरुष को उससे मुक्त कर दिया जाय। पुरुष के पीछे पंगु सी घिसटना ही तो उसके नारीत्व की इतिश्री है। कहाँ तक स्थिर रहेगी यह मान्यता। कभी यह हमारे ओड से एकदम ही विलुप्त हो जाय तो भी कोई आश्चर्य नहीं है। मर्यादा निर्वाह करने का भार दोनों पर समान रूप से होना चाहिये। पुरातन से जो नियम चला आया है वही चिरातन क्यों हो। अवश्य ही आज का पुरुष स्त्री को अपने समान मानता है लेकिन मुख से कहने तक ही, जीवन की दौड़ में इस मान्यता का कोई अर्थ नहीं, कोई मूल्य भी नहीं है।

स्त्री पति के सिवा दूसरे से प्रेम न करे, यदि करती है तो वह चंचल है, चरित्रहीना है। यही हमारा भारतीय समाज मानता है। समझ में नहीं आता विवाह प्रेम की गारन्टी क्यों है। पत्नी पति से प्यार न कर सके तो क्या समाज के लिये यह उचित है कि वह उसे कलंकिनी कहे? इससे बढ़कर क्रूरता और संकीर्णता किसी भी स्थान पर नहीं मिलेगी। स्त्री के प्रेम का एक ही रूप हमें समझ पड़ता है कि वह पति के आगे समर्पण करदे और जहाँ तक हो सके सन्तान का भार ढोती रहे। यह समर्पण नहीं है, उसकी असमर्थता है क्योंकि वह स्वतन्त्र नहीं है, पति के बिना समाज में उसका कोई स्थान नहीं है, उसका सहयोग किये बिना उसका निस्तार नहीं है। वर्ग विशेष की बात न सोची जाय तो सरलता से देखा जा सकता है स्त्री-समाज का एक बड़ा भाग आज भी इसी अत्याचार की पराकाष्ठा से जर्जरित है। विवाह के पश्चात् शारीरिक समर्पण कर देने के कोई माने नहीं होते, समर्पण हृदय का होना चाहिये और तभी विवाह की नींव दृढ़ मानी जा सकती है। प्रेम की पूर्णता के लिये विवाह नहीं विश्वास आवश्यक है। जहाँ अविश्वास है वहाँ प्यार नहीं रहता। उसकी विश्वसनीयता में ही उसकी पूर्णता है, परिणति है और उज्ज्वलता है। रमानाथ के प्रति उषा का प्यार प्रेम की इस पूर्णता को लेकर नहीं भी पनपा हो, तब भी इतनी संकीर्ण वह नहीं है जो अपने प्रेम

की परिणति विवाह में ही देखे। आशा को वह यहाँ से हटाना चाहती है, भौंसले की नीचता के नीचे कहीं वह कुचल न जाय। उसे अभी तक नहीं मालूम कि तिवारी जी उसे भौंसले को अर्पण कर चुके हैं। ओह दीदी उसका प्रस्ताव मान क्यों नहीं लेतीं। वह एकटक तरल नेत्रों से आशा की ओर देखती रही।

आशा ने नेत्र बन्द कर लिये। रमानाथ! हाँ, अच्छा है लेकिन वह उससे प्यार नहीं करती। इस दृष्टि से उसने कभी उसे देखा भी नहीं और उषा को वंचित करके वह कभी उसे नहीं पाना चाहेगी। उषा उसके लिये अपने हृदय पर पत्थर रख ले और वह बड़ी बहन होकर उसके स्नेह का धन उससे छीन लेगी? इससे तो वह मर जाये तो क्या अधिक उचित नहीं है? पुरुष के प्यार के लिये कभी लालायित हुई थी लेकिन वह कामना तो कभी की अतीत के अंधकार में समा चुकी है। उसी प्यार के लिये क्या वह अब छीना-झपटी करेगी? छिः, इससे बढ़कर गर्हित बात दूसरी ही हो नहीं सकती। चट से नेत्र खोलकर उसने अगीम वितृष्णा का भाव स्वर में भरकर कहा, "छिः उषा क्या तू मुझे इतनी क्षुद्र समझती है? विवाह के लिये मैं लालायित नहीं हूँ। न हो विवाह, उसके बिना मैं मर नहीं जाऊँगी। तू है, माँ हैं, मुझे अभाव कौन-सा है। रमा क्या, मैं किसी से भी विवाह नहीं करूँगी।"

उषा संकट में पड़ गई। भौंसले की बात उसने अभी तक आशा से छिपा रखी थी। कहने के लिये उसका मुख नहीं खुलता था लेकिन आशा यदि अपनी ही जिद पर अड़ी रही तो वह क्या करेगी, कैसे उसे तैयार करे। वास्तविक बात छिपा कर करुण कंठ से बोली, "मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ दीदी। यह मेरा नहीं माँ का अनुरोध है। भाई होकर भी दादा ने कभी हमारी सुध नहीं ली और पापा ने कभी हमारी लज्जा बचाने की कोशिश नहीं की। तुम्हारा विवाह करके माँ सांत्वना पाना चाहती हैं, उन्हें निराश मत करो। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ।"

आशा की वितृष्णा निर्बलता में परिणित हो गई। उषा ने उसका

सबमें कोमल स्थल पीड़ित किया था, क्षीण स्वर में बोली, "मुझसे नहीं होगा उषा, तू मुझे बाध्य मत कर। सोचती थी कभी किसी से कहूँगी नहीं लेकिन देखती हूँ बिना कहे मैं अपने को खोल नहीं सकती। विपिन को जानती है ?"

"हाँ, उन्होंने पिछले वर्ष ही तो विवाह किया है।"

"इसी विपिन को लेकर कभी स्वप्न देखे थे, समाज में मेरा जो स्थान है वह उससे छिपा नहीं था। इसी कारण वह इस पर विश्वास ही नहीं कर सका कि मैंने उसे धोखा नहीं देना चाहा था वरन् वास्तव में प्यार किया था। मैंने उससे प्रार्थना कभी नहीं की। उसने विवाह कर लिया तब भी कुछ नहीं कहा लेकिन अपने मन से मैं उसे अब भी निकाल नहीं सकी हूँ। मैं कैसे विवाह करूँ उषा ?" दोनों हाथों में मुख छिपाकर उसने जोर से सिर हिलाकर कहा, "नहीं उषा, यह मुझसे नहीं होगा।"

उषा स्तब्ध-सी हो कर बहुत देर तक मुख झुकाये बैठी रही। जिस व्यक्ति में इतना भी साहस नहीं था कि वास्तविक को पहचान कर वह आशा को अपना सकता, उसे ही अपनी कामना का स्थल बना कर आशा बैठी रहे यह उसे अच्छा नहीं लगा। विपिन चाहता तो आशा को इस गर्त से निकाल सकता था पर वह भी तो वही था जो पवित्रता और मर्यादा की पूर्णता केवल स्त्री में ही देखना चाहते हैं। एक गहरी साँस लेकर वह सीधी हो गई, बोली, "जो असम्भव है उसकी आशा मैं कभी नहीं करती दीदी। विपिन बाबू क्या हैं मुझे नहीं मालूम, पर इतना जानती हूँ कि वे मनुष्य नहीं हैं। उन में मानवता होती तो वे तुम्हारे प्रेम को पहचान लेते। उसी विनष्ट प्यार को ले कर तुम बैठी रहोगी यह मुझे उचित नहीं लगता। जो विश्वास नहीं दे सका, सहारा नहीं दे सका उसे तुम ने प्यार किया था, यह मत कहो। प्यार विश्वास के सहारे जीता है, पनपता है। कौनसी पूँजी है तुम्हारे पास जिसे ले कर तुम कह सकोगी कि तुम ने योग्य व्यक्ति चुना था। तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर अतीत पर पर्दा डाल दो, इतना गहरा जो अभी उठ ही न सके।" फिर कुछ

हिचकते-हिचकते कहा, "जो कुछ आज तक हुआ है वह सब पर प्रकट है, जो होने वाला है वह भी मैं जानती हूँ। माँ यों ही बहुत टूट चुकी हैं उन्हें अब और मत दुखाओ दीदी।"

आशा रो पड़ी, "अच्छा मैं करूंगी पर तुझे वंचित करके नहीं। रमा के सिवा जिससे भी कहे मैं विवाह करने के लिए तैयार हूं।"

उषा म्लान मुख से हँस कर बोली, "रमा के सिवा और कोई इतना साहस कर सकता है मैं नहीं जानती दीदी। वह अपवादों के विरुद्ध सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकता है, इस का मुझे विश्वास है। कितना ही कठोर क्यों न हो पर मैं जानती हूं वह कायर नहीं है। असामान्य न हो कर भी वह सामान्य से ऊँचा है। मुझे तुम वंचित नहीं कर रही हो। यह तो मेरे लिए गर्व का विषय है। रमा इस परीक्षा में पूरा उतर जाय तो मैं समझूँगी कि स्थूल में न पा कर भी मैं ने सदा के लिए उसे पा लिया है।" आँसू रोकना उस के लिए उत्तरोत्तर कठिन होता जा था। वह उठ कर बाहर निकल आई। खूब जी भर कर रो लेने के बाद उस ने मुंह धो डाला। शान्ता देवी से जा कर बोली, "दीदी से मैंने कहा है माँ।"

शान्ता देवी ने खींच कर उसे छाती से लगा लिया। उषा की व्यथा वे समझती हैं लेकिन व्यथा ही तो सब कुछ नहीं है। वह यदि जरा सा भी त्याग न कर सकी तो क्या वे उसे उच्च कहेंगी। व्यथा होनी है तो होने दो। त्याग का सन्तोष तो अखण्डित धन है। उषा के सिर पर हाथ फिरा कर कहा, "तू ने मेरी लाज रक्खी। तेरा यह त्याग तेरे प्रेम से भी महान् है बेटी। जो प्रेम करता है वह ऊँचा नहीं है, जो अपने प्रिय को दूसरे के लिए अर्पण कर सकता है वह ऊँचा है। इतना कर सकी है तो अन्त तक अपने को निर्बल न पड़ने देना।"

"नहीं माँ।" माँ की छाती में मुख छिपाये हुए वह न जाने कहाँ चली गई। शांता से उस ने मन की एक भी बात कभी नहीं छिपाई, छिपा सकी ही नहीं थी। रमानाथ के लिए वह कभी नहीं भागी, उसका

प्यार मुखर नहीं था। शान्त भाव से उस ने रमानाथ को अपना मन अवश्य दिया था, इस से अधिक की कामना नहीं की। वह स्वयं उस की पकड़ाई में कभी नहीं आया पर उषा जानती थी उसकी भावनाओं से वह अनभिज्ञ नहीं था, अछूता वह रह नहीं सका था। उदासीनता से उपेक्षा प्रकट नहीं होती। प्रयत्न करके जो बल पूर्वक अपने को रूक्ष प्रकट करना चाहे उस के लिए वह क्या कहे।

छोटी सी बात थी। आभा के पैसे के पास रुपये फेंक कर जब रमानाथ बाहर जाने लगा तो सहसा ही उषा सामने आ गई। दबी हुई प्रसन्नता की दीप्ति क्षण भर के लिए रमानाथ के मुख पर चमक कर इस प्रकार विला गई जैसे पानी पर उठते ही बुलबुला फूट जाता है। उषा ने ठीक इसी पर चोट की थी, "हक भी नहीं लेना चाहते।"

रमानाथ ने अपने को आवश्यकता से अधिक कठोर बना कर कहा था, "हक की दृष्टि से आप ने ये रुपये मुझे दिये होते तो मुझे इन्कार नहीं था पर आप ने ये रुपये मेरी इज्जत को दाँव पर लगा कर दिये हैं। मानों आप मुझ पर एहसान करना चाहती हैं दान देना चाहती हैं और दान मैं नहीं लेता। पेट भरने लायक ताकत अभी इन बाजुओं में है। दान देने का इतना ही चाव है आप को तो यहाँ सैंकड़ों भिखमंगे आप को मिल जाएँगे। उन्हें ये रुपये दे कर अपनी तृप्ति कर लीजियेगा।"

इस क्रोध के परिणाम स्वरूप हुआ यह कि उषा खिलखिला कर हँस पड़ी थी और रमानाथ की जिव्हा ठोकर खा कर रुक गई थी। चुपचाप वह उस की ओर देखता ही रह गया था। कुछ देर बाद हँसी रुक जाने पर अपनी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों से उस की ओर देख कर उसने कहा था, "रुक क्यों गये, कहिये न। भला कहें या बुरा, आप के मुख से सुनने का लोभ छूटता नहीं है। क्रोधित हो कर ही बोलिये पर, दो क्षण के इस लोभ को नष्ट मत कीजिये।"

और तब रमानाथ हठात् ही विस्मृत सा हो कर बोल पड़ा था, "उषा!" परिचय की इस लम्बी अवधि में यह पहला अवसर था जब

उस ने उषा का नाम लिया था। उसके बाद वह आज तक उसकी आँखों के आगे नहीं आया था लेकिन नीरवता के क्षणों में जब कल्पना के चित्र विविध रंगों में भर कर उस की आँखों के आगे नाच उठते थे तब यही दो शब्द अपनी सम्पूर्ण मधुरता के साथ उसके कानों में झंकृत हो उठते और वह विभोर हो जाती। जाते-जाते वह अपने को उसके सामने जैसे निःस्व कर गया और उस ने अपने उसी चिर आकांक्षित को आज त्याग दिया। क्षण भर के लिए उसे लगा कि नष्ट स्वप्न की यह क्षत वेदना कदाचित् उससे सहन नहीं होगी लेकिन दूसरे ही पल वह सम्हल गई। जिसे दिया है वह उसी की बहन है, वही जिस का समाज में कोई स्थान नहीं है और जान बूझ कर जो सदा सब की घृणा का बोझ लिए घूमती रही है। माँ की छाती में मुख छिपाये हुए क्षीण स्वर में कहा, "कभी निर्बल पड़ जाऊँ तो मुझे तिरस्कृत मत करना माँ, अपना हाथ मेरे नीचे से मत खींच लेना अन्यथा मैं कभी उठ नहीं पाऊँगी।"

शान्ता देवी ने उसका मुख दोनों हाथों में दबा कर चूम लिया, कहा, "नहीं खींचूँगी उषा। तू ने आज जो दिया है उस देने का कोई सानी नहीं है। काश, रमा भी इस कसौटी पर खरा उतर सके।"

उषा भीगे स्वर में बोली, "मैं उसे निर्बल नहीं पड़ने दूँगी माँ। उसकी कमजोरी को मैं अपने प्यार से दृढ़ता में बदल दूँगी, बस तुम मेरे साथ रहना। तुम्हारी ममता को मैं कभी लज्जित नहीं होने दूँगी।"

"उषा।" शान्ता देवी की आँखों से आँसू टपक पड़े।

## पन्द्रहवाँ अध्याय

"देखो रमानाथ विरोध कभी चिरजीवी नहीं होता ? इसे तुम भी समझते हो और मैं भी। इसमें कोई सार नहीं है कि तुम मेरे विरुद्ध प्रचार करने की कोशिश करो। मैं भी सम्मानित व्यक्ति हूँ और चाहता हूँ तुम भी सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत करो।" तिवारीजी ने बंसी में आटा लपेटकर पानी में फेंका कि मछली फंस जाय लेकिन रमानाथ इतना सीधा नहीं था।

उनकी ओर देख कर व्यंग पूर्वक कहा, "आप चाहते हैं कि मैं भी आपके इस दल में शामिल होकर अपना उल्लू सीधा करता फिरूं। ऐसा धन और ऐसा सम्मान मुझे नहीं चाहिये।"

तिवारीजी कठोर होकर बोले, "इसका परिणाम ठीक नहीं होगा रमानाथ ,आशा करता हूँ मेरा अर्थ तुम समझ गये होगे।"

"न सही मैं उससे नहीं डरता। इस बात को जीवन भर नहीं भूल सकता कि आपके कारण मुझे अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी और आपके कारण मेरी मरती हुई मां को दवा की एक बूंद भी नहीं मिल सकी थी। भय दिखाने पर भी आप मुझे दवा नहीं सकेंगे। आपके इस नकली आवरण को मैं फाड़कर रख दूँगा। देखना है मुझे आप कहां तक हम लोगों को इस प्रकार दबाते हुए हमारे सिर पर बैठे रहते हैं। आपके जैसे नेता आज पैदा होने पर कल मर भी जाया करते हैं।"

तिवारीजी ने इतना अपमान कभी सहन नहीं किया था। उनका मुख लाल हो गया पर करते क्या। रमानाथ उनके विरुद्ध इतने सूत्र इकट्ठे कर चुका था कि एक के भी प्रकट होने पर उनकी बची खुची लजा भी नष्ट हो सकती थी। अपने को संयत कर उन्होंने एक जाल और फेंका। जेब से नोटों की एक गड्डी निकाल कर उन्होंने उसके सामने रखदी, कहा, "मैं आज तुमसे विरोध नहीं सुलह करने आया हूँ। तुम्हें आवश्यकता है और मेरे पास आवश्यकता से अधिक है।"

रमानाथ ने नोटों को छुआ नहीं कहा, "उस दिन यह दया कहाँ गई थी जिस दिन मैं खाली हाथों मात्र अपमान का स्मरण लेकर आपके यहाँ से चला गया था। मुझे बहकाने का प्रयत्न मत कीजिये। सेठ लाल और जीप कारों का आपका प्रपञ्च जब जनता के सामने आएगा तो आपका यह चेहरा खिसक पड़ेगा और लोग देखेंगे आप हैं भूतपूर्व वित्तमंत्री, जिन्होंने लाखों रुपया इधर से उधर किया है, धन और सत्ता के लोभ के पीछे अपनी मर्यादा तक को भुला दिया है। देखने दीजिये सब को कि ये हैं देश के कर्णधार जनता के प्रतिनिधि महामाननीय श्री हृदयनाथ तिवारी।"

सेठ लाल और जीप कार का नाम सुनते ही तिवारीजी का मुँह फक पड़ गया। विरोध का स्वर मुख से नहीं फूटा। रमानाथ के मुख पर फैली क्रूर हंसी की ओर देखकर एक बार तो उनका मन हुआ किसी प्रकार उसे मनालें पर जब यह देखा कि सामने पड़ी नोटों की गड्डी को उसने दूर हटा दिया है तो वे हताश होकर बोले, "तो तुम नहीं मानोगे ?"

रमानाथ हंसकर बोला, "चिन्ता न कीजिये। आपके श्री मुख के चित्र के साथ आपका वास्तविक चित्र जनता के आगे प्रकट होने ही वाला है।"

तिवारीजी ने अन्तिम पासा फेंका, "सबूत के नाम तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है रमानाथ, बेकार में तुम फंस जाओगे। इससे तो अच्छा है मेरा प्रस्ताव मानलो। देखो उषा तुम्हें पसन्द करती है और सुन्दर है। मैं उसका हाथ तुम्हें पकड़ा दूंगा।"

रमानाथ स्वर में असीम घृणा का भाव भरकर बोला, "शर्म आनी चाहिये आपको इस प्रस्ताव पर कि अपने स्वार्थ के लिये आप अपनी लड़की तक को एक अनजाने व्यक्ति को सौंपने के लिये तैयार हो गये। मुझे नहीं चाहिये उषा, नहीं चाहता मैं आपका साथ और नहीं चाहता सम्मान, पद, प्रतिष्ठा। सबूत की बात कहते हैं? यह है सबूत।" कहकर रमानाथ ने एक कागज तिवारीजी के सामने कर दिया जिसमें तीन जीप कारों की बिक्री के साथ हृदयनाथ तिवारी के नाम के एक पांच हजार के चैक की नकल थी और उसके नीचे उनके हस्ताक्षर थे। कागज देखते ही उनके ललाट पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आयीं। उसके बाद वे पल भर के लिये भी वहाँ नहीं ठहरे, फर्म से निकल कर सीधे बाहर आकर कार में बैठे ही थे कि दास ने अपनी कार उनकी कार के बगल में लाकर खड़ी करदी। खिड़की से मुख निकाल कर कहा, "हलो तिवारी कहाँ जा रहे हो। ठहरोगे नहीं?"

तिवारीजी ने ललाट का पसीना पोंछ कर हंसने का प्रयत्न करते हुए कहा, "आज मेल से दिल्ली जा रहा हूँ। समय नहीं है भाई, क्षमा करना," कहकर उन्होंने दास के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कार आगे बढ़ा दी।

उषा कालेज जा चुकी थी। किवाड़ खोलकर अन्दर घुसते ही शान्ता-देवी सामने पड़ गयीं। उस दिन की मार के निशान उनके शरीर पर स्पष्ट थे। तिवारीजी ने देखकर भी नहीं देखा। पत्नी का मूल्य उन्होंने कभी नहीं समझा, जहाँ तक प्रश्न सामाजिक सहयोग का था उन्होंने कभी इस सम्बन्ध में पत्नी की आवश्यकता अनुभव नहीं की। अंग्रेजों के काल में उन्होंने उनके तलवे चाटकर अपने लिये सत्ता और धन बटोरा और स्वतंत्रता के पश्चात् देश भक्ति के नारे बुलन्द करके अपने लिये राह निकाल ली। चुनाव जीतने के लिये योग्यता की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है भरी जेब की जो जनता का मत खरीद सके। पैसा एक बार ही तो लुटाना पड़ता है। सत्ता मिल जाने के बाद लुटाये हुए पैसे

को बटोरने में कितना समय लगता है। तिवारीजी ही क्यों अपना अवसर आने पर कोई किसी को नहीं छोड़ देता। बड़े बड़े बंगले, कारें, सुख के ये साधन आते कहां से हैं, उसी जनता की जेब से जिसके जनार्दन बनकर ये लोग देश की बागडोर अपने हाथ में लिये बैठे हैं। शासन उनके हाथ में है, सत्ता उनके हाथ में है। धीरे-धीरे करके ही महल खड़ा होता है। नींव दृढ़ है अथवा निर्बल इसकी चिन्ता क्यों की जाय, भविष्य की कटु कल्पनाओं से वर्तमान की सुखद अनुभूतियों पर पर्दा क्यों डाला जाय। रमानाथ के विचार को बलपूर्वक मन से निकाल कर उन्होंने शान्ता देवी से कहा, "मैं दिल्ली जा रहा हूं। मेरा अटैची और बेडिंग तैयार कर देना।"

मन न जाने क्यों इतना कोमल होता है कि अत्याचार सह कर भी कठोर नहीं रह पाता। तिवारी जी ने सिवा अपमान और अत्याचार के शान्ता देवी को आज तक कुछ भी नहीं दिया, उस दिन की मार की पीड़ा आज भी होती है। मन में आक्रोश नहीं था या वितृष्णा नहीं थी सो बात नहीं, लेकिन अपनी खींची हुई लकीर से वे फिर भी आगे नहीं बढ़ीं। पति परमेश्वर है इस धारणा को लेकर उन्होंने विवाहित जीवन के लम्बे पच्चीस वर्ष निकाल दिये थे और आज वे चालीस के करीब आ चुकी हैं। इतनी लम्बी अवधि के बाद विद्रोह करतीं तो क्या संसार हंसता नहीं ? 'कल क्या होगा ?' अपने लिए यह भय उन्हें नहीं था। भारतीय नारी के संस्कारों को उन्होंने जी-जान से अपनी छाती से चिपटा रखा था। सोचा कुछ नहीं पूछेंगी पर जब रहा नहीं गया तो धीरे से कहा, "कोई जरूरी काम है क्या ? कब तक लौटेंगे ?"

तिवारी जी वैसे ही चिन्तित थे, इस अचिन्तनीय प्रश्न से और भी चिढ़कर बोले "तुम्हें इससे क्या मतलब है। काम के बिना क्या मनुष्य कहीं जाता नहीं है और हर बात को तुम्हें बता देना क्या आवश्यक है ? मैं भौंसले के यहाँ जा रहा हूं मेरा समान वहीं पहुँचा देना," कहकर वे उतरने लगे कि शान्ता देवी धीरे से बोलीं, "खायेंगे नहीं ?"

"नहीं ।"

शान्ता देवी ने उनकी ओर देख कर तुरन्त ही नेत्र झुका लिए । पता नहीं क्यों इस दृष्टि की उपेक्षा तिवारी जी से नहीं हो सकी, वे लौटकर कुर्सी पर आकर बैठ गये । बोले, "अच्छी बात है खाऊँगा ।"

जब तक तिवारी जी खाते रहे शान्ता देवी एकटक उनकी ओर ताकती रहीं । एक गहरी सांस भर कर उन्होंने मन ही मन सोचा, इस व्यक्ति से उन्होंने कभी प्यार नहीं किया । मन को टटोला नहीं इसी कारण पीड़ा कभी अनुभव नहीं हुई अन्यथा वे मर जाती । स्ने विहीन सम्बन्ध का बोझ भी कितनी बड़ी विडम्बना है ।

तिवारी जी के जाने के बाद उन्होंने उनकी जूठी थाली उठाकर मेज साफ की और आशा को पुकारा, "खाना खा ले आशा ।"

भीगे बालों पर तौलिया लपेटे हुए आशा पास आकर खड़ी हो गई, पैर से साड़ी को नीचे खींचती हुई बोली, "तुम नहीं खाओगी ?"

शान्ता देवी ने सूखी हंसी हंसकर कहा, "नहीं खाने से बनेगा कैसे । जा दो थाली लगा ला ।"

आशा के अपटु हाथों द्वारा परोसी हुई विशृंखल थाली की ओर देख कर शान्ता देवी सहसा हंस पड़ी, बोलीं, "कल ब्याह होगा, लोग क्या कहेंगे कि इतनी बड़ी लड़की को थाली परोसना भी नहीं आता ।"

आशा मुँह बनाकर बोली "तुम्हें नहीं पकड़ ले जाऊँगी मैं ?

"मैं क्यों जाने लगी । ऐसा ही है तो सीख क्यों नहीं लेती सब । देख बेटी, लड़की की शोभा घर में ही होती है । बाहर रहकर भी उसे घर नहीं भूलना चाहिये अन्यथा बाद में पछताना पड़ता है । गृहस्थी के सुख से बढ़कर कोई दूसरा सुख नहीं है । मेरी इस बात पर तू सोचना आशा ।"

आशा क्षण भर चुप रही फिर बोली"मैं विवाह नहीं करना चाहती मां ।"

"क्यों ?"

आशा ने मुख झुकाकर कहा, "रमा उषा के लिए क्या है, यह तुम भी जानती हो और मैं भी। उसे मैं उससे छीन कैसे लूँगी। मां यह मुझसे नहीं होगा।"

शान्ता देवी ने स्वर को सहज बनाकर कहा, "प्राप्ति से त्याग महान है आशा, मनुष्य दुर्बल अवश्य होता है लेकिन उस दुर्बलता पर वह यदि विजय प्राप्त करले तो बता जीवन में सन्तोष का कितना बड़ा धन उसे मिल जाएगा। तू यह मत सोचना कि मैं तुझे कमजोर कह रही हूँ पर इसके सिवा दूसरा और कोई उपाय जो नहीं है। विवाह करके तू इस जंजाल से निकल जा, जहाँ तेरे पापा की छाया भी नहीं पहुंच सके। जीवन में अकेले विद्रोह नहीं होता, एक दृढ़ साथी के बिना संघर्ष नहीं कर पाते हम।"

"उषा का क्या होगा मां।"

"अपनी राह तू उसे अपने आप खोजने दे। प्यार करके विवाह करना ही जीवन का चरम नहीं होता। करने के लिए और भी बहुत-सी चीजें हैं। उसने आज तक अपने को सभी प्रलोभनों से बचाया है, आगे भी बचा सकती है स्वभाव एक-सा नहीं होता आशा, इसी कारण मैं तेरा विवाह कर देना चाहती हूँ।"

दुखी मन से आशा ने पूछा 'तुम क्या अब भी मेरा विश्वास नहीं करतीं मां ?"

उसे पास खींचकर शान्ता देवी ने कहा—"विश्वास का प्रमाण तूने ही दिया है आशा, अन्यथा इतने दिन की संचित घृणा इस जीवन में दूर नहीं होती। तुझ पर विश्वास करती हूँ पर तेरे पर पापा पर नहीं। वे जब चाहें तब तुझे उसी पंक में घसीट ले जाएंगे और तू कुछ भी नहीं कर सकेगी। इस राह को एकदम ही बन्द करदे।'

"मुझे सोचने दो मां," कहकर आशा वहाँ से चली गई। शान्ता देवी ने मुख से कहा अवश्य था कि वे उस पर विश्वास करती हैं लेकिन वह जानतीं थीं कि वे मिथ्या कह रही हैं। वे यदि उस पर विश्वास नहीं

कर पाती तो उनका दोष भी क्या है। विश्वास करने के सारे रास्ते उसने अपने हाथों ही बन्द किये थे। वे यदि यही चाहती है कि वह विवाह कर ले तो वह ना नहीं करेगी पर मन उसका बार-बार उखड़ क्यों जाता है। विवाह वह वास्तव में नही करना चाहती। क्या होगा उससे। मन मे घुमड़ती अशान्ति तो इससे भी नहीं मिटेगी। मन को स्थिर किये बिना विवाह करना क्या दूसरे पक्ष के साथ अन्याय नही होगा ? वह क्या सचमुच रमानाथ को अपना एकान्त प्रेम दे सकेगी ? कदाचित नहीं, वह उसका नहीं उषा का है, यह भावना वह कभी अपने मन से नहीं निकाल पायेगी और वह जो उसे पसन्द नहीं करता, वह क्यों उससे विवाह करना चाहेगा। विवाह तो क्या वह उससे मित्रता भी नहीं करना चाहेगा। मनुष्य के आन्तरिक भाव छिपते नहीं। वह भी उससे छिपा नहीं सकेगी कि उसने उसे पति रूप में कभी नही पाना चाहा था। स्त्री जिसे जीवन साथी के रूप में पाना चाहती है उसके साथ छिछला व्यवहार कभी नहीं करती। रमानाथ के साथ उसने वही घृणित व्यवहार किया था। उस लज्जा से बच कर वह कहाँ जाय।

खट का शब्द करते हुए पांच छह पत्र जाली में से नीचे आ पड़े। आशा ने हाथ बढ़ा कर उन्हें उठा लिया। उसका स्मरण करके पत्र लिखने वाला था ही कौन। उषा के नाम का एक पत्र था भारी सा। उलट-पुलट कर देखा, लिखावट को पहचानने का कोई उपाय नहीं था। मन की उत्सुकता को मन ही में दबाकर उसने लिफाफा उठाकर रख दिया। दो तीन दैनिक अखबार थे और एक तिवारी जी के नाम किसी कंपनी का आया हुआ अन्तर्देशीय पत्र।

न कोई काम है न कहीं जाने की इच्छा, मन आखिर लगे तो कैसे। इतनी अकेली रहकर वह कैसे समय काटे। घर का काम करने की इच्छा होती अवश्य है पर वह हो नहीं पाता और पढ़ने में मन नहीं लगता। पढ़ने का समय पहले खोजने पर भी नहीं मिलता था, अब समय है तो पढ़ने की इच्छा नहीं होती। कितनी विडम्बना है। जिस समय के लिये

वह पहले फड़फड़ाती थी वह अब उससे व्यतीत होना नहीं चाहता। चारों ओर से विरक्त होकर वह सचमुच ही बिल्कुल अकेली पड़ गई है। हठात् वह व्यस्त सी होकर उठ बैठी। मां सो रही हैं, एक बार क्लब हो आये तो कैसा रहेगा। और कुछ नहीं होगा मन तो बहल जाएगा और शायद विपिन, विपिन भी आये। इस लुका-छिपी की लज्जा को बलपूर्वक दबाकर वह जैसे बैठी थी वैसे ही उठ कर नीचे उतर गई।

स्टाप पर उसे बस के लिये अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। इतने दिन बाद बाहर आने पर लगा जैसे वह भरपूर वायु में सांस ले रही है। घर में कितना घुटा-घुटा लगता है। जिस रंगीनी में उसने जीवन के इतने वर्ष व्यतीत किये थे वह उसे जैसे खींचने लगी। क्लब, सोसायटी, कृत्रिम जीवन होकर भी उस जीवन में इतनी मादकता है जो मन को बांध लेती है। उसी मादकता की प्राप्ति के लिये वह उत्सुक हो उठी। वे साथी, वह रंगीनी और वह चमक दमक। आशा की आंखें खिल गयीं। यह जीवन ही उसके लिये अधिक स्वाभाविक है सोचकर उसने सुख की गहरी सांस खींची। हठात् मां का मुख उसके नेत्रों में उभर आया। उसके आनन्द की दीप्ति क्षण भर में बुझ गई। जिस चमक-दमक और प्रलोभन से मां उसे बचाना चाहती थीं उसी की ओर वह फिर बढ़ आई, उस प्यासे व्यक्ति के समान जो सूर्य के प्रकाश में झिल-मिलाती रेत को पानी समझ कर व्यग्र-सा आगे बढ़ता है और जब पास पहुंचता है तो उसे मिलता क्या है? व्यग्र पगों की थकान और अतृप्त प्यास की निराशा। फिर भी तो मनुष्य का मरीचिका के पीछे भटकना नहीं छूटता। मन की प्रवृत्तियां रंगीनी की ओर जिस वेग से हमें खींचतीं हैं उसका शतांश लेकर भी हम सत्यता के पीछे जा सकते तो उन दुष्परिणामों से बच सकते थे जिनका वेग एक दिन हमारा 'सम्पूर्ण' नष्ट कर जाता है। असंभव की आकांक्षा और कृत्रिमता का आकर्षण ही तो हमारा स्वरूप है, वही हमारा स्वरूप है, वही हमारा प्राप्य है और वही सत्य।

'मां,' और आशा छटपटाती हुई राह ही में बस से उतर पड़ी।

घर के आगे पहुँचते ही वह टैक्सी से उतर पड़ी और एक प्रकार से भागती हुई ही सीढ़ियां चढ़ती गई। किवाड़ खुलते ही वह आंखें बन्द कर कोच पर जा पड़ी।

किवाड़ उषा ने खोला था। मुख पीला-सा था लेकिन स्वर में कोई निर्बलता नहीं थी। वह चुपचाप आशा की ओर देखने लगी और जब वह शान्त हो गई तो पूछा, "क्या हुआ दीदी ?"

"मैं बहुत कमजोर हूं उषा। कितनी अस्थिर, कितनी चंचल है मेरी प्रकृति। मां मुझ पर अविश्वास करके उचित ही कर रही हैं। तुम दोनों को वचन देकर भी आज मैं फिर उसी जीवन की ओर भागी थी। इतने दिन का स्वभाव छूटता नहीं उषा।" आशा की आंखों से आंसू झर पड़े।

उषा कुछ समझ नहीं सकी। आशा का हाथ दबाकर बोली, "हुआ क्या है।"

"मैं अभी तक भी अपने को विवाह के लिये तैयार नहीं कर पाई हूँ उषा। जब यह सोचती हूँ कि रमा मेरा स्वामी बनेगा तभी मेरा मन न जाने क्यों हिचक जाता है, यद्यपि जानती हूँ उसके सिवा और कोई मेरे लिये अपना हाथ नहीं बढ़ा सकेगा, मेरे चारों ओर का कीचड़ नहीं समेट पाएगा पर मन तो मानता नहीं। उसकी घृणा का भार मैं कैसे ढोऊँगी। उषा मैं क्या करूँ, रमा के लिये अपने को कैसे तैयार करूँ। उससे मैं स्नेह कर सकती हूँ लेकिन पत्नी का प्रेम नहीं दे सकती।"

उषा ने उसके हाथ की उंगलियों से खेलते हुए कहा, "न चाहने पर भी संसार के बहुत से काम करने पड़ते हैं दीदी। मन को इतना भी स्थिर नहीं कर सकोगी तो मां क्या कहेंगी। तुम अपने को स्थिर बनाओ, मैं रमा से मिलूँगी।" कह कर वह चुप हो रही। अभी तक उसने बहुत साहस से काम लिया था। बिना रमानाथ से पूछे आशा और शान्तादेवी को इतना बड़ा विश्वास दे डाला था। वह बाध्य नहीं था उसकी बात मानने के लिये। वह उसके विश्वास को तोड़ दे तो ? आशा से विवाह

करके उसे सिवा लांछना और आलोचना के कुछ नहीं मिलेगा फिर क्यों वह उससे विवाह करना चाहेगा। वह भी तो ऐसी ही संगिनी की कामना करता होगा जो उसके स्तर की हो जिसे लेकर वह अपने मन में गर्व अनुभव कर सकता हो। इस कामना का वह विसर्जन नहीं करना चाहेगा तो वह क्या उसे लांछित करेगी? कायर कहेगी? स्वार्थ उसका अपना है रमानाथ का नहीं और इतना निस्वार्थी कोई नहीं होता, जो दूसरे को उबारने के लिये स्वयं दलदल में फंसे। मनुष्य अपनी उन्नति चाहता है, शरीर से भी और मन से भी। अपना स्वतंत्र अस्तित्व चाहता है और चाहता है नाम। सृष्टि के अन्त तक इस क्रम में व्यतिक्रम नहीं होगा। वासना और मोह के इस दायरे से जो ऊंचे उठ जाते हैं वे उंगलियों पर गिने जा सकते हैं और उन्हीं को हम देवता कहते हैं। मनुष्य होकर भी जो उसकी निर्बलता को जीत ले वही तो देवता है। देवता अदृष्य कल्पना है। ऊंचा उठने का प्रयत्न मनुष्य करता है। देवता में प्राप्य से ऊपर प्राप्त करने का उत्साह नहीं होता, कर्मण्यता भी नहीं होती। उसका चरम उनके प्रस्थापित देवत्व तक है और मनुष्य का प्रयत्न देवत्व की पराकाष्ठा तक पहुँचता है जहाँ तक पहुँचना सरल नहीं है। रमानाथ देवता नहीं है मानवता का पुजारी भी है, वह नहीं माना तो!

आशा भीगे स्वर में बोली, "मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ जहां यह समाज न हो, पापा न हों और मेरे मन की यह कसक न हो। इस वायु में मुझ से सांस नहीं लिया जाता। राग रंग और साधारणतः दोनों मुझे खींचते हैं पर मैं निर्णय नहीं कर पाती। मुझे सही रास्ता दिखाई नहीं देता। कौन मेरी यह निदारुण समस्या सुलझा देगा उषा।"

इस प्रश्न का उत्तर उषा के पास नहीं था। वह आशा के हाथ को अपने हाथ में लेकर बैठी रही। समस्या का समाधान एक निश्चित क्रम बना कर तो किया नहीं जा सकता। वह क्या कहे।

बहुत देर तक वैसे ही बैठे रहकर आशा ने निश्वास भरकर कहा, "तेरा एक पत्र आया था।"

"हाँ, मैंने देख लिया है।"

"किसका है ?"

"रणजीत ने लिखा है काश्मीर से। पढ़ोगी ?"

"हाँ. दे।"

उषा ने शैल्फ के नीचे दबा हुआ पत्र आशा के फैले हुए हाथ पर रखकर कहा, "पढ़ देखो। उस पर अविचार हो गया है, यह तो समझ में आता है पर उसके प्रतिकार की राह सुझाई नहीं देती। उसे जैसा समझा था वैसा वह नहीं था दीदी, और ईश्वर जानता है इस अविचार का दुःख मरने पर भी दूर नहीं होगा। इस जीवन में अब उससे भेंट होगी यह नहीं कहा जा सकता, हो जाती तो अच्छा होता। मनुष्य का वाह्य कभी-कभी धोखा दे जाता है। चाहो तो इसका उत्तर दे देना।" कह कर वह चली गई।

आशा ने पत्र खोल कर आँखों के सामने फैला लिया। इधर-उधर की बातों के बाद रणजीत ने लिखा था, आपने मुझे जो समझा है उसके लिए कभी शिकायत नहीं करूँगा पर इतना आज कह लेने दीजिये कि उस दिन मैं आप के मन की धारणा को परिवर्तित करने के लिए ही आया था। मनुष्य कमजोर होता है। मैं बहुत ही निर्बल हूँ। आपको मैंने जिस दृष्टि से देखा था उसमें पाप नहीं था। पवित्रता का दम्भ मैं नहीं करूँगा। जीवन में जो कुछ करता रहा हूँ उसे देखते हुए इस पूँजी को मैं कभी का लुटा चुका हूँ, पर आपके पास मैं अपने अतीत को मिटा कर आया था, इस आशा से शायद आप मुझे समझ सकें, मुझे राह पर ला सकें। कान्ता ने एक दिन पूछा था मुझसे कि मैं अपने को सब की दृष्टि में गिराता क्यों हूँ। मैंने कहा था कि मैं शूरवीर हूँ, बदनामी से नहीं डरता। सच में ही बदनामी से मुझे भय नहीं लगता। इसका दर्शन मैंने पहले पहल उस दिन अनुभव किया था जब मैं अपनी भावनाओं को आप के सामने खोल नहीं सका था और आपके यहाँ से उठकर भाग

आया था। एक लम्बा समय हो चुका है उसे, पर लगता है जैसे कल की ही बात हो और उसी कारण आज मैं सम्पूर्ण हृदय से आपसे क्षमा मांग रहा हूँ। जो हुआ है उसके लिए दोषी मैं ही हूं, यह मानता हूँ पर जानती हैं आप सभी तो इतने सशक्त नहीं होते, रमा के जैसे नहीं होते। इस जीवन में आपके सामने नहीं आऊँगा, अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर सका तो एक दिन स्वयं आकर आपसे क्षमा ले जाऊँगा अन्यथा विदा चाहता हूँ। कामना करता हूँ जीवन में आप सदा सुखी रहें। कोई बाधा, कोई प्रलोभन आपको झुका नहीं सके।

आशा पत्र का एक-एक शब्द जैसे पी रही थी।

## सोलहवाँ अध्याय

उस दिन के बाद रमानाथ और कान्ता में सिवा व्यावहारिक बात के और कोई बात नहीं हुई। न कान्ता ने रमानाथ से पूछा कि उसने रुपयों का क्या किया और न उसने ही कुछ कहा। रमानाथ का मन उस दिन की घटनाओं के जाल में उलझा हुआ भटक रहा था जब उसने असीम घृणा से आशा के पैरों के पास रुपये फेंक दिये थे तो वह उस घृणा की प्रतिक्रिया स्वरूप मात्र हँस दी थी जैसे कोई वृद्ध बालक के क्रोध को देख कर मधुर भाव से हँस पड़ता है। उसकी यह हँसी रमानाथ को बहुत चुभी। हम जिस पर आक्रोश प्रकट करते हैं उस पर यदि उस आक्रोश का कोई प्रभाव नहीं होता तो लगता है हमारा क्रोध हमीं पर आकर गिर गया है। मन तिलमिला जाता है और जी चाहता है विपक्षी को कुचल कर रख दें। इस वितृष्णा को प्रकट करने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता तो क्रोध अन्दर ही अन्दर सिर धुन कर रह जाता है। आशा की वह सरल हंसी उसके तिरस्कृत रूप में घूम रही थी और अपनी उपाय विहीनता से वह मन ही मन कुढ़ रहा था।

कान्ता ने थाली परोस कर रमानाथ के सामने रख दी, मुख से कुछ न कह कर वह चली गई। रमानाथ ने उसकी ओर देखा भी नहीं था। बहुत प्रयत्न किया कि आँसू न आयें पर उन्हें वह रोक नहीं सकी और

चौके में जाते ही रो पड़ी। मानव मन कितना शीघ्र परिवर्तित हो जाता है। रमानाथ के जिस स्नेह पर उसे गर्व था, इतने दुःख और कष्टों में भी जिस स्नेह को उसने नहीं खोया था, वही इतने छोटे से कारण से नष्ट हो गया। उसके पीछे रमानाथ ने क्या नहीं किया था, अपनी जीवन की सबसे प्रिय आकाँक्षा तक का बलिदान कर दिया था। वह स्नेह गया कहां। वास्तविक प्यार क्या इतने छोटे से कारण से नष्ट हो जाता है? कान्ता घुटनों के बीच मुख छिपाये धीरे-धीरे रोती रही। कुछ देर रो लेने से जब मन कुछ शान्त हो गया तो उसने पानी से मुँह धो डाला। बिना दोष के यदि वह उसे दूर हटा देना चाहता है तो हटादे, वह क्यों शिकायत करे, विरोध करे। कंगाल के समान वह उसका स्नेह पाने के लिए छीना झपटी नहीं कर सकती।

रतिनाथ ने आकर कहा, "दादा बुला रहे हैं।"

कान्ता के मन में अभिमान जागृत हो गया। इतने दिन जब उसने नहीं बुलाया तो आज ही कौन-सा काम आ पड़ा है। नीरस भाव से कह दिया, "कह दे, काम कर रही हूँ।" लेकिन कहने के एकदम पश्चात् ही डर गई। रति को रोकना चाहा, रोक नहीं पाई। उसका मुख ही नहीं खुला। उसके जाने की दिशा में वह आँखें फाड़े देखती रही। दादा के बुलाने पर वह नहीं गई। हे भगवान् न जाने क्या करेगा वह अब। देख रही थी इन दिनों रमानाथ बड़ा उद्विग्न-सा खोया-खोया-सा रहता था और उसकी इस स्थिति को देखते हुए भी उसने आज उसका अपमान कर दिया, उपेक्षा कर दी लेकिन उसने उसे पहले क्यों नहीं बुलाया। ऐसा उसने किया क्या था जो वह इतना नाराज हो गया। डर नहीं पड़ा है उसका, और क्या करेगा नहीं न बोलेगा, तो न बोले। इतने दिन ही जब बिना बोले कट गये तो आगे के भी कट जाएँगे और तब मारे भय और क्रोध के वह उफन कर रोने लगी।

रमानाथ चुपके से आया। पल भर खड़ा होकर देखता रहा फिर धीरे से कान्ता के पास बैठ कर उसे अपनी ओर खींचता हुआ बोला,

"बोलती क्यों नहीं, इतनी नाराज है मुझसे कि सूरत भी नहीं देखना चाहती ?"

कान्ता रोती हुई चिढ़ कर बोली, "हाँ, नहीं देखना चाहती। तुम मत आओ मेरे पास।"

रमानाथ का मुख फीका तो पड़ गया लेकिन वह हँसकर बोला, "क्यों ऐसा क्या कर दिया है मैंने ?"

कान्ता ने इस बार मुख उठाकर रमानाथ के सूखी हँसी से फैले मुख को देखा और दूसरे ही पल अपने को उससे छुड़ाकर बोली, "तुम क्यों नहीं बोले मुझसे इतने दिन तक, क्या रुपये मैंने अपने मन से लिये थे ? दीदी जबरदस्ती फेंक गई तो मैं क्या करती, और तुमने चट से कह दिया कि मैं तुम्हारा अपमान करवाना चाहती हूँ। अपमान ही करवाया है तो अब बोलते क्यों हो ?" कहते-कहते वह फूट-फूट कर रोने लगी।

रमानाथ क्या कहे ? सच में कान्ता ने तो कुछ किया नहीं था लेकिन वह उसे यह भी अब कैसे समझाये कि उसने जान बूझकर उससे बोलना नहीं छोड़ा था वरन् अपनी अन्यमनस्कता में उसे यह ध्यान ही नहीं आया था कि वह उसके प्रति कुछ अन्याय कर रहा है। कान्ता नहीं बोली, उसे भी बोलने का ध्यान नहीं आया। तिवारी जी और आशा, उषा में लिपटकर उसका मन इतना निरुपाय-सा हो गया था कि वह न कुछ सोच ही पाता था, न कर ही सकता था। तिवारी जी के प्रति उसके मन में इतना आक्रोश इकट्ठा हो चुका था कि बिना बाहर निकले वह अपने को हल्का नहीं कर सकता था। बहुत सोचा था। जब यह समझ में आया कि मात्र सोचने से ही कोई कार्य नहीं हो जाता तो वह हताश-सा होकर बैठा रहा और तब उसे स्मरण आई कान्ता। इस असंतुलित मनःस्थिति के लिये वह स्वयं भी तो दोषी नहीं था, कहा, "भूल हो गई कान्ता। भूल सभी से हो जाती है सो क्या उसके लिये तू मुझे क्षमा नहीं करेगी ?"

"नहीं, नहीं, नहीं करूँगी।"

"अच्छा, क्षमा नहीं करना चाहती तो दंड दे ले ताकि मुझे अपनी मूर्खता का ज्ञान तो हो जाये।"

कान्ता ने खीझकर रमानाथ को ठेल दिया, "दंड देने वाली मैं कौन होती हूँ। ओह, जरा-सी बात के पीछे मुझसे बोलना तक छोड़ दिया जैसे मैं तुम्हारी दुश्मन हूँ। माँ नहीं हैं इसी कारण तुम मुझे इतना दुःख देते हो, वे होतीं तो देखती कैसे तुम मुझे दुखाते।" कहने के साथ ही उसने रमानाथ की ओर देखा और सूख कर काठ हो गई। रमानाथ का मुख राख के समान निस्तेज हो गया था। मारे भय के कान्ता की आँखों के आँसू पल भर में सूख गये, काँपते-काँपते कहा, "अब, कभी नहीं कहूँगी दादा, कभी नहीं कहूँगी।"

रमानाथ कुछ नहीं बोला। पाषाण मूर्ति के समान स्तब्ध-सा एक रस भाव से बैठा रहा। घबराकर कान्ता ने, उसे झंझोड़ दिया, "दादा, बोलते क्यों नहीं। तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ ऐसे मत देखो। कसम खाती हूँ, अब कभी ऐसी बात नहीं कहूँगी, दादा।" इस पर भी जब रमानाथ के मुख पर कोई भाव दिखाई नहीं दिया तो वह उसकी ओर देख कर रोने लगी।

रतिनाथ अभी तक चुप खड़ा इन दोनों की ओर देख रहा था। बात उसकी समझ में नहीं आई थी। कान्ता को रोते देखकर वह भी रोने लगा। रमानाथ ने साँस भरकर उसे निकाल दिया। कान्ता की बात कितनी कठोर थी। इससे बड़ा दुःख तो उसे कोई भी नहीं दे सकता था। जिसके लिये इतना किया वही उस पर विश्वास नहीं करती। उसकी आँखों में आँसू आते नहीं थे लेकिन आज वह अपने को नहीं रोक पाया। टप्-टप् करके उसकी आँखों से आँसू गिर पड़े, आस्तीन के छोर से उन्हें पोंछता हुआ बोला, "भाग्य की भी कैसी विडम्बना है कान्ता, कि जिससे भी मिलता है अविश्वास ही मिलता है। लोगों की मैंने कभी चिन्ता नहीं की। जानता हूँ सभी को प्रसन्न करना असम्भव है लेकिन तू मेरे लिये ऐसा कहेगी, यह तो कभी नहीं सोचा था। मैं इतना नीच हूँ कान्ता कि

माँ नहीं हैं इस कारण तुझ पर अत्याचार कर रहा हूँ। यही मिला है तुझे अभी तक ?"

कान्ता ने दोनों हाथ जोड़ लिये, सिसकते-सिसकते कहा, "अब नहीं कहूँगी दादा। इस बार माफ कर दो।"

रतिनाथ ने कान्ता की देखा-देखी रोते हुए कहा, "माफ कर दो दादा, दीदी अब कभी ऐसी बात नहीं कहेंगी।" कहकर उसने रमानाथ के पैर छू लिये। ऐसा वह कभी करता नहीं था, इस कारण रमानाथ विस्मय में पड़कर बोला, "पैर क्यों छुए रे ?"

रतिनाथ धीरे से बोला "एक किताब में पढ़ा था दादा कि पैर छू लेने के बाद बड़ों का क्रोध शान्त हो जाता है।"

दुःख का बादल जैसे छंट गया। रमानाथ सहज भाव से हँस पड़ा और रतिनाथ को अपनी ओर खींच कर बोला, "क्रोध शान्त करने का नुस्खा तूने खूब खोज निकाला है। आदत कर ले कान्ता कभी काम आएगा।"

रमानाथ शान्त हो गया है यह देखकर कान्ता ने तृप्ति की गहरी साँस लेकर कहा, "चिन्ता न करो अब से याद रखूँगी लेकिन पहले यह बता दो तुम अब नाराज तो नहीं हो न, नहीं तो मुझे भी रति की तरह पैर छूने पड़ेंगे।"

"सो तो पड़ेंगे ही, छू," कहकर रमानाथ ने पैर आगे बढ़ा दिया।

अंगूठा दिखाकर कान्ता पीछे खिसक गई, मुँह बनाकर बोली, "पैर छुए मेरी बला। अपनी बीवी को दिखाना ये सब नखरे।"

रति हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। रमानाथ ने कान्ता की चोटी जोर से खींचकर कहा, "फिर से तो कह ?"

कान्ता चीखते हुए बोली, "हाय रे तोड़ डाले मेरे बाल। छोड़ो मेरी चोटी।"

"उँहूँ, बीवी लानी है न तुझे, पहले वह ला दे तब छोड़ूँगा।"

हँसते-हँसते कान्ता की आँखों में आँसू आ गये थे, "हाँ बीवी जैसे

मेरी जेब में ही तो रखी है न। इतनी ही उतावली है तो उषा की खुशामद क्यों नहीं करते ?"

रतिनाथ बोल पड़ा, "कौन दीदी, उषा दीदी ?"

रतिनाथ भी यहीं है इसका न कान्ता को ध्यान था न रमानाथ को। उसके बोलते ही कान्ता ने दाँतों से अपनी जीभ काट ली, कहा, "उषा नाम की क्या एक ही लड़की है दुनिया में ?"

रतिनाथ ताली पीटता हुआ बोला, "छिपाओ मत दीदी, मैं भी समझता हूँ, मिलने दो उषा दीदी को," कह कर वह बाहर भागा। कान्ता पीछे से चिल्लाई, "ओ रति के बच्चे।" पर रतिनाथ यह जा और वह जा।

"अब दादा ?"

रमानाथ बड़े मजे से बोला, "और बक। अच्छा मजा रहेगा जब उषा तुझे आड़े हाथों लेगी। अभी तो आशा ही है अब उषा भी जुट जाएगी और तब तुझे सिर पर पैर रखकर भागना पड़ेगा।" कहकर उसने खूँटी पर टंगा कमीज गले में डाला, बटन बन्द करता हुआ बोला, "शाम तक की टा टा। तेरी छुट्टियाँ कब होंगी ?"

"पन्द्रह मार्च से।"

रमानाथ ने हिसाब लगाकर कहा, "हूँ, अभी तो दस दिन बाकी हैं। तुम दोनों की प्रथम श्रेणी आनी चाहिये। हम रईस नहीं है, हमें मेहनत करके खाना पड़ता है और खाना जुटाने के लिये पढ़ाई जरूरी है। चल कालेज चलती है तो बस स्टैण्ड तक साथ ही चलें।"

"चलती हूँ।" "कान्ता ने उठ कर साड़ी बदली और बालों पर कंघी फिराकर किताबें हाथ में लेकर बाहर निकल आई। ताला लगाकर रमानाथ ने चाबी कान्ता को दे दी। पिन में लगी चाबी ब्लाउज में अटका कर कान्ता बोली, "चोरी के किस्से आजकल बहुत सुनाई देने लगे हैं दादा।".

"चोरी नहीं करेंगे तो लोग करेंगे क्या। खर्च बढ़ गया है और पैसा

है नहीं। नौकरियां भी नहीं मिलती, तू ही बता चोरी के सिवा रास्ता ही कौन सा बचा है। छोटे आदमियों की बात कहती है तू, पर आजकल तो जाने माने व्यक्ति भी चोरी करते नहीं हिचकते, सभ्य तरीके से करें या किसी की जेब काटें, बात तो एक ही है। मुझे भी बस एक बार मौका मिल जाय फिर तो इन तिवारी जी को उधेड़ कर रख दूँगा।"

कान्ता विस्मय से बोली, "क्या करोगे ?"

"उसकी करतूतों को सबके सामने खोलकर रख दूँगा। उसको विधान सभा से निकलवा न दिया तो मेरा नाम रमानाथ नहीं। मंत्रित्व तो गया ही, बची है सदस्यता वह भी जाने वाली है। बड़े देश भक्त बने घूमते हैं। लालच दे रहे थे मुझे कि उषा से विवाह कर दूँगा, मैं उसके विरुद्ध नहीं जाऊँ। नीच कहीं के।"

कान्ता ने प्रतिवाद नहीं किया, धीरे से कहा, "उषा क्या कहेगी दादा।"

रमानाथ चिढ़ कर बोला, "तब नहीं बोली उषा जब अपमान करके तिवारी ने मुझे घर से निकाल दिया था। मेरी उस आवश्यकता के समय मेरा अधिकृत धन दबा लिया था। अरे तेरी यह उषा, आशा और तिवारी सब एक से हैं मतलबी और खुदगर्ज।"

उषा की बात आते ही कान्ता को उस दिन उसका कहा हुआ वाक्य स्मरण हो आया। कुछ दूर चुपचाप चलते रहने के बाद कहा, "उषा उस दिन कह गई थी दादा कि दीदी को तुमने जैसा समझा है वैसी वे नहीं हैं। परिस्थितियाँ मनुष्य को कभी-कभी अनचाहे कार्य करने के लिए बाध्य कर देती हैं, यह तू उससे कह देना।"

रमानाथ 'हूँ" करके चुप हो गया। प्रोत्साहन पाने की आशा से कान्ता ने उसकी ओर देखा पर वह कुछ सोच रहा था और उसकी इस चुप्पी तोड़ने की उस की हिम्मत नहीं हुई। मन ही मन उस ने कामना की कि वह आशा को क्षमा कर दे। पता नहीं उस का व्यवहार उसे इतना मोहित क्यों कर गया था। उस के पास नारी का हृदय था और -

नारी कठोर नही होती। क्षण भर का मधुर व्यवहार उसके बन्द स्नेह के कपाटों को शीघ्रता से खोल दे तो भी आश्चर्य नहीं। कोमलता और क्षमा का उसके पास अभाव नहीं, कठोर वह रह भी नहीं पाती। क्षमा करने की इतनी शक्ति उस में न होती तो समाज आज इस रूप में नहीं होता। अपनी इस क्षमा की प्रवृत्ति के कारण ही वह अत्याचार सह कर भी आततायी को क्षमा कर देती है, कदाचित् उसके स्त्रीत्व की परिणति और मर्यादा की इतिश्री इसी क्षमाशीलता में है। पुरुष की बर्बरता अपनाकर वह उसके बराबर नहीं बन सकेगी, उससे नीचे गिर जाएगी। यही कोमलता और क्षमाशीलता ही तो उसे आदि और अन्त तक पुरुष से श्रेष्ठ बनाए रखेगी और पुरुष का गर्व भरा 'अहं' सदा उसके सामने मस्तक झुकाता रहेगा। वह राग नहीं चाहती, द्वेष नही चाहती वह चाहती है शान्ति, सद्गति और सद्भाव।

स्टाप पर बस तैयार ही थी। कान्ता चुपचाप उसमें बैठ गई। जब तक बस आँखों से ओझल नहीं हो गई रमानाथ वहीं खड़ा रहा। अपनी बस पकड़ने के लिए वह वापस मुड़ा। थोड़ी दूर ही गया था कि सेठ सुन्दर लाल साहू ने चलती कार रोक कर खिड़की में से मुँह निकाल कर उसे आवाज दी, "रमानाथ।"

रमानाथ मुड़ कर उनके पास गया, अभिवादन कर के बोला, "जी, कहिये।"

सेठजी ने जेब से एक कागज निकाल कर उसे पकड़ाते हुए कहा. "रणजीत को क्या पागलपन सूझा है, पढ़ देखो।"

रमानाथ ने पत्र पढ़ कर वापस उन्हें दे दिया कहा, "वह वहाँ पढ़ना चाहता है तो पढ़ने दीजिये न। काश्मीर उसे अच्छा लगा है और आप खर्च कर भी सकते हैं।"

"लेकिन बेटा यहाँ भी तो और कोई नहीं है। तुम उसे एक पत्र लिख कर कहो तो सही कि बूढ़े माँ बाप को अकेले छोड़ कर वहाँ रहने में लाभ कौनसा है। हाँ, यहाँ पढ़ने का सुभीता नहीं होता तो बात भी

थी। एक बार अपनी तरफ से लिखना जरूर रमानाथ, तुम्हारी बात वह सब से ज्यादा मानता है। उसकी आदत तुम जानते ही हो, रुपया फूँकने में उसकी बराबरी कोई नही कर सकेगा। आँखों के सामने थोड़ा बहुत अंकुश तो रहता है, वहां अकेला रह कर तो वह एकदम ही मिट्टी हो जाएगा।"

रमानाथ ने स्वीकार करते हुए कहा, "अच्छी बात है मैं उसे लिख दूँगा। माँ जी तो मजे में हैं ?"

"हाँ, कान्ता के विवाह का तय किया या नहीं।"

"अभी तो कहीं नहीं किया। वर इतनी आसानी से थोड़े ही मिल जाता है सेठ साहब। मछली को फंसाने के लिए चारा जो नहीं है।"

सुन कर सेठजी हँस दिये फिर कहा, "दुनिया भली नहीं है रमानाथ। तुम्हारी माँ नहीं रहीं इसी लिए बेटा उसका विवाह अब कर ही देना चाहिये।"

रमानाथ ने दबी जबान से कहा, "मैं दुनिया से नहीं डरता सेठ साहब।"

सेठजी उसका मुँह देखते रह गये। रमानाथ ने नमस्कार करके कहा, "आज्ञा दें, रणजीत को मैं लिख दूँगा," कह कर वह मुड़ गया।

दास रमानाथ की प्रतीक्षा ही कर रहा था, देख कर बोला, "कम आन। जरा इस कागज को तो जाँच लीजिये फिर से। इन थोड़े से दिनों में ही मैं तो इतनी राशि देख कर चकित रह गया हूँ। पिछले अकाउन्टेन्ट के समय मैं ने बहुत नुकसान उठाया है। मैं स्वयं हिसाब-किताब नहीं जानता। आप का मैं सचमुच में ही बहुत आभारी हूं मिस्टर नाथ। इतना ईमानदार कौन होता है इस जमाने में।"

रमानाथ सरल स्वर में बोला, "आभार का इसमें कोई प्रश्न नहीं है मिस्टर दास। कर्तव्य निभाना ही पड़ता है। काम जब लिया है तो उसे ईमानदारी से करना मेरा कर्तव्य है। लाइये दीजिये, कागज।" दास के हाथ से कागज लेकर उसने उसमें अपना मन लगा दिया। बहुत देर

बाद जब मुंह उठाया तो पाया, दास उसकी ओर टुकुर-टुकुर देख रहा था। कुछ लज्जित-सा हो गया। दास ने आवश्यकता के क्षण में उसकी जो सहायता की थी उसके लिए वह उसका जितना कृतज्ञ था उतना ही आदर भी करता था। उसके बारे में उसे विशेष कुछ भी मालूम नहीं। अखबार में विज्ञापन देख कर उसने प्रार्थनापत्र नहीं दिया स्वयं जाकर खड़ा हो गया और दास ने उसे चुन लिया, पता नहीं क्या देख कर। इस कृपा को वह आजन्म नहीं भूल सकता था, विगलित होकर बोला, "हिसाब मैंने मिला लिया है। रुस्तम जी मोदी से पौने सात सौ लेने बाकी हैं, कल जाकर ले आऊँगा।"

"ओह, और उन लोगों ने जो हिसाब दिया था उसके अनुसार तीन सौ बाकी निकलते थे। कितने मक्कार हैं ये लोग। आप कल जाकर रुपया ले आइए। मैं सोचता हूँ मई में आपको बाहर भेज दूँ। आपको मैं छोड़ूँगा नहीं, यह तो आप भी समझ गये होंगे। कलकत्ता, मद्रास हो आएंगे तो ठीक रहेगा। क्या कहते हैं।"

"जी।"

"हां, मिस्टर नाथ क्या अब भी आप अपने बारे में मुझे कुछ नहीं बतायेंगे, लेकिन ठहरिये पहले मैं बता दूँ अपने बारे में। हम लोग लखनऊ के हैं। मेरे बूढ़े मां-बाप और बड़ा लड़का नरेन्द्र वहीं रहते हैं। वह रेलवे में इंजीनियर है, यह तो आपको पता ही है। बाकी सब लोग यहीं हैं। इन लोगों से आप मिलते रहते हैं कोई विशेषता नहीं है। हम लोग सारस्वत ब्राह्मण हैं पर ब्राह्मणत्व अधिक निभता नहीं। लखनऊ जाकर थोड़ा बहुत प्रपंच कर लेता हूं।"

रमानाथ मुस्करा दिया, बोला, "अर्थात् मां बाप को ठगे बिना काम नहीं चलता।"

"जी हाँ, करना ही पड़ता है। अब आप भी कहिये।"

रमानाथ ने संक्षेप में कह दिया, "हम लोग अग्रवाल हैं बाकी आप जानते हैं।"

दास ने उत्सुकता से पूछा, "आपकी बहन पढ़ती है न ?"

"जी हां इस वर्ष इन्टर की परीक्षा देगी।"

दास ने इस बार मन की बात कह दी, "आप अनुचित न समझें तो एक प्रस्ताव रखना चाहूंगा।"

रमानाथ जिज्ञासु नेत्रों से दास की ओर देखने लगा तो उसने कहा, "अपनी बहन का हाथ नरेन्द्र को पकड़ा दीजिये। मैं तार देकर उसे बुला लेता हूँ. अनुचित न समझें तो यह सम्बन्ध करदें। प्रशंसा नहीं करूंगा पर उसका कैरियर बहुत अच्छा रहा है। प्रांत भर में वह सर्वप्रथम रहा था। आपके सामाजिक और आर्थिक स्तर से मुझे कुछ लेना देना नहीं है। रहा प्रश्न जाति का; सो देखिये जाति की मैं चिन्ता नहीं करता। मां बाप ने विरोध किया भी, और वे करेंगे, तो उनसे निपट लिया जाएगा। आप अपना मन्तव्य प्रकट करदें।"

प्रस्ताव सुनते ही रमानाथ मारे प्रसन्नता के कुर्सी छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। मनुष्य इतना निर्लोभी भी होता है। वह सहसा ही दास के दोनों हाथ पकड़ कर बोल उठा, "मुझे कोई आपत्ति नहीं है मिस्टर दास। मेरी बहन आपके घर में स्थान पाये, नरेन्द्र को पति रूप में पाये इससे बढ़ कर और सुख और सन्तोष की बात मेरे लिए नहीं हो सकती। बहन मेरी इतनी शान्त, शिष्ट और सुन्दर है कि आपको कभी अपने निर्णय पर खेद नहीं होगा। आप कितने उच्च हैं मिस्टर दास!"

दास ने पिता के से स्नेह से रमानाथ के हाथ को दबाकर कहा, "ना, उच्च नहीं हूँ मिस्टर रमानाथ। आपके और आपकी बहन के बारे में मैं चुपचाप सब कुछ जान चुका हूँ। मैं सोचता हूँ रणजीत साह को तो आप जानते ही होंगे। उससे जब मैंने आपके बारे में बात की थी तो वह इतना फूल उठा था कि तभी से कह रहा था कान्ता जैसी लड़की आसानी से नहीं मिलेगी। नरेन्द्र को भी उसी ने भरा था और वह कालेज जाते समय उसे देख भी चुका है। आपसे पूछना तो मेरा एक प्रयास था और मैं प्रसन्न हूँ कि वह सफल हो गया।"

आत्म सन्तोष के भाव से रमानाथ खिलखिला कर हंस पड़ा, 'नरेन्द्र साहब को बधाई देता हूँ। एक बार बुलवा लीजिए ताकि कान्ता भी उन्हें देख ले। वह ना नहीं करेगी. यह मैं जानता हूँ फिर भी उसकी सम्मति के बिना मैं कुछ नहीं करूंगा, लेकिन देखिये विवाह अभी नहीं उसकी परीक्षा के बाद होगा।"

"मुझे कोई इन्कार नहीं," कह कर दास हंसा, बोला, "पूरी बातें तो आपने अभी सुनी ही नहीं है। नीला कान्ता के कालेज में है और अपनी मां से वह उसकी इतनी तारीफ कर चुकी है कि वे कभी से उसे एक बार देखने के लिए मेरे पीछे पड़ी हुई हैं। आपसे कहने का एकाएक साहस नहीं हो पाया था, प्रार्थना करता हूँ कि आज संध्या को आप सब वहीं भोजन करें। सुरेन्द्र कार लेकर आएगा।"

प्रसन्न मन से हंसते हुए रमानाथ ने निमन्त्रण स्वीकर कर लिया।

दास चला गया। रमानाथ का मन दिन भर उड़ता रहा। कान्ता को अच्छा घर-वर मिले, आज के अभाव भविष्य में उसे दुखित न कर सकें उसका स्वप्न था। दास और नरेन्द्र से वह पहले ही प्रभावित हो चुका था। नितान्त अपरिचित न होने पर इतनी दूर तक उसने नहीं सोचा था कि वे लोग कान्ता को अपनी बहू रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाएँगे। मन को उसने बह जाने दिया। कान्ता का विवाह कर वह एक बड़े भारी दायित्व से मुक्त हो जाएगा। रति का बोझ उठाना कठिन नहीं है उसे भी वह अपने लक्ष्य तक ले जाएगा। दास और नरेन्द्र की सज्जनता का स्मरण कर-कर के उसका हृदय विग-लित हो उठा। मनुष्य के जन्म जात संस्कार मिटते नहीं। कोशिश करके वह अपने को ऊँचा उठा सकता है यह मानता हूँ लेकिन अपने संस्कारों को वह एकदम ही दबा दे यह असंभव है। मनुष्य का स्वभाव भिन्न होता है, परिस्थितियां भिन्न होती है और सामाजिक स्तर भी एक-सा नहीं होता। परिस्थिति की भिन्नता ही कदाचित अपरिवर्तनीय है। सामाजिक स्तर और स्वभाव की भिन्नता एक बार मिट भी जाय तो

कोई आश्चर्य नहीं लेकिन परिस्थिति की नहीं मिट सकती। मनुष्य जो करना नहीं चाहता परिस्थितियाँ उससे वही करवा लेती हैं। हृदय साथ न दे, संस्कार विरोध करें पर वह अनचाहे कार्य करने के लिए बाध्य हो जाता है, उनके साथ उसे चिपटना पड़ता है। दोष किसे दिया जाय। मनुष्य को, उसके संस्कारों को या परिस्थितियों को। मन में प्रश्न उठते हैं और उत्तर के अभाव में वहीं खड़े रह जाते है, दूसरे को सामने रख कर ही अपने को शान्त करना पड़ता है। लेकिन समाज इतना सीधा नहीं है कि किसी की विवशता को देख कर मुख बन्द करले। आलोचनाओं का द्वार सदा उन्मुक्त रहता है और अधिकांश इनका सामना नहीं कर पाते। उन्हें समाज के आगे सिर झुकाना पड़ता है। कितनी भारी निर्दयता है। संसार सशक्त का ही साथ देता है, निर्बल का नहीं। हठात् ही रमानाथ निस्पन्द हो रहा। आशा क्या वास्तव में परिस्थितियों के हाथ का ही खिलौना है ? तिवारी जी के दबाव के कारण ही उसने यह राह पकड़ी हो। पर जब वे उससे वैसे कार्य करवा सकते हैं तो उषा से क्यों नहीं करवा सकते। उषा का स्मरण आते ही उसका मन क्यों कोमल हो उठता है यह वह नहीं जानता, केवल इतना जानता है कि वह उसे चाह कर भी न पा सकता है, न भूल सकता है।

सुरेन्द्र आकर कह गया था कि वह जल्दी ही घर चला जाय और तैयार रहे ताकि सब लोग कुछ समय तक साथ रह सकें। यह माँ का अनुरोध था। दास नहीं आया था, अतः उसने कार्य नौकरों के भरोसे न छोड़ बन्द कर दिया और चाबी रिंग में डालकर नीचे उतर गया। राह कारों से रुकी थी। वह प्रतीक्षा में खड़ा रहा। कितना धन और ऐश्वर्य है लोगों के पास।

'एक पैसा सेठ।'

वह कारों की लम्बी कतार और फटे चिथड़े लपेटे यह भिखमंगे। रमानाथ मुस्कराया। भीख माँगना भी एक कला है और उन अड्डों की भी कमी नहीं है जहाँ भिखमंगों को सुशिक्षित किया जाता है, भीख माँगने

की कला उन्हें सिखाई जाती है। वह इन लोगों से खूब परिचित है लेकिन आज के दिन उसका मन नहीं हुआ कि कुछ कहकर वह उसे भगा दे। पीछे वाला दिखाई नहीं देता, सामने वाला असमर्थ है, अशक्त है और निर्धन है। उसने जेब से एक आना निकालकर उसके हाथ पर रख दिया। स्थान मिलते ही वह सड़क पार कर दूसरी ओर जा पहुंचा और भागकर चलती बस में चढ़ गया। पीछे वाला आदमी चिल्लाता ही रह गया। बस रुकी नहीं। बिना छीनाझपटी किये कोई अपने लिये स्थान नहीं बना सकता।

कान्ता ने कालेज से आकर किताबें रखी ही थीं कि रमानाथ आ पहुँचा। मारे प्रसन्नता के उसने उसे दोनों हाथों से ऊपर उठा लिया और फिर ऊपर से ही उसे जमीन पर छोड़ दिया। स्नेह कितना ही कोमल रहा हो धरती की कठोरता ने उसे सहज रूप में नहीं लिया। कान्ता धम्म से जमीन पर आ रही और गिरते ही क्रुद्ध होकर बोली, "यह क्या बेहूदगी है?"

रमानाथ उसे झंझोड़ता हुआ हँस कर बोला, "बेहूदगी क्या, कान्ता आज मैं इतना खुश हूँ कि मारे खुशी के फट जाऊँगा।"

पैर सहलाती हुई कान्ता बोली, "तो बाबा यह कहाँ लिखा है कि आप खुश हैं इस कारण दूसरे को मार ही डालें। जोर से गिराया है तुमने मुझे। हँसे ही जाओगे या बात भी बताओगे।"

"बात? अरे बात ऐसी है कि तू उछल पड़ेगी। मैं तेरा सम्बन्ध पक्का कर आया हूँ। लड़का इंजीनियर है लखनऊ रहता है। हमें आज उन लोगों के यहाँ खाना खाने चलना है।"

कान्ता ने भवें सिकोड़कर कहा, "हूँ, तो मुझे निकालने की कल्पना के कारण प्रसन्न हैं आप।"

"बेहद खुश हूँ कान्ता। रति कहाँ है, जल्दी से तुम दोनों तैयार हो जाओ। सुरेन्द्र कार लेकर आता ही होगा। लड़के को यहाँ बुलवाया है ताकि तू भी देख ले। नीलिमा दास को जानती है न?"

"हाँ।"

"उसी का भाई है नरेन्द्रनाथ दास। लड़का मेरा देखा हुआ है। इतना सौम्य और सुन्दर है कि तू देखती ही रह जाएगी और याद करेगी जीवन-भर मुझ को। क्यों नाराज तो नहीं है ?"

कान्ता ने मुख झुकाकर धीरे से कहा, "नाराज क्यों होऊंगी दादा। जानती हूं तुम ऐसा काम कभी नहीं करोगे जिससे मेरी हानि हो।"

"तो चटपट तैयार हो जा। मैं जरा दो एक चीजें खरीद लाता हूँ," कहकर वह उल्टे पैरों बाहर निकल गया। कान्ता ने अपना आरक्त मुख एक बार उठाया और धीरे से मुस्करा कर फिर झुका लिया।

## सत्रहवाँ अध्याय

कान्ता का सम्बन्ध हो गया । नरेन्द्र ने निराले में उससे केवल एक ही बात कही थी, मैं तुम्हें कभी अप्रिय नहीं होऊँगा ऐसी आशा अवश्य करता हूँ किन्तु ऐसा अवसर आ भी जाय तो हिचकना मत । मैं अपनी भूल को पकड़ न पाऊँ तो मुझे बीच में ही न छोड़ देना । और कान्ता ने न जाने किस भावना के वशीभूत होकर उसके पर छू लिये थे । नरेन्द्र को देख कर उसका मन भर आया था ।

रमानाथ भी जैसे निश्चिन्त हो गया था । कान्ता ने नरेन्द्र को पसन्द कर लिया और स्वीकृति दे दी । यह उसके लिये भारी प्रसन्नता की बात हो गई । वह जानता था नरेन्द्र को देखने के बाद वह इन्कार नहीं कर सकती । इतना अधिक आकर्षण था उस युवक में कि कान्ता तो क्या जब वह लखनऊ के लिये जाने लगा था तो रमानाथ का मन हुआ था उसे छाती से लगा ले ।

दास के यहां वह पूर्ववत् कार्य करता रहा । उनके अनुरोध करने पर भी उसने आगे पढ़ना स्वीकार नहीं किया । मन उसका बहुत ही निर्मल, बहुत ही शान्त हो गया था ।

कान्ता मुख छिपा कर उसकी गोद में पड़ी थी । आँखों से बहते आँसुओं ने रमानाथ की कमीज को तर कर दिया । आज माँ होतीं । और

यह सोचकर कान्ता की आँखों से दूने वेग से आँसू बहने लगे। रमानाथ धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फिराता हुआ बोला, "इस आनन्द के दिन तेरी आँखों में आँसू क्यों कान्ता। नरेन्द्र इतना अच्छा है कि मेरे पास उसकी प्रशंसा करने के लिये भी शब्द नहीं हैं लेकिन तू इतना रोती क्यों है बहन।"

कान्ता मुख छिपाये हुए ही बोली, "आँसू मुझ से रोके नहीं जाते दादा, शायद इस कारण कि तुम इतने निर्मल हो, ऊँचे हो। तुम मेरे भाई हो यह सोचकर मेरे गर्व का ठिकाना नहीं रहता। तुम्हें छोड़ कर मुझे जाना पड़ेगा दादा?" कहते-कहते वह फिर सिसक पड़ी।

रमानाथ की आँखें भी भर आईं पर वह हँसता हुआ बोला, "पगली, और मैं सोच रहा था कि तू इस सम्बन्ध से खुश नहीं है। लड़की को एक न एक दिन तो जाना ही पड़ता है। यहाँ के सम्बन्धों को छोड़ कर नये सम्बन्ध बनाने पड़ते हैं, परायों को अपना बनाना पड़ता है। यह तो दुःख की बात नहीं है बहन। इससे हमें अपनी शक्ति को पहचानने का अवसर मिल जाता है। स्वयं में सुखी तो सभी रह लेते हैं, दूसरों को सुखी बनाना गर्व की बात है। सोच तो तू जिस घर में जाएगी वहां के मनुष्य तुझ से क्या अपेक्षा करते होंगे। तू अपने को उन्हीं के अनुरूप ढाल सके, उनकी मर्यादा को निभा सके, इससे बड़ा आशीर्वाद तो मेरे पास और कोई है नहीं बहन। आँसू पोंछ दे।"

कान्ता ने आँसू पोंछ डाले और फिर चुपके से उठ कर चली गई।

खाली हाथ रमानाथ शून्य मस्तिष्क बैठा रहा। यह सब इतना शीघ्र और अप्रत्याशित ढंग से हुआ था कि वह प्रायः विमूढ़-सा रह गया था। सहृदयता की इतनी अधिक कल्पना उसने नहीं की थी। स्वार्थ और सुख की इस कशमकश के बीच कौन किसका ध्यान रखता है। आत्मीय स्वजन, समाज, सुख, समृद्धि मनुष्य को चारों ओर से घेर चुके हैं। इनसे आगे जाकर देखने का वह कभी प्रयत्न नहीं करता, शक्ति भी नहीं होती और कदाचित् समय भी नहीं होता। जिनके पास है उनकी बात नहीं है, जिनके

पास नहीं है वे भी तो पाने की जी तोड़ कोशिश करते है। कामना और लालसा की तुष्टि के लिये अनुचित रूप से धन कमाने में उसे हिचक नहीं होती। मनुष्य की असमर्थता इसके लिये उत्तरदायी है अथवा उसकी पिपासा, कहा नहीं जा सकता।

किवाड़ खटखटाने का स्वर सुनकर रमानाथ ने बिना मुड़े ही कह दिया, "चले आओ, किवाड़ खुले हैं।"

धीरे से किवाड़ खोल कर उषा उसके पीछे आकर खड़ी हो गई। उसने मुड़कर नहीं देखा, कुछ पूछा भी नहीं, वैसे ही बैठा रहा।

"कान्ता कहाँ है ?"

"अन्दर है।" रमानाथ ने कहा। मुड़कर देखते ही वह चकित होकर उठ खड़ा हुआ, "आप हैं ?"

उषा हँसकर बोली, "जी हाँ। आप तो जैसे ध्यानावस्थित से बैठे है। कोई घर में घुसकर कुछ भी ले जाय तो आपको पता नहीं चल सकता।"

"घुसने दीजिये न। यहाँ रखा ही क्या है जिसके खोने का डर हो मुझे। आने वाला बल्कि गाली न दे सो ही गनीमत है।"

उषा मुख फिराकर बोली, "क्यों आप जो हैं, आपको भी तो चुराया जा सकता है।"

सुनते ही रमानाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा। जो कभी हँसता नहीं उसकी यह खिलखिलाहट सुनकर कान्ता ने धीरे से मुख बढ़ाकर देखा लेकिन दूसरे ही पल वह वहाँ से हट गई। न जाने क्या सोचकर। उषा निष्पलक उसके हँसी से खिले मुख की ओर देख रही थी। कितना साधारण-सा युवक था। सौंदर्य शायद उसमें था ही नहीं आकर्षण था केवल उसके नेत्रों में वह भी सभी को दिखाई नहीं देता। पहली दृष्टि में कुल मिलाकर उसका व्यक्तित्व इतना नीरस, इतना रूखा दिखाई देता था कि मन में चिढ़ आती थी विशेषकर उस समय जब वह व्यंग से भरकर बोलता था। देखते-देखते उषा सोच बैठी, क्या है इसमें। इस अनाकर्षक-से युवक के प्रति उसके मन में इतना स्नेह, इतना विश्वास, आ कैसे गया।

उसकी कल्पना के मापदंड से जरा भी तो मेल नहीं खाता यह पुरुष । उसके संपर्क में आने से पहले उसने भी कामना की थी एक सशक्त सुन्दर और समृद्ध जीवन साथी की और प्रायः निश्चय भी कर चुकी थी कि अपनी कल्पना जगत के साथी के बिना वह विवाह करेगी ही नहीं, पर जब रमानाथ से परिचय बढ़ा, उसकी बाह्य असुन्दर मूर्ति को भेदकर उसके निर्लिप्त अन्तर को पढ़ा तो देखा, उसके कल्पना पुरुष का अस्तित्व धीरे-धीरे रमानाथ की मूर्ति में विलीन होता जा रहा है । मन ही मन उसने न जाने क्या-क्या सोचा, अपनी कल्पना को विचारों की माला से अलंकृत किया और तब एक दिन निश्चय किया, विवाह यदि होगा तो रमानाथ से अन्य से होगा ही नहीं । दृढ़ साथी के बिना उसके पैर उखड़ गये तो । वह उसके अन्तर में इतना गहरा पैठ चुका था कि उसके सिवा किसी और की बात वह सोच ही नहीं सकती थी । वह उसका प्रथम और अन्तिम प्राप्य था । अपने उसी चिर आकांक्षित प्राप्य को वह आशा के लिये माँगने आई थी । आँखों के आँसू आँखों में ही रोककर उसने मधुर भाव से मुस्करा दिया ।

रमानाथ उषा की इस निष्पलक दृष्टि से अव्यवस्थित-सा हो उठा था । उषा के लिये उसके मन ने उसकी दृढ़ता से विद्रोह किया था । इस विद्रोह को उसने कभी प्रकट नहीं होने दिया फिर भी जानता था मन की कोमलता उषा के सम्बन्ध में बुद्धि की कठोरता को अपने में समेट लेती थी । हृदय के सम्बन्ध विवेक की नींव पर निर्मित नहीं होते, कोमल भावनाओं की नींव पर जमते हैं । विवेक और हृदय भावना के भिन्न-भिन्न केन्द्र हैं । विवेक से शासित है, तर्क और हृदय से शासित है कोमलता । दोनों के संघर्ष में उसका विवेक प्रायः पराजित ही हुआ है और उसे उषा की तरलता को अपने व्यवहार में समेटना पड़ा है । बुद्धि न माने, हृदय ने तो उसकी प्रभुता को स्वीकार किया ही था । उस अपलक सरल दृष्टि के सामने से अपने नेत्र हटाकर उसने कहा, "खड़ी क्यों हो, बैठिये न ।" लेकिन कहने के पश्चात पाया सदा के समान आज उसके स्वर में वह

आगमात्मक कठोरता थी और इसका अनुभव कर वह अपने में ही सिमट-सा गया ।

धीरे से उषा बिछे हुए पलंग पर बैठ गई ।

रमानाथ ने पलक की कोर से उसके मुख की ओर देखा, उदास-सा बिखरा-सा । लगा यह मुख देख कर उसे चोट पहुंची है । अचानक ही स्नेह और आवेग से विगलित होकर बोल पड़ा, "आपकी तबियत ठीक नहीं है क्या ? बहुत दुबली दिखाई देती हैं ।"

उषा कुछ चकित-सी होकर बोली, "कौन मैं ? कैसे भला ?"

रमानाथ हंस दिया, "और क्या मैं । आपके इस 'कैसे भला' का उत्तर तो मेरे पास है नहीं पर इतना जानता हूँ कि आप कदाचित् स्वस्थ नहीं है ।"

उषा ने स्वीकार करते हुए कहा, "जी हाँ, कहते तो आप ठीक हैं । पिछले कुछ दिनों से मुझे बुखार हो जाता है । दवा ले रही हूं पर अभी तक तो कुछ हुआ नहीं । खैर, जब शरीर है तो रोग भी होगा ही । बताया नहीं आपने, कान्ता कहां है ।"

रमानाथ ने ध्यान से उसकी ओर देखा । उसकी सुन्दर बड़ी-बड़ी आँखों का प्रकाश मद्धिम-सा पड़ गया था और समझ में न आने वाली काली रेखा-सी नेत्रों के चारों ओर खिंच गई थी । एक घनीभूत पीड़ा की छाया उसके मुख पर परिलक्षित थी । यह मात्र रोग के कारण हो नहीं सकता । क्या तिवारी जी ने उसे भी प्रताड़ित करना आरम्भ कर दिया है ? आशंका से चंचल होकर बोला, "ठीक बात क्या है बतायेंगी नहीं ?"

परिचय की इस लम्बी राह के अन्तिम छोर पर पहुँच कर उषा ने मृदुता और आत्मीयता का ऐसा कोण पाया जिसके घेरे में बंधना न चाह कर भी वह बंध गई, चाहा सहृदयता की ध्वनि को हृदयहीनता में परिवर्तित कर दे और मन को फिर उसी कामना की सीमा में घसीट कर ले जाये जहाँ बैठ कर उसने स्वप्नों का निर्माण किया है, एवं प्रतिदान

के अभाव मे जिन्हे अपने ही हाथो नष्ट कर दिया है पर यह हुआ नहीं । प्यास से आतुर बदली के समान वह अपनी अतृप्त पिपासा को समुद्र का वक्ष फोडकर तृप्त करने के लिए आतुर हो उठी । मन के इस दबे हुए कोने को अपनी मृदुता से जब रमानाथ ने मुखरित कर दिया तो प्रयत्न करके भी वह अपने आवेग को नही रोक सकी, दोनो हाथो पर मुख झुका कर बोली, "अघट क्या घटता नही है ? तुम कभी भी इतनी कोमलता से मुझे ले सकोगे, इसकी कल्पना भी तो असभव थी । मन की निराशा ने भावना का द्वार रुद्ध कर दिया था, उसे अब मत खोलो । मुझमे उतनी शक्ति नही है उसकी उपेक्षा करूँ । मै निर्बल हू रमा ।"

यह मानो समर्पण था । इस अप्रत्याशित समर्पण ने रमानाथ के मन मे स्नेह और दया की लम्बी रेखा खीच दी । उषा को उसने टटोला नही । वह उसकी प्राप्य नही थी और इसी कारण उसने अपने मन को कभी बहने नही दिया । प्रेम और विवाह उसके लिए स्वप्न की बाते थी । उषा की इस निष्कपट स्वीकारोक्ति से हत् बुद्धि-सा होकर बोला, "मैं पत्थर नहीं हूँ उषा, मनुष्य हूँ । परिस्थितियो पर मै विजय नही पा सका । अपने पर मुझे विश्वास है । मैने तुम्हे कभी दुखी नही करना चाहा । "तुम मुझे क्षमा करो ।"

उषा अपने को रोक नही सकी । सुख और निराशा की मिली-जुली अनुभूति से वह रो पड़ी, "मुझे अब और मत खोलो । बन्द कपाटो को बन्द ही रहने दो, कम से कम जीने लायक पूँजी तुम मेरे पास रहने दो, निःस्व कर लोगे तो मै जिऊँगी कैसे । देकर मुझे निर्बल मत बनाओ तुम ।"

क्षण भर के लिए नेत्र बन्द करके रमानाथ ने खोल दिये और सरल भाव से हस पडा । किसी का प्रेम प्राप्त करने योग्य पूँजी उसके पास है ही नही, इस भाव को दृढ बना कर कहा, "जाने दो इसे । तुम सच-मुच मे यदि मुझ पर विश्वास करती हो तो मै भी कहता हूं कि मुझ पर

अविश्वास करने का कोई भी कारण नहीं है। सम्पन्नता की पूँजी भले ही न हो विश्वास की पूंजी मेरे पास अवश्य है और सच मानो मैं आज उसे तुम्हें देने से हिचकूंगा नहीं।"

"वचन देते हो ?"

"हां, जिस वस्तु पर मेरा एकाधिकार रहा है वह भी तुम्हारे लिए अदेय नहीं होगी। जिस दिन आवश्यकता हो मांग लेना। हाँ, एक बात तो तुम्हें बताई ही नहीं अब तक। कान्ता का सम्बन्ध तय कर दिया है।"

उषा उत्तरोत्तर स्वस्थ होकर बोली, "कहां किया है ?

"यहीं, लड़का इंजीनियर है और कान्ता को पसन्द है। परिवार भी अच्छा है। इससे अधिक की तो मैं सोच भी नहीं सकता था। सच उषा इतना सुख हुआ है मुझे लगता है मैं पागल हो जाऊंगा। कान्ता का विवाह हो जाए और रवि भी कहीं जम जाये तो मैं तो सब छोड़-छाड़ कर कहीं चला जाऊँगा उषा।"

उषा डर कर बोली, "कहां चले जाओगे ?"

रमानाथ की आँखें भर आईं, "कहीं भी। कान्ता ही यहाँ से चली जाएगी तो मैं अकेला रह कर क्या करूंगा। माँ ने मुझे जन्म दिया पर ममता नहीं दी और मुझ से बाद में आ कर कान्ता ने मुझे माँ की ममता दी, बहन का स्नेह दिया। निराशा के घनीभूत क्षणों में उसका यह स्नेह मेरी राह का दीपक बना रह सका है, अन्यथा मैं कभी का मिट जाता उषा।"

कान्ता का स्नेह रमानाथ का सम्बल था, सहारा था। अटूट हो कर भी वह दूरी की सीमा में बंध जाएगा, और तब वह रह जाएगा अकेला, आकाश में बिखरते बादल के उस छोटे-से टुकड़े के समान जो साथी विहीन इधर-उधर भटक कर दिगन्त के किसी छोर पर जा कर विलीन हो जाता है। कान्ता चली जाएगी, रमानाथ की सारी निर्भयता, सारी दृढ़ता को समेट कर। उषा विचलित हो गई, जो कभी नहीं किया वही

कर बैठो। उसके हाथ को उसने जोर से अपने हाथों में लेकर दबा लिया, भीगे कण्ठ से कहा, "नहीं रमा, तुम अपने को कभी नहीं भूलोगे, अपनी शक्ति और साहस को तुम कभी नष्ट नहीं होने दोगे, इसका वचन तुम्हें आज मुझे देना पड़ेगा। स्नेह और प्रेम तो तुच्छ हैं, साधारण मनुष्यों के लिए हैं जो इनके बिना जी नहीं सकते पर तुम्हें तो ऊपर उठना है, कुछ करना है। ऐसे साहस से ही तो नाम अमर होगा। तुम नहीं जानते रमा तुम क्या हो।"

उषा के हाथों में से रमानाथ ने अपना हाथ छुड़ा लिया, दीवार की ओर देख कर कहा, "मुझमें कोई असाधारणता नहीं है उषा। मैं नाम, यश कुछ भी नहीं चाहता, बस शान्ति से जीना चाहता हूँ। स्नेह और प्रेम मेरे लिए तुच्छ नहीं हैं, मुझे भी इनकी उतनी ही कामना होती है जितनी दूसरों को। इस सहारे को मैं कहाँ तक पाऊँगा उषा।"

मानो अभी ही देखा हो उस भाव से कान्ता रमानाथ के पास आकर बैठ गई। उसकी अन्तिम बात सुन कर उसकी आँखों से अभी आँसू बह चुके थे। उसे उपदेश देने वाला कितना निर्बल है।

कान्ता को देखते ही कुछ लज्जित-सी होकर उषा ने रमानाथ का हाथ छोड़ दिया और सीधी होकर बैठ गई। तभी उसे पहली बार ध्यान आया कि रमानाथ जमीन पर बैठा था और वह पलंग पर। उठ कर नीचे बैठना चाहा लेकिन कान्ता ने उसके घुटनों पर सिर टिकाकर उसे वर्जित करते हुए कहा, "एक बात मानेगी?"

"हूँ।"

"तू इस घर में आजा। समाज का तुझे कोई भय नहीं है और माँ भी विरोध नहीं करेंगी। तुझे दादा पसन्द नहीं है यह मत कहना वरना लड़ बैठूँगी। बोल आएगी?"

बर्फ की-सी ठंडक उषा के शरीर में दौड़ गई। रमानाथ की ओर देखा वह निर्विकार-सा बैठा था और कान्ता उत्सुकता पूर्वक आशा भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। उषा को लगा इस दृष्टि के आगे

वह अभी छिन्न लता-सी बिखर पड़ेगी और दीदी को अंक में भरके स्वयं तृप्ति की सीमा में बँध जाएगी । उमा का मन हो रहा था कि अब डिगा अब डिगा कि आशा का मुख नेत्रों में उभर आया । माँ के विश्वास को भी तोड़ दे इससे अच्छा है कि वह मर जाय । उसकी दृढ़ता और संयम पर उन्हें भरोसा नहीं होता तो वे कभी रमानाथ को उससे नहीं मांगतीं । जानती थीं, प्राप्ति के इस सुख का वह विसर्जन कर सकती है । कान्ता के इस प्रस्ताव को मान कर क्या वह उनका विश्वास तोड़ दे और दीदी को फिर उसी दलदल में फेंक दे जहाँ से वे ऊपर आ सकी हैं ? उमा का मुख रक्तहीन हो गया । रमानाथ ने देखा उसकी आँखों के चारों ओर पड़ी हुई काली लकीरें जैसे और भी काली, और भी गहरी हो गई हैं, मुख की बची-खुची श्री भी जैसे किसी ने सोख ली है ।

कान्ता ने फिर कहा, "वकालत करने योग्य कुछ भी नहीं है, यह तू जानती है दीदी, जिस राह से होकर आजकल यह बढ़ रहे हैं जिससे मैं उन्हें बचाना चाहती हूँ और इसके लिए तेरा सहयोग आवश्यक है ।"

रमानाथ ने सतर्क होकर पूछा, "क्या कहना चाहती है ।"

कान्ता ने व्यथित नेत्रों से उसकी ओर देख कर कहा, "क्या कहना चाहती हूँ सो तुम जानते हो दादा । तुम क्यों आग से खेलते हो । सुधार का ठेका तुमने नहीं लिया है । इन अनाथ बालकों की कमी नहीं है । अपमान का प्रतिशोध नहीं वरन् इसमें छिपी है तुम्हारी शान्ति के लिए पिपासा, सन्तुष्टि की आशा । वह तो कदाचित् मिलेगा नहीं, जो पास में है वह भी खो बैठोगे ।"

कान्ता की बात रमानाथ को भाले-सी चुभी । जी में आया उसका मुख बन्द कर दे पर जब अन्तर को टटोला तो पाया, उसने ठीक कहा था । सत्ता का लोभ जो आदि दिन कुम्हार के समान ने निर्माण करता रहता है उसके अपने मन में भी था । मनुष्य में न होती तो अणु शक्ति न पनपती, विश्व

इस प्रवृत्ति के पोषण के लिये सदा अवसर ढूंढा करता है। घर से समाज, समाज से देश और देश से राष्ट्र। मनुष्य की इस विचारणा का मानों अन्त ही नहीं है। समष्टि की उसे चिन्ता नहीं है वह इकाई को लेकर ही चलता व सोचता है। इसे उसका "अहं" कहें या मिथ्याभिमान अथवा अन्ध अनुवर्तिता।

कान्ता की तीव्र दृष्टि के सामने आज पहली बार उसके नेत्र झुक गये।

स्वर को यथासम्भव कोमल बनाकर कान्ता ने कहा, "मनुष्य जो मुख से नहीं कहता वही उसके नेत्र कह देते है। तुम्हीं ने तो कहा था दादा कि दुःख को भुलाना पड़ता है अन्यथा जीवन का सुख नष्ट हो जाता है। उसी दुःख को भुलाकर जो पाया है उसे खो मत देना।"

"तू चाहती क्या है ?"

"यही कि तुम इस विरोध को समाप्त कर दो, आज ही और उषा के सामने।"

उषा कुछ भी समझ नहीं सकी थी। रमानाथ क्या करना चाहता है, वह अपलक दृष्टि से दोनों की ओर ताक रही थी। जब अपने को रोक नही सकी तो बोली, "क्या बात है कान्ता ?"

कान्ता ने क्षण-भर के लिये उषा की ओर देखकर रमानाथ से कहा, "मुझे भी सब पता लग चुका है। जिन्हें फंसना है वे तो फंसेंगे ही। जानते हो सत्य अधिक समय तक अप्रकट नहीं रह सकता, पर तुम ही छाती ठोककर उसे प्रकट करने के लिये आगे बढ़ो, यह तो आवश्यक नहीं है। अच्छा अभी तुम जाओ, मुझे उषा से कुछ कहना है।"

रमानाथ ने विरोध नहीं किया। उठकर चला गया।

मन की उथल-पुथल से हिलकर उषा कान्ता को झकझोर कर बोली, "पहेलियाँ मत बुझा। क्या बात है सो साफ-साफ कह दे।"

कान्ता ने दोनों हाथों मे उषा का हाथ दबाकर कहा, "क्या बात है सो [illegible] उषा, पर किसी भी तरह पापा को कह दे कि भोंसले से अलग [illegible] लोगों के विरुद्ध लोग पागल हो रहे है। दादा भी कहीं

इसी दल में शामिल न हो जायं, नहीं तो उषा मैं कभी माँ के आगे मुख नहीं उठा सकूँगी। पति फिर भी पति है। नहीं आएगी, तू उन्हें रोक सकती है इसका मुझे विश्वास है। मेरा विरोध आज तक उन्हें झुका नहीं पाया, उन्होंने सदा अपनी ही जिद रखी है इसी कारण तुझे पुकार रही हूँ। तू उन्हें इस राह से खींच ले।"

उषा पत्थर की मूर्ति के समान सिर झुकाये बैठी रही।

कान्ता व्याकुल होकर बोली, "नहीं कर सकेगी ?"

उषा अपने रक्तहीन ओंठ खोल कर बोली, "नहीं।"

"उषा इतनी कठोर मत बन। मैं तेरे पैर छूती हूँ, तू उन्हें अपना सहारा दे दे। मेरा विवाह हो जाएगा मैं चली जाऊँगी। मेरे पीछे उन्हें कौन देखेगा। माँ के सामने क्या तू मुझे एकदम ही झुका देना चाहती है ?" कहते-कहते वह रो पड़ी।

उषा का मुख उसकी छाती पर झुक गया। कान्ता का प्रस्ताव मान लेना क्या इतना सहज है ? माँ क्या कहेंगी और दीदी के सामने जो वह मस्तक ऊँचा करके वचन दे आई थी उसका क्या होगा। उन्हें राजी कर लेना जो सहज नहीं था। कान्ता की लज्जा और उसकी लज्जा क्या एकदम तुच्छ है ? अचानक वह उठ कर खड़ी हो गई। कान्ता कुछ कह सकती इसके पहले ही वह तेजी से पलटकर रमानाथ के सामने जाकर खड़ी हो गई। आँखें उसकी सूखी थीं और स्वर भावहीन, "तुम्हारे पास मेरे लिये कुछ भी आदेश नहीं है न रमा ? तो मुझे छू कर कसम खाओ कि तुम पापा के विरुद्ध नहीं जाओगे। वे जो कर रहे हैं उसका फल उन्हें आप ही भुगतने दो, तुम क्यों बीच में कूदते हो। उलटकर किसी पर वार करने में बड़प्पन नहीं है रमा, बड़प्पन है क्षमा करने में।"

"अवश्य ही, क्यों कि वे तुम्हारे पापा जो हैं।" कहकर वह व्यंगपूर्वक हँसा।

उषा तीखे स्वर में बोली, "हाँ हैं, और मैं उनका अहित नहीं चाहती।"

रमानाथ ने खड़े होकर कहा, "तभी तो मैं सोचता था उषा कि तुम इतनी सदय कैसे हो गई मुझ पर। बिना स्वार्थ के मनुष्य कोई काम नहीं करता। यहां आने का, बात करने का अर्थ अब मेरी समझ में आया है, और मैं तुम्हें इसके लिये धन्यवाद देता हूं कि तुम ने अधिक समय तक मुझे अंधकार में नहीं रखा। जानती हो स्नेह के लिये मैंने कभी छीना-झपटी नहीं की, फिर क्यों तुम उसका आडम्बर करके मुझे बाँधने आयी थीं? तुम यदि मुझे छलना चाहती हो तो मैं भी तुम्हें छल सकता हूं," कह कर वह मुड़ा और तेजी से बाहर चला गया।

हत चेतना-सी वह खड़ी रही। उसकी विस्मय विपुल दृष्टि खुले किवाड़ों की ओर ही लगी थी जिनसे होकर वह बाहर चला गया था और अपनी क्षत वेदना का भार उठाये वह एकटक सामने देख रही थी।

कान्ता धीरे-धीरे पास आकर खड़ी हो गई। धीरे से उषा का मुख अपनी ओर घुमाकर बोली, "दादा जिस मिथ्या धारणा को लेकर चले गये हैं वह अधिक समय तक टिकेगी नहीं उषा। उन्हें यदि ठोकरें ही खानी हैं तो खाने दे। हाँ, तुझ से इतना मैं अवश्य कहूँगा कि जो कुछ तू उन्हें दे चुकी है, उसे वापस मत लौटाना। लेना तो सभी जानते हैं पर जो देना नहीं जानते वह मनुष्य नहीं है।"

उषा ने इसपर कुछ भी नहीं कहा। क्या होगा सोचकर। एक आशा का ही तो उल्लास था वह यदि नष्ट हो ही गया तो शिकायत कैसी, फिर अपने लिये तो उसे कुछ चाहिये भी नहीं। उसने प्रेम किया है प्रेम का प्रतिदान नहीं मांगा, तब छल वह क्यों करना चाहेगी? रमानाथ की ओर से ध्यान हटाकर बोली, "मैं कुछ मांगने आई थी कान्ता।"

"क्या?"

"तू दीदी के लिये रमा से कह।"

कान्ता सुनते ही ऐसे चौंकी जैसे कमरे में विस्फोट हो गया हो, "क्या मतलब?"

"तू ने मुझे मांगा था और मैं रमा को मांग रही हूँ, अपने लिये नहीं

दीदी के लिये। उसके सिवा और कोई नहीं है जो दीदी को उठा सके। मैंने दीदी और मां को वचन दिया है कान्ता, उसे तोड़ देने की लज्जा तू मुझे न ओढ़ने देना।"

कान्ता के मुख से आवाज ही नहीं निकली। रमानाथ को जिस राह से वह हटाना चाहती थी उसके लिये उषा ने साथ तो दिया नहीं उल्टे उसे पंक में घसीट ले गई। आशा के लिये मन में कोई मैल अवश्य नहीं था पर उसकी भाभी के रूप में कल्पना करना उसे ज़रा भी अच्छा नहीं लगा। उषा पर उसे क्रोध आ गया। मुख से कुछ न कहकर वह तीव्र दृष्टि से देखने लगी।

बुखार से उषा का बदन जल रहा था। उसे लग रहा था जैसे कमरा उसकी आँखों में घूम रहा है और उसके पैर स्थिर रहने से विद्रोह कर रहे हैं। आँखों पर हाथ फिरा कर कहा, "मेरी तबियत ठीक नहीं है कान्ता। मैं घर जाऊंगी। किसी को भेज कर तू टैक्सी मंगवादे," कहते-कहते वह जमीन पर ही बैठ गई और दीवार से टिककर उसने आँखें बन्द करलीं।

कान्ता ने घबराकर पुकारा, "उषा, अरे तुझे तो बुखार है।"

एक पल के लिये नेत्र खोल कर उषा ने फिर बन्द कर लिये। उसकी श्वास जैसे रुद्ध हो रही थी। किसी को खोजने के लिये उसने इधर उधर नहीं देखा पर उसे न पा सकने की पीड़ा उसकी विह्वल वाणी में ध्वनित हो उठी, "मां।"

विवशता से कान्ता की आँखों में आंसू भर आये। हे भगवान् यह एकदम क्या हो गया। रो कर पुकारा "उषा।"

"मां।"

उषा ने दौड़कर सोये हुए रतिनाथ को झिंझोड़ डाला, "अरे रति।" रति हड़बड़ा कर बोला, "क्या है दीदी ?"

कान्ता रोती हुई बोली, "दौड़कर एक टैक्सी ले आ, उषा को न जाने क्या हो गया है।"

रतिनाथ सिर पर पैर रख कर भाग खड़ा हुआ।

## अठारहवाँ अध्याय

दिल्ली से लौटने के बाद तिवारी जी को उषा की बीमारी का पता चला। न जाने क्यों उसका सूखा मुख देखकर प्रथम बार उनके मुख पर चिन्ता की छाया सी घिर आई। उषा उन्हें देखकर धीरे से हंसी, बोली, "हमारे लिये कुछ लाये नहीं पापा ?" रोग मनुष्य के स्नेह के सुप्त कपाट खोल देता है। जिस पापा के लिये उसके मन में इतनी घृणा और वितृष्णा थी और जिनका विरोध उसने पग-पग पर किया था उसका चिन्ह भी उसके स्वर में नहीं था। एक भोली अबोध बालिका के समान वह तिवारीजी के मुख की ओर उत्सुक नेत्रों से देख रही थी।

मन की चिन्ता मन में ही छिपाकर तिवारीजी ने कहा, "लायें हैं बेटी। तू अच्छी हो जा फिर देंगे।"

उषा मुस्कराकर बोली, "हम जानते हैं तुम कुछ लाये नहीं हो। हमारी याद ही नहीं आई होगी तुम्हें, सच कहते हैं न ?"

तिवारीजी झूठ नहीं बोल सके, "कुछ ऐसी झंझटों में फंसे हम बेटी कि हमें किसी का ध्यान ही नहीं रहा। महीने भर में ही तुमने यह क्या हालत कर ली है उषा, मुझे समाचार भी नहीं दिया।"

"बीमारी की मुझे चिन्ता नहीं है पापा। मैं इम्तहान नहीं दे पाई। मेरा साल खराब हो गया अब मुझे फिर थर्ड ईयर में पढ़ना पड़ेगा। वही किताबें वही रोज का क्रम, मन ऊब जाता है पापा।"

तिवारीजी उसके मुख पर हाथ फिराते हुए चुप बैठे रहे, कुछ बोले नहीं। उषा का यह हाल देखकर उन्हें अपने पर ग्लानि हो आई थी। उधर संसद में उन पर अविश्वास प्रस्ताव पास कर दिया गया था। गुप्त रूप से उनके कार्य कलापों का विवरण अध्यक्ष के पास पहुँच चुका था और पहुँचाने वाला रमानाथ के सिवा और कोई नहीं हो सकता था इसका उन्हें विश्वास था। उन्हें अपनी सदस्यता से हाथ धोना पड़ेगा यह वे जानते थे। उन्होंने रमानाथ से साक्षात करने का तय करके उषा से कहा, "अच्छा बेटी आज तो हम जा रहे हैं, शाम को हम उपाध्याय को लेकर आयेंगे। तुम अच्छी हो जाओगी।"

उठकर वह अन्दर गये। आशा उन्हें अभी तक दिखाई नहीं दी थी।, उसके सामने वह आई नहीं थी और शान्ता देवी की ओर देखने का उन्हें साहस नहीं हो रहा था। उनकी सम्पूर्ण श्री लुट चुकी थी। हारे हुए जुआरी के समान वे अपना सब कुछ लुटाकर बैठी थीं। तिवारी जी की ओर देखकर उन्होंने पूछा, "भगवान् कहाँ है ?"

तिवारीजी के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं था।

शान्तादेवी ने कृष्ण की मूर्ति की ओर देखते हुए कहा, "मैं कितना पुकारती हूँ उन्हें। कितना कहती हूँ कि उषा की बीमारी मुझे दे दो लेकिन वे सुनते ही नहीं। लोग कहते हैं वे घट-घट वासी है और जो उन्हें सच्चे मन से पुकारता है उसकी पुकार वे अवश्य सुनते है फिर मेरा क्यों नहीं सुनते। भगवान क्या पुकारने से भी नहीं आते ?"

तिवारीजी के हृदय में हलचल सी होने लगी। न जाने क्या होने वाला था। परिवार के लिये उन्होंने वास्तव में कभी नहीं सोचा था और सन्तान के लिये भी उन्हें कोई मोह नहीं था। उनके 'अहं' और स्वार्थ की तुष्टि तक ही उनका संसार सीमित था। ओह यह रमानाथ। तिवारीजी का जी चाहा कि उसका गला दबा दें। शान्तादेवी के प्रश्न से बचने के लिये वह तुरन्त ही घर से बाहर निकल आये।

भोंसले भी जैसे उनकी प्रतीक्षा में ही था, देखते ही बोला, "बुरा

हुआ तिवारी, जी। कार वाला मामला अब अदालत के सामने पहुँच गया है। हमारे विरुद्ध सबूत भी इतने अधिक हैं कि कोई सफाई नहीं दी जा सकेगी। तुम्हारे पीछे कुछ हो नहीं सकता था, पन्द्रह तारीख को सदन की बैठक में विचार किया जाएगा। बताओ क्या करें ?"

तिवारी जी का मुख पीला पड़ गया। जितना रुपया फूँका है उतना तो भी निकल सकता था और तब यह बंगला, कार, कोठी सब उनके हाथ से निकल जाएँगे। उन्होंने अन्तिम पासा फेंका, "किसी तरह अध्यक्ष को अपनी ओर नहीं मिलाया जा सकेगा ?"

भोंसले सोचकर बोला, "हूँ, मिलाया क्यों नहीं जा सकता ? एक काम करो, तुम आशा का हाथ मुझे पकड़ा दो। चौदह को रजिस्ट्री हो जाय बस आगे का काम मैं देख लूँगा। वे एक बड़ी सहायिका साबित हो सकती है। क्या कहते हो ?"

'मुझे कोई आपत्ति नहीं। किसी प्रकार इस जंजाल से मुक्ति दिला दो। सदस्यता गई भाड़ में, इज्जत बच जाय सो ही बहुत है। कम्बख्त इस रमानाथ ने न जाने किस जन्म की दुश्मनी निकाली है। इस अकेले का काम यह नहीं हो सकता। भोंसले, यशपाल आदि का भी इसमें हाथ होना चाहिए।"

"होना क्या चाहिए, है ही। कमबख्त न स्वयं खा सके न हमें खाने दिया। खैर जाते-जाते भी कुछ तो दबा ही लेंगे।" जेब से पाँच हजार का एक चैक निकाल कर देते हुए कहा, 'यह मेरी ओर से भेंट है।"

तिवारी जी ने आनाकानी नहीं की, चैक लेकर जेब में रख लिया।

"बंगले का काम कैसा चल रहा है ?"

"आधे से अधिक तैयार हो चुका है"

"उस रामनाथन से कहो यार अपना भी काम जमा दे।"

"मैं उसी के पास जा रहा हूँ। अच्छा चलूँ।"

मार्च का अन्त था। मौसम गर्म हो चुका था। गर्म कॉफी के प्रभाव से तिवारी जी के ललाट पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। रूमाल

निकाल कर उन्होंने पसीना सुखाया और कार लेकर रामनाथन के यहाँ चल दिये। सब चिन्ताओं के बीच रह रह कर उनके नेत्रों में उषा का मुख नाच उठता था। वह सूख गई थी। उठी हुई नासिका और अन्दर धुसी हुई बड़ी-बड़ी आँखों के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता था। उपाध्याय ने उनसे कह दिया था कि उसका केस वह नहीं सम्हाल सकेगा। टाइफाइड बिगड़ चुका है, वे चाहें तो कलकत्ता से डाक्टर चटर्जी को बुला लें।

रामनाथन के बंगले के सामने पहुंच कर उन्होंने कार छोड़ दी। तिवारी जी को देखते ही वह लपक के बोला, "आइये तिवारी साहब। मैं खुद आप से मिलना चाहता था। लगता है मेरी पुकार आप तक पहुँच गई। कहिए कैसे कष्ट किया ?"

"कष्ट क्या राम साहब, यही जरा बंगले के लिए दो गाड़ी ईंटें चाहिए। रुपये मैं आपको दो-तीन दिन में भिजवा दूँगा।"

रामनाथन तिवारी जी का हाथ दबा कर बोला, "रुपये की कोई जरूरत नहीं है मिस्टर तिवारी। आपकी सेवा करने का सौभाग्य मुझे मिल रहा है यह भी तो कम नहीं है। ईंटें कल पहुँच जाएंगी लेकिन एक कष्ट मुझे आपको देना है। जयनाथन लकड़ियों का ठेका लेना चाहता है। पांच उम्मीदवार और हैं। आप जरा उसका प्रार्थनापत्र 'फारवर्ड' करवा दें, कृपा होगी।"

"कृपा की इसमें क्या बात है राम साहब। आपके काम आ सकूंगा, यह प्रसन्नता की बात है। जो भी मैं कर सकता हूं अवश्य करूंगा। हाँ एक निवेदन है। गजानन भोंसले भी दो गाड़ी ईंटें चाहते हैं। प्रार्थना-पत्र उन्हीं के द्वारा आगे जाएगा और मैं उनका मित्र हूं आप जरा ध्यान रखियेगा।"

"अवश्य। कहिए, कुछ पियेंगे ?"

तिवारी जी खड़े होकर बोले, "आज तो चलता हूं। छोटी लड़की बीमार है, बड़ी के विवाह का प्रबन्ध करना है। सोचता हूँ बंगला जल्दी

ही तैयार हो जाता तो अधिक सुविधा रहती। सब अपने पैरों पर खड़े हो जायें तो मेरा पिता का कर्त्तव्य पूरा हो जाये और मैं देश के कार्य में अपने को लगा दूं।"

"जी हाँ, सो तो है ही।

"अच्छा चलता हूँ!"

आपेरा से तिवारी जी सीधे कोलाबा की ओर रवाना हो गये। आज वे बहुत चिन्तित थे। आशा का विवाह भोंसले से होगा इसका निश्चय वे कर चुके थे, शायद अध्यक्ष पर भोंसले कोई प्रभाव डाल दे और उनका मान रह जाय। वे कुछ भी नहीं खोना चाहते थे। सोचते थे इतना बटोर लेंगे जिससे अगले चुनावों को जीत सकें और जनता पर पुनः निर्वाचित होकर अपनी देश-भक्ति का सिक्का बिठा देंगे पर यह यशपाल, यह रमानाथ। काश वे इन लोगों का मुंह बन्द कर सकते! उषा का प्रलोभन देकर भी वे रमानाथ को अपनी ओर नहीं खींच सके। यह युवक क्या बिल्कुल ही पत्थर है? नारी के रूप का क्या इस पर प्रभाव नहीं होता और अब? अब तो उषा को देने के लिए वे सोच ही नहीं सकते थे।

"अरे तिवारी जी?"

तिवारी जी ने झटके से ब्रेक लगा दिया, "अजीब आदमी हो यार इस प्रकार कार के आगे भागते हो, दब जाते तो? कौन नरेन्द्र है क्या?"

नरेन्द्र ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया, कहा, "जी हाँ। पांच, छह दिन से यहीं हूँ।"

"इस बार इतनी लम्बी छुट्टी कैसे मिल गई, वरना तू तो आने से पहले जाने की बात करने लगता था।"

दास बोला, "विवाह की खुशी जो न कराले सो कम है। पांच को विवाह है।"

तिवारी जी चकित होकर बोले, "एकाएक कैसे, कहाँ किया है सम्बन्ध?"

दाम ने तान छिपा ली, "यहीं, कोई प्रसिद्ध घराना नहीं है बताने पर भी पहचान नहीं सकोगे और भाई अपने को तो लड़की चाहिए घराना और नाम लेकर चाटना तो है नहीं। बन सके तो आज आशा उषा और उसकी मां को भेज देना।

तिवारी जी को फिर चोट-सी लगी, "उषा बीमार है और शान्ता, वह···।" तिवारी जी से अपना वाक्य पूरा नहीं हो सका।

दाम चौंककर बोला, "क्या हुआ उषा को ?"

"टायफाइड था, रिलेप्स हो गया। उपाध्याय तो ना कर चुका है, कलकत्ता से चटर्जी को बुलवाने का विचार कर रहा हूं। सोचता हूं आशा के विवाह के पश्चात उसे बाहर ले जाऊं, यहां रहकर तो उसकी तबियत सुधरेगी नहीं। आशा का विवाह तय कर दिया है अगले सप्ताह रजिस्ट्री हो जाएगी। तुम लोग कहाँ से आ रहे हो ?"

"ईश्वर को रिश्वत पिलाकर लौट रहे हैं। पूरा प्रपंची है वह भी, बिना लिये कुछ देना नहीं चाहता।" दाम की इस कटूक्ति को सुनकर तिवारीजी कट गये, "आप बड़ी कड़वी बात कहते हो। कोई और होता तो अभी तक तुमसे लड़ पड़ता। बचपन की दोस्ती आगे आ जाती है वरना, मैं जाता हूं।"

नरेन्द्रनाथ और दाम ने हाथ जोड़कर उन्हें विदा दी। तिवारीजी आगे बढ़ गये। दाम की बात उन्हें चुभ गई थी।

फ्लैट के नीचे कार रोक कर वे ऊपर चढ़ गये। आशा ने किवाड़ खोलते ही कहा, "अगले सप्ताह विवाह है तेरा, जो तैयारी करना हो कर लेना।"

आशा हतबुद्धि सी होकर उनकी ओर देखने लगी। विवाह किससे, क्यों। उसकी बुद्धि कुंठित हो गई।

उषा के पास जाकर बोले, "कैसा जी है बेटी ?"

तिवारीजी से स्नेह की अपेक्षा उषा ने कभी नहीं की थी यद्यपि उनके दिल्ली से लौटने के बाद से वह उनकी सहृदयता ही प्राप्त कर

रही थी। उनका यह मीठा स्वर सुनकर उसके नेत्र भर आये, कहा, "अच्छी होने की मैं जितनी कोशिश करती हूँ उतनी ही मैं बीमार होती जा रही हूँ पापा। सच पापा, क्या मैं अब अच्छी नहीं होऊँगी ?"

तिवारी जी के मन में दबा हुआ पिता का स्नेह उमड़ पड़ा। उषा का निराशा से भरा स्वर सुनकर उनका मन भर आया। उसके सिर के पास बैठकर बोले, "क्यों नहीं अच्छी हो जायगी बेटी। आशा का विवाह हो जाय फिर मैं तुझे यहाँ से बाहर ले चलूँगा।"

उषा ने उनका हाथ अपने दुर्बल हाथों में दबाकर कहा, "मैं यदि अच्छी न होऊं तो क्या तुम मेरी दो तीन बातें नहीं मानोगे पापा ? देखो झूठ मत बोलना। मरते हुए मनुष्य से कोई झूठे वायदे नहीं करता। तुम खूब जानते हो, बाहर जाऊं या यहीं रहूं मैं बचूँगी नहीं। बोलो मानोगे ?"

तिवारीजी मन की वेदना को बाहर प्रकट न कर उसका मुख सहला कर बोले, "ऐसी बातें नहीं करते बेटी। तू अच्छी हो जाएगी और मुझे भी वायदे नहीं करने पड़ेंगे। तू चुपचाप आँखें तो बन्द करले। डाक्टर कहता है तुझे अधिक नहीं बोलना चाहिये," कहकर उन्होंने अपने हाथ से उसके नेत्र बन्द कर दिये। कुछ क्षण चुपचाप उसके शीर्ण मुख को देखते रहे फिर झुककर उसके मुंदे नेत्रों को चूम लिया। उषा का मुख तृप्ति से खिल गया।

तिवारीजी शान्तादेवी के पास आये। वे कृष्ण की मूर्ति के सामने बैठी कह रही थीं, "तुम मेरी सुनते क्यों नहीं। उषा की बीमारी मुझे दे दो।"

तिवारीजी ने ठंडे स्वर में कहा, "क्यों पागल हुई जा रही हो। उषा ठीक हो जाएगी।"

शान्तादेवी ने ध्यान नहीं दिया, "कहते हैं उपवास से भगवान् मिलता है, प्रार्थना से मिलता है लेकिन मुझे तो वह कहीं भी नहीं मिला। यहाँ भी नहीं, मन्दिरों में भी नहीं। तुम्हें भी नहीं मिला क्या वह कहीं ?"

तिवारीजी का मुख विवर्ण हो गया। उसका ध्यान दूसरी ओर

फेरने के लिये बोले, "आशा का विवाह तय कर आया हूँ लेकिन देखो उषा से कुछ भी न कहना। ऐसी कोई बात उसके सामने नहीं होनी चाहिये जिससे उसे धक्का पहुँचे। वर यहीं का है। आशा को कोई कष्ट नहीं होगा।" आशा की ओर मुड़कर कहा, "भोंसले तुम्हें नापसन्द नहीं होना चाहिये।"

आशा ने उनके पैर पकड़ लिये, बलिदान किये जाने वाले बकरे का सा भाव उसकी आँखों में था, "नहीं पापा भोंसले से नहीं। इससे तो अच्छा है कि तुम मुझे मार डालो, इतना अत्याचार न करो पापा कि जिसे मैं सह ही न सकूँ।"

आशा जमीन पर मुख लुढ़का कर बच्चों के समान रो पड़ी। उषा का सहारा होता तो वह तिवारीजी के विरुद्ध तनकर खड़ी हो जाती। हाय रे भाग्य, मन को जब रमानाथ के अनुकूल किया तो उसने भोंसले को बीच में ला पटका, उस व्यक्ति को जिसके पत्नी है बच्चे हैं और जो उम्र में उसके पिता के बराबर है। इससे भारी अन्याय और अत्याचार तो हो भी नहीं सकता था। कितनी विवश, कितनी असहाय है वह आज। असीम याचना भरी आँखों से उसने शान्तादेवी की ओर देखा। शून्यता के सिवा और कुछ नहीं था उस मुख पर। उषा की तिल-तिल कर मृत्यु उनका सारा रस सारी चेतना सोख चुकी थी। वे तो चलती फिरती लाश के समान थीं। आशा ने जितना साहस संचित किया था उसका एक भी कण अब नहीं बचा था। पापा का आदेश उसे मानना ही होगा फिर क्या होगा मौखिक विरोध करके, और उसने नेत्र पोंछ लिये, रुद्ध स्वर में कहा, "जितना अत्याचार कर सकते हैं कर लीजिये। आज तक ही मुझे कौन-सा स्नेह, कौन-सी सुरक्षा मिली है आप से जो अब उसकी आशा को मन में स्थान दूँगी। न जाने कितने जीवन प्रतिदिन बर्बाद हो जाते हैं, उनमें एक मैं भी सही," कहकर वह धीरे-धीरे वहाँ से चली गई।

शान्तादेवी पाषाणावस्थित-सी न जाने क्या सोच रही थीं।

आलमारी खोल कर तिवारीजी ने कुछ कागज निकाले। अभय के पास जो कागज थे उन्हीं की प्रतिलिपि थी और उनका उनसे लिखित उत्तर मांगा गया था। पढ़ते-पढ़ते उनका मुख पीला पड़ गया। सफाई के लिये वे रमानाथ को अपने पक्ष में कर सकते तो बच सकते थे लेकिन वह मानेगा क्यों। वे उन कागजों में खो गये।

शान्तादेवी उठकर उषा के पास आकर बैठ गयी। उषा ने उसी क्षण नेत्र खोल दिये। मां का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "पापा कहते हैं कि मैं अच्छी हो जाउंगी पर मैं चाहती हूं हमेशा यों ही बीमार बनी रहूं। जो स्नेह अभी तक नहीं पा सकी थी वह इस बीमारी ने प्राप्त करवा दिया। पापा इतने बुरे नहीं हैं, मां तुम उनके प्रति मन में कोई दुर्भावना मत रखना।"

शान्तादेवी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उषा धीमे से हंस कर बोली, "रमा कितना नाराज है मां मुझसे। कहता था तुम मुझे धोखा देना चाहती हो, छलना चाहती हो। जी में तो आता है मां कि ऐसा छलूं कि वह विमूढ़ रह जाय। अपने आपको न जाने कितना विद्वान्, कितना बड़ा समझता है।" कुछ पल बाद धीरे से कहा, "उसे देखने का बहुत मन होता है मां, क्या मालूम वह अभी तक मुझ से नाराज ही हो। जरूर है तभी तो कान्ता को नहीं आने दिया। अब तो कान्ता का भी विवाह हो जाएगा। मां, एक बार दोनों को बुलवाओ न, यहां मुझे रमा से एक बात कहनी है।"

इस बार शान्तादेवी ने चुपके से उसके कान के पास मुख ले जाकर कहा, "चल हम दोनों मां-बेटी यहां से भाग चलें।

इस असम्बद्ध बात को सुन कर उषा चकित होकर बोली, "क्यों ?"

इस क्यों का उत्तर उन्होंने दिया ही नहीं। उषा उनका मुख देखने लगी। उसकी बात पर उन्होंने कोई ध्यान दिया हो ऐसा उसे नहीं लगा और तब एक गहरी सांस लेकर उसने मन ही मन सोचा, मां को न जाने क्या हो गया है। चुपचाप पड़ी उनके हाथ से खेलने लगी। बात करने

का आजकल उसका बहुत मन होता था लेकिन घर में कोई उससे अधिक बोलता ही नहीं था। उसका मन होता था रमानाथ, कान्ता, दीदी, मां, पापा सब उसके पास बैठे रहें और वह बोलती रहे। मृत्यु की छाया धीरे-धीरे गहरी होती जा रही थी पर इसका उसे कोई दुःख नहीं था। अन्त आएगा ही, देर से आये अथवा शीघ्र, इसकी क्या चिन्ता। जीवन का विलय एक दिन मृत्यु के क्रोड़ में होना ही है, तो वह क्यों सोचे उस पर और क्यों दुःखी करे अपने मन को। मृत्यु से उसे भय नहीं होता, वह उसकी ओर से उदासीन हो चुकी थी। उसके मन में किसी के प्रति क्रोध, आक्रोश नहीं रह गया था, बच्चों जैसी सरलता उसके मुख पर खिल उठी थी। एक कल्पना उसने की और झट मां से कह दिया, "अच्छा मां, मेरे मरने पर रमा क्या रोएगा नहीं ?" कुछ सोचकर कहा, "रोएगा भी तो मैं कहां से देखूंगी ?" और फिर उसने धीरण स्वर में पुकारा, "पापा ?"

तिवारीजी दूसरे ही क्षण उसके पास आकर बोले, "क्या है बेटी ?"

"यहां बैठो पापा।"

शान्तादेवी ने कहा, "यहा नहीं, वहां नहीं, भगवान् कहीं नहीं है, देखूं वह कोठार में तो नहीं छिपा है ?"

उनके जाने पर उषा करुण स्वर में बोली, "मां को यह क्या हो गया है पापा। उनकी एक भी बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी कह रही थीं कि चल उषा अपन दोनों कहीं भाग चलें। तुम उन्हें किसी डाक्टर को दिखाते क्यों नहीं।"

तिवारीजी मुख झुका कर उसके पास बैठ गये, कोई उत्तर नहीं दिया। देते भी क्या, शान्तादेवी की आत्मविस्मृति की चिकित्सा क्या किसी के भी पास थी ?

उषा ने तब कहा, "अच्छा पापा, मरने के बाद आदमी कहाँ जाता है ?"

तिवारीजी उमड़ते हुए आंसुओं को आँखों में ही पी कर बोले, "ऐसी बातें नहीं करते बेटी।"

"उषा मचल कर बोली, "नहीं तुम बताओ, मरने के बाद आदमी जाता कहाँ है।"

तिवारीजी को कहना पड़ा, "उसका शरीर जल जाता है बेटी, पर अपनी अतृप्त इच्छाओं को लिये उसकी आत्मा इस वायुमंडल में ही घूमती रहती है। शरीर का नाश हो जाने पर आत्मा अमर भी रहती है।

"तो क्या पापा शरीर और आत्मा दो अलग-अलग चीजें है ?"

"हाँ बेटी। शरीर स्थूल है और आत्मा सूक्ष्म। शरीर को हम देख सकते हैं आत्मा को नहीं, उसका मात्र अनुभव ही किया जा सकता है। लेकिन अब और नहीं उषा, तू चुपचाप सो जा।"

उषा ने अनुनय करके कहा, "बस थोड़ी-सी बात और पापा। आत्मा क्या सत्य है ?

"हाँ।"

"कैसे ?"

तिवारीजी ने इतस्ततः करके कहा, "वेद कहते हैं, गीता में भी कहा है :

**न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।**
**अजो नित्योः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।**

**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि।**
**यथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानी देही।**

**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।**
**न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।**

गीता ही नहीं और सभी सम्प्रदाय भी तो कहते हैं बेटी कि आत्मा अमर है, उसका कभी नाश नहीं होता। पुराना वस्त्र बदल कर जैसे हम नया वस्त्र पहनते हैं, उसी प्रकार एक शरीर से आत्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। शरीर के साथ यदि आत्मा का भी नाश हो जाता तो इस सृष्टि का क्रम कैसे चलता बेटी। और बेटी शरीर तो मर्त्य है, अपवित्र भी हो सकता है पर आत्मा तो फिर भी पवित्र बनी रह सकती है।

आत्मा की शुद्धि विचारों की शुद्धि पर निर्भर है और विचारों की मनुष्य की दृढ़ता पर।"

उषा ने उदासीन स्वर में कहा, "गीता और पुराणों की बात नहीं, मुझे तुम अपनी बात बताओ कि क्या वास्तव में आत्मा होती है और यदि होती है तो जाती कहाँ है।" कुछ चुप रह कर कहा, "अच्छा, क्या पुनर्जन्म भी सत्य है ?"

तिवारीजी ने धीरे से कहा, "है ही।"

"तो फिर हमें अपने पिछले जन्म की बातें याद क्यों नहीं रहतीं। मैंने कितनी कोशिश की है पापा पर मुझे कुछ भी तो याद नहीं आता। पुनर्जन्म यदि सत्य है तो बताओ मैं पहले क्या थी और मर कर क्या बनूँगी।"

तिवारीजी निरीह से स्वर में बोले, "इसका पता मैं कहाँ से पाऊं बेटी। मनुष्य अपने कर्म के अनुसार जन्म लेता है। तेरे कर्म कदाचित् तुझे फिर मनुष्य योनि में डाल दें और मुझे किसी पशु योनि में। दुःख की प्रतिच्छाया कभी-कभी मनुष्य को आत्म-विस्मृत कर देती है।"

उषा ने बात को पकड़कर क्षीण स्वर में कहा, "अगले जन्म का भय फिर मनुष्य के इस जन्म को उन्नत क्यों नहीं बनाता पापा। यह धोखा, छल मनुष्य क्यों करता है। पुनर्जन्म को किसने देखा है, उसकी बात मैं नहीं करती। मैं इसी जन्म की बात करती हूँ पापा। इस जन्म की उच्चता को क्यों खो देता है मानव। उसे प्राप्त करने का, ऊँचे उठने का प्रयत्न हमसे क्यों नहीं होता। क्यों हम दिन रात इस धोखे के जाल में उलझते चले जाते हैं ?"

तिवारी जी का मुख झुक गया। उषा ने कितना सत्य कहा था। उनके आयत लोचनों के आगे उनका पूर्वजन्म जैसे नृत्य कर उठा। कितना कठोर जाल उनके चारों ओर फैलता जा रहा था। एक दिन इस शरीर का नाश हो जाएगा और यह धन सम्पत्ति सब यहीं पड़े रह जाएंगे। किसके लिए किया है उन्होंने यह सब, किसके लिए।

उषा बहुत थक गई थी फिर भी रुकी नहीं, "लोभ को क्या जीता नहीं जा सकता पापा, मोह का बन्धन क्या काटा नहीं जा सकता ? जो अनित्य है, अनन्त है और अपरिवर्तनशील है उस सत्य को पाना क्या इतना कठिन है ? पापा किताबें मैंने बहुत पढ़ी हैं, वे केवल मन को उलझाती ही हैं, ठीक उत्तर नहीं देतीं। कर्म और आत्मा को तुम सत्य मानते हो तो बताओ इनका भय मनुष्य को बुराई से अच्छाई की ओर क्यों नहीं खींच लाता, क्यों वह मिथ्या के पीछे भागता रहता है।"

तिवारी जी ने झुक कर उसके नेत्र अपने हाथों से बन्द कर दिये। वह उसका पीला मुख नहीं देख सके और धीमे स्वर में बोले, "तेरी तबियत ठीक नहीं है उषा, तेरे इन प्रश्नों का उत्तर खोज सका तो दूँगा। तू मुझे क्षमा कर।"

उषा निमीलित नेत्रों से मुस्करा कर बोली, "बताओगे न ?'

तिवारी जी अपने स्वर को स्वाभाविक करते हुए बोले, "हाँ, अब तू सो जा।" और उषा सचमुच ही उनका हाथ पकड़ कर सो गई।

## उन्नीसवाँ अध्याय

विस्मृति और अशान्ति की उसी दशा में तिवारी जी रमानाथ के सामने आकर खड़े हो गये। रमानाथ उनका मुख देखकर चौंक पड़ा और मन की सारी कटुता भूल कर बोल पड़ा, "आपकी तबियत क्या ठीक नहीं है ?"

"ठीक है," कहकर तिवारी जी कुर्सी पर बैठ गये। उनकी भाराक्रान्त देह से व्यथा और निराशा का इतना तीव्र प्रकाश हुआ कि रमानाथ ने पास आकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "पानी पीएँगे ?"

"नहीं," और तब अचानक ही तिवारी जी की आँखें भर आयीं। तुम्हारे साथ मैंने बहुत बुरा व्यवहार किया था, तुम्हारा जीवन नष्ट किया, लोगों को ठगा और उसका पुरस्कार ईश्वर ने मुझे यहीं दे दिया। सोचता था आगे की कौन जानता है, यहाँ का जीवन क्यों न उन्नत बना लूँ पर वह भी हाथ नहीं आया। मान खोया, प्रतिष्ठा खोई और बेटी को खोने बैठा हूँ। रमानाथ, मेरे जीवन भर की पूँजी ले लो, जितनी चाहो मेरी लज्जा और मर्यादा के छोर तोड़ दो पर मेरी उमा को बचालो। उसे खोकर मैं कुछ भी नहीं पाना चाहता। बाप के दिल की हालत तुम नहीं जानते रमानाथ, मैंने कभी दोनों को बाप का-सा प्यार नहीं दिया, सरे आम उनकी लज्जा को बेचा। कभी पश्चाताप भी नहीं

हुआ लेकिन यह नहीं सोचा था कि अपनी मृत्यु शैया बिछाकर उषा एक दिन मेरी आँखें खोल जाएगी। यहाँ सब धोखा है, सब झूठा है रमानाथ। मैं क्या करूँ।" तिवारी जी मेज पर सिर लुढ़का कर बच्चों की तरह रोने लगे।

रमानाथ काठ हो गया। उषा मर रही है। क्यों, उसे इतने दिन तक पता क्यों नहीं चला कि वह बीमार है। तिवारी जी की कही एक भी बात पर उसका ध्यान नहीं गया। उसने जोर से उन्हें झिंझोड़ कर कहा, "उषा को क्या हो गया, बताते क्यों नहीं।" लेकिन कहते ही वह संतुलित हो गया, धीरे से बोला, "आप घर जाइए, आपका जी अच्छा नहीं है।" और उनकी अपेक्षा किये बिना ही वह फर्म से निकल कर बाहर आ खड़ा हुआ। दूर-दूर तक दृष्टि फैलाकर देखा, कितना विराट कितना चंचल है सब, लेकिन सब जैसे उसके कानों में बेसुरा-सा होकर बजने लगा। सिर झुकाये हुए वह चलने लगा। उषा की बात सोचने की शक्ति भी उसमें नहीं रही थी।

रतिनाथ ने उसे कालबा देवी पर देखा, सूना-सूना-सा और वह चकित होकर दौड़ आया, "आज पैदल कैसे आये दादा, क्या बस नहीं मिली ? यह देखो मेरा हिन्दी में डिस्टिंक्शन आया है।"

रमानाथ बोला नहीं, चुपचाप चलता गया। रतिनाथ मुँह बाये देखता रहा दादा ने एक भी बात नहीं की, उसके डिस्टिंक्शन आने पर भी उसकी पीठ नहीं ठोंकी। जब तक रमानाथ दिखाई दिया वह देखता रहा और तब पास ही एक मकान में घुस गया उसे अभी बहुत काम है।

रमानाथ ने बन्द किवाड़ों के पास बैठ कर पुकारा, "कान्ता ?"

किवाड़ खोलते ही कान्ता उसका मुख देखकर चौंक पड़ी, "तुम्हें क्या हो गया है दादा।"

"पानी पिऊँगा कान्ता।"

कान्ता ने सहारा देकर उसे उठा लिया, कहा अन्दर चल कर बैठो दादा।

रमानाथ ने विरोध नहीं किया। कान्ता के सहारे धीरे-धीरे कमरे में आकर खाट पर बैठ गया। कान्ता ने पल्ले से उसका पसीने से तर मुख पोंछ दिया और पानी का गिलास ओंठों से लगाती हुई बोली, "पैसा इकट्ठा नहीं होगा तो क्या विवाह नहीं होगा दादा ? बस का खर्च बचा-कर तुम इतना क्या जोड़ लोगे। कितनी बार तुमसे मैंने कहा है कि पैदल मत आया करो, पर तुम सुनते नहीं। तुम किसी की बात नहीं मानोगे पर तुम्हारी बात सबको माननी पड़ेगी। तुम्हारी इस निरंकुशता पर मेरा मन जलता है दादा। कितने बर्बर हो तुम।

इतनी सारी बात के उत्तर में रमानाथ ने कहा, "तेरी बात न मान कर अच्छा नहीं किया कान्ता। तिवारी जी को आज देखा, वे जैसे समाप्त हो चुके हैं।"

कान्ता डरकर बोली, "क्या हुआ।"

रमानाथ ने ठीक बात नहीं बताई, कान्ता पर उसे भरोसा नहीं है। वही अपने को शान्त नहीं रख पाया तो वह रख पाएगी और मात्र दस दिन बाद उसका विवाह है, कहा; "तेरा विवाह है न कान्ता।"

"विवाह गया भाड़ में। तुम बात बताओ।"

"बात, बात कुछ भी नहीं है। सच कान्ता, कुछ भी नहीं है।" अचा-नक वह खिलखिला कर हँस पड़ा, "तिवारी जी को मैंने समाप्त कर दिया, चूहे की तरह वे मेरे बिछाये जाल में फँस गये, जनता पर उनके काले कारनामों का चिट्ठा खुल गया और जब उनके हाथों में हथकड़ी पड़ेगी तो मैं हंसूँगा। आ हा हा हा, मैं हंसूँगा।"

कान्ता ने अपने कान बन्द कर लिए, घृणा से स्वर काँप गया "तुम इतने क्षुद्र हो दादा, और तुम्हीं पर मैं गर्व करती थी। छिः छिः क्या कहेगी कान्ता।"

रमानाथ ठठाकर हंस पड़ा, "एक दांव में मैंने दो को समाप्त कर दिया। उषा गई।"

कान्ता पर जैसे किसी ने उबलता हुआ तेल डाल दिया हो इस प्रकार

छटपटाकर बोली, "क्या हुआ उषा को । अरे दादा !" और वह तेजी से नीचे उतर गई । उसकी आँखों में उषा नाच रही थी । वह अस्तव्यस्त दौड़ी और टैक्सी लेकर बैठ गई । फूलती हुई सांस को वश में करने के लिये उसने सिर पर हाथ फिराया, कहा, "दीपमहल कोलाबा कौज वे । जल्दी करो ।"

टैक्सी दौड़ गई ।

दीपमहल के सामने टैक्सी के खड़े होते ही उसने मां की एकमात्र निशानी अंगूठी को ड्राइवर की गोद में फेंक दिया और उसकी जरा भी चिन्ता न करके तीर की तरह ऊपर चढ़ गई । किवाड़ खुले थे, आंधी के समान वह कमरे में घुसी । इसी ओर मुख किये आशा खड़ी थी, निस्तेज, बुझी हुई सी, मानों महीनों से सोई न हो ।

कान्ता छटपटाती हुई बोली, "दीदी, उषा ?"

आशा ने असीम शान्ति से अन्दर के कमरे की ओर इंगित कर दिया । कान्ता दौड़ती हुई अन्दर जा पहुंची । सामने ही सफेद दूध से उज्ज्वल बिस्तर पर वैसी ही श्वेत उषा लेटी हुई थी । कान्ता फटी-फटी आँखों से उसके कंकाल से मुख को देखने लगी । वह रो तक न सकी ।

आहट पाकर उषा ने अपने नेत्र खोल दिये, कुछ पल ध्यान से देखती रही और तब धीरे से उसी मधुर स्वर में उसने कान्ता को पुकारा, जिस पर वह मोहित थी, "आ कान्ता ।"

कान्ता न हिली, न डुली वैसी ही खड़ी रही ।

उषा धीरे से हंसी, ऐसी हंसी जिससे कभी फूल झड़ते थे और इस अत्यन्त कष्ट में भी जिसकी मधुरता रत्ती भर भी कम नहीं हुई थी । बोली, "तेरा विवाह है, मैं बहुत प्रसन्न हूँ । कामना करती हूँ तू चिर सुहागिन रहे । लेकिन खड़ी क्यों है बैठ न," कहकर उसने हाथ उठाना चाहा लेकिन उठा नहीं सकी । "न जाने सारी शक्ति कहाँ गुम होती जा रही है कान्ता, हाथ तक नहीं उठाया जाता । अब तो मैं थक गई हूं । बिस्तर पर पड़े-पड़े मैं हैरान हो गई हूं ।"

कान्ता ने पलकें झपकाया । उषा को देखा और दूसरे ही पल उसकी छाती पर लोट गई, "अरे उषा, यह क्या कर लिया तू ने ।" उषा को लेकर कितने स्वप्न देखे थे और कितना रमानाथ को खिजाया था, वे सब एक-एक करके उसकी आँखों के आगे तैरने लगे । वही उषा आज क्या हो गई है और वह आज तक उसे देखने भी नहीं आ सकी । वह विवाह रचाये बैठी थी और उषा ने मृत्यु की सेज सजाई थी । मारे घृणा और धिक्कार के उसे मर जाने की इच्छा हो आई ।

कान्ता के आंसू उषा की छाती में जैसे सामने लगे । बहुत कोशिश के बाद उसने अपना हाथ उठाकर उसके सिर पर रख दिया और उसके बालों को उलझाते-सुलझाते हुए कहा, "रो मत कान्ता । जीवन मनुष्य के हाथ में भले ही हो पर मृत्यु नहीं है । अपने को स्वस्थ करने की जितनी भी कोशिश मैंने की है, मैं उतनी ही असफल रही । सभी कहते हैं कि मनुष्य की इच्छाशक्ति मृत्यु को भी रोक सकती है लेकिन मुझे यह मिथ्या लगता है । मरना मैं नहीं चाहती, जीवन की सबसे बड़ी कामना थी कि एक दिन पापा को राह पर ले आऊंगी, बलिदान करके नहीं, अपनी दृढ़ता और सत्य के बल पर लेकिन वह नहीं हुआ । पापा को मैं नहीं पा सकी । मेरी मृत्यु भी उन्हें सत्य को पकड़ा दे तो सच मान मुझे मरने में भी दुःख नहीं होगा ।" कह कर वह बहुत ही अधिक शिथिल सी हो गई ।

कान्ता की छाती फटने लगी । दादा ने यह क्या कर डाला । उषा को पता चल गया तो उसे कितना धक्का लगेगा । उसकी छाती में मुख छिपाये हुए आर्त्त स्वर में कहा, "यह क्या हो गया उषा । तू मुझे छोड़कर कहाँ जा रही है । जाना ही तू ने विचारा है तो मुझे भी ले चल । नहीं चाहिये मुझे जीवन, नहीं चाहती मैं वैवाहिक सुख । तेरी मृत्यु सेज पर मैं विवाह मंडप नहीं रचाऊंगी । उषा·······।"

उषा ने बोलना चाहा पर स्वर ने साथ नहीं दिया । उसका कंठ रुद्ध हो रहा था । कान्ता के सिर पर रखा उसका हाथ थक कर नीचे

गिर गया। अस्पष्ट सी आह् उसके मुख से निकल कर कमरे में फैल गयी।

न जाने कहाँ से धूलि-धूसरित देह लिये शान्तादेवी कमरे में आकर खड़ी हो गयीं। सिर के बाल रूखे से मुख के चारों ओर बिखर गये थे। शरीर पर थी मैली सी साड़ी और आँखों में शून्य भाव। जिस प्रश्न को प्रायः सभी से पूछ चुकी थीं उसे ही उन्होंने कान्ता से भी दोहरा दिया। "मैंने कोठार में, घर में, मन्दिर में सब जगह भगवान् को ढूँढ़ा पर वे नहीं मिले। कितना कहा है उनसे कि उषा की बीमारी मुझे दे दो पर वे सुनते ही नहीं। क्या तुमने भी नहीं देखा उन्हें?"

कान्ता ने उषा की छाती पर से मुख उठाकर शान्तादेवी की ओर देखा और रोकर बोली, "मां।"

शान्तादेवी की आँखों में आंसू का नाम भी नहीं था, "ओह् लगता है वे अभी तक छिपे हुए हैं तभी तो नहीं आते। मैं कितना पुकारती हूँ उन्हें फिर भी वे आते क्यों नहीं?" और तब धीरे-धीरे वे अन्दर चली गयीं।

उषा ने व्याकुलता से सिर हिलाकर कहा, "मैं जीना चाहती हूँ कान्ता, मां के लिये जीना चाहती हूँ और यदि मृत्यु ही मेरा प्राप्य है तो मैं चाहती हूँ वे भी मेरे साथ ही मर जायें। जीवन भर जलती रहीं। ईश्वर अन्त समय में भी उन्हें शान्ति नहीं देना चाहता। हे भगवान्।"

तर्क ने जिस सत्य को दबाया, व्यथा ने उसी को खोल दिया। कान्ता विकृत कंठ से बोल पड़ी, "कहाँ है भगवान्, मिथ्या है सब, ढकोसला है। ईश्वर यदि सत्य होता तो इतना अन्याय नहीं करता। कहते हैं न सब, जो उसे सच्चे मन से पुकारता है उसके पास वह अवश्य आता है। मेरी पुकार में असत्य हो सकता है, दीदी भी कृत्रिम हो सकती है लेकिन मां की पुकार में तो कृत्रिमता नहीं है, फिर क्यों नहीं वह उनकी सुनता। उसके जैसा छली, प्रपंची और शैतान कोई भी नहीं है।"

उषा ने कुछ कहा नहीं, केवल उसकी बन्द आँखों की कोरों से आंसू झर पड़े।

आशा धीरे-धीरे पास आकर बैठ गई। कान्ता की ओर देखकर वह हंसी, पर लगता था वह हंसी जीवित मनुष्य की हंसी नहीं थी, मृत मनुष्य की मुस्कराहट थी। कान्ता से देखा नहीं गया उसने दोनों हाथों से मुख छिपा लिया।

"दवा पी ले उषा।"

उषा ने आँखें खोल कर कहा, "बहुत पी है दीदी पर लाभ तो कुछ भी नहीं हुआ। अब तो पीने का जी नहीं होता। डाक्टर यदि मृत्यु को भी रोक लें तो यम को कौन पूछेगा?" फिर कान्ता से कहा, "तुझसे रमा को मांगा था न कान्ता। मेरे जीवन में तू उसे न दे सकी लेकिन मृत्यु के बाद जरूर दे देना। मैंने उसे धोखा नहीं दिया है। अपने मन को वह स्वयं ही नहीं समझ सका, इसीलिये अब उसे ठगने का मन होता है। तू उससे कह देना मैं उससे मिलना चाहती हूँ।" और फिर आँखें बन्द कर लीं।

कान्ता की आँखों से आंसू गिर रहे थे। मुख झुकाये हुए आशा क्या सोच रही थी वही जाने।

## बीसवाँ अध्याय

तिवारी जी आरोपों का उत्तर नहीं दे सके। शर्मा ने अपनी सफाई में सारा भार तिवारी जी पर डाल दिया और विरोधी सदस्य अपनी आकांक्षा को पूर्ण देखकर मन ही मन खिल उठे। यशपाल मौखिक संवेदना प्रकट कर बोला, "बड़ा खेद है मिस्टर तिवारी, पर आप जानते हैं कभी न कभी सत्य प्रकट हो ही जाता है।"

तिवारी जी करुण भाव से उसकी ओर देख कर रह गये।

श्रीमती मल्होत्रा का मन हुआ यशपाल के मुख पर थप्पड़ मार दें। मनुष्य में सहृदयता का न होना कितना बड़ा अभिशाप है। तिवारी जी का मुख देख कर उन्हें दुःख हो रहा था। उन्होंने अध्यक्ष से प्रार्थना की, "स्वार्थ एक का नहीं सभी का होता है। मिस्टर तिवारी ने क्या किया है यह सभी जानते हैं, और यह भी हमें मालूम है कि वे अकेले ही ऐसे नहीं हैं। इसी कारण मेरा अनुरोध है कि उन्हें अवसर दिया जाय।"

अध्यक्ष तिवारी जी को समय देने के लिए सन्नद्ध हो गये पर उन्होंने स्वयं इन्कार कर दिया। पूछने पर कहा, "समय लेकर क्या होगा। जो लज्जा मिल चुकी है वह धुल नहीं सकती। सत्ता की पिपासा ने मेरा मनुष्यत्व कुचल दिया था, उसी पिपासा को अब मैं नहीं अपनाना चाहता। जिस दिन शर्मा का केस हुआ था उसी दिन मुझे सम्हल जाना चाहिए

था पर मैं नहीं समझ पाया। मेरा इतिहास भी तो ऐसा नहीं है कि उसे लेकर गर्व कर सकूँ। मानव होकर, पिता होकर भी मैंने अपने बच्चों से, अपनी पत्नी से दानव का-सा व्यवहार किया है। न जाने कितनों के गले का कौर छीना है। कराहों की झनझनाहट के सिवा मैंने कुछ और नहीं सुना, अपने को रक्ताच्छन्न देखने के सिवा मैंने और कुछ नहीं देखा। कदाचित् मैं इसी भ्रान्ति में फँसा रहकर जीवन के अन्तिम छोर तक पहुँच जाता पर मेरी छोटी लड़की ने मृत्यु राज सिखाकर मेरी राह का कीचड़ हटा दिया, मुझे प्रकाश मिल गया जो मिला अपनी बेटी के जीवन पर। ऐसा ही पिता हूँ मैं, नर पिशाच हूँ।" तिवारी जी ने अपने हाथों में मुँह छिपा लिया।

श्रीमती मल्होत्रा आँसू को रोक नहीं पायीं, आँखों पर आँचल दबा कर वे सदन से बाहर निकल गयीं। किसी का मुँह नहीं उठ सका। तिवारी जी का स्वर अभी भी जैसे सदन की दीवारों से टकरा रहा था।

तिवारी जी का केस आगे रख दिया गया। सदन से बाहर आकर वे गाड़ी के पास आए और कार की ओर देखा। मन नहीं हुआ कि उसमें बैठें। न जाने कितने अभागों का खून का पैसा उसमें लिपटा होगा। कार को वहीं छोड़ कर वे चल दिये।

रमानाथ मेज पर मुँह झुकाए डूबा हुआ बैठा था। तिवारी जी पैरों को घसीट कर ऊपर तक ले गये। बोले, "उषा ने तुम्हें बुलाया है रमानाथ, लेकिन देखो उससे यह न कहना कि मेरे साथ क्या हुआ है। उसे यही विश्वास लेकर जाने दो कि मैं अपनी लज्जा और मर्यादा को वापस लौटा लाया हूँ।"

रमानाथ ने वेदनाच्छन्न दृष्टि तिवारी जी के मुख पर निबद्ध कर कहा, "चलिये।"

कान्ता उषा के पैरों के पास सिर रखे पड़ी थी। उषा का सिर आशा की गोद में था। रमानाथ उसे देखते ही चौंक पड़ा। तिवारी जी

ने उषा के सिर पर हाथ रख कर पुकारा, 'उषा बेटी, देख तो कौन आया है ?

डूबते नेत्रों की अर्धनिमीलित दृष्टि तिवारी जी की ओर उठाकर उषा ने क्षीण स्वर में पूछा, "मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं लाये पापा। मुझे ठीक से बताओ न पापा आत्मा क्या है।"

तिवारी जी ने आँखों के आँसू रोक कर कहा," मैं नहीं खोज सका बेटी इसका उत्तर।"

"कोई नहीं बताता। मैं आत्मा को समझना चाहती हूँ, ईश्वर को जानना चाहती हूँ। ये सत्य है या मनुष्य का कोरा भ्रम, कौन मुझे समझा देगा पापा," कहकर उसने फिर आँखें बन्द करलीं और बहुत देर तक चुप पड़ी रही। आशा की आँखों से आँसू टपक-टपक कर उषा के बालों में समाने लगे। कान्ता की खुली दृष्टि छत की ओर लगी थी उसने कदाचित् किसी की बात नहीं सुनी थी।

तिवारी जी उसके पलंग पर मुख झुका कर रोने लगे। छल कपट से भरे जीवन के अन्तिम छोर पर उषा को खोकर उन्होंने प्रकाश की किरण पाई थी। उसी जीवन को लेकर वे आज भी चलने को तैयार हैं, बस कोई उषा को उन्हें लौटा दे।

रमानाथ ने उसके पैरों पर हाथ रखकर पुकारा, "उषा !"

बहुत ही कष्ट से आँखें खोलकर उषा ने देखा। परिचय का कोई भाव उसके मुख पर नहीं था।

रमानाथ ने आँसू रोक कर फिर कहा, "मैं रमा हूँ उषा।"

डूबती दृष्टि से वह बहुत देर तक उसकी ओर देखती रही। धीरे-धीरे एक अपूर्व मधुरता आँखों में छलक उठी। मृत्यु की छाया से घिरे उसके मुख पर सुख और सन्तोष की गहरी रेखा खिंच गई, कहा, "रमा ?"

"हाँ।"

"यहाँ, मेरे पास आओ।"

रमानाथ उठकर उसके सिरहाने जाकर बैठ गया।

"मैंने कभी तुम्हें धोखा नहीं देना चाहा था रमा !"

"मैं जानता हूँ उषा !"

"मुझे जो वचन दिया था उसकी याद है, आज दे दो।"

रमानाथ धीरे-धीरे अपना संतुलन खो रहा था, "देता हूँ।"

बहुत ही धीमे स्वर में उषा ने कहा, "दीदी को अपना लो। उनका हाथ पकड़ कर उन्हें भी अपने बराबर ले आओ।"

रमानाथ ने दृढ़ता से आशा का बर्फ सा ठंडा हाथ कस कर अपनी हथेली में दबा लिया, कहा, "अपनाता हूँ।"

"संसार के भय से इस हाथ को कभी मत छोड़ना। जीवन में तुम्हें ऊँचा देखने की कामना थी उसे पूर्ण करना। तुम कभी कमजोर पड़ गये तो सोचूँगी मैंने तुम्हें प्यार ही नहीं किया।" थक कर वह कुछ क्षण चुपचाप पड़ी रही। धीरे से कहा, "पापा, रमा के प्रति तुम भी मन में कोई मैल मत रखना और देखो पापा इस रास्ते को तुम सदा के लिए छोड़ देना, मां को बड़ी पीड़ा होती है।"

तिवारी जी फूट-फूट कर रो पड़े, "मैं छोड़ चुका हूँ उषा, पर तू लौट आ।"

उषा के नेत्र अधखुले से हो गये। रमानाथ ने आशा का हाथ अपने हाथ में दबाकर कहा, "नहीं उषा तुम्हारे प्यार की शक्ति को मैं नष्ट नहीं होने दूँगा। और आत्मा यदि कहीं है तो मुझे लेकर तुम्हारी आत्मा को कभी पश्चाताप नहीं होगा। नीचा गिरना मैंने कभी नहीं चाहा, जब भी गिरा मनुष्य की स्वाभाविक कमजोरियों के कारण, इसके लिये क्या तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी ?"

उषा ने कुछ भी नहीं कहा। उसकी अर्धनिमीलित दृष्टि जैसे कह गई, "तुम्हें क्षमा किस दिन नहीं किया था रमा ? जब भी रूठे हो तुम्हीं रूठे हो। मैं सदा तुम्हारी छाया के साथ रही हूँ और रहूँगी।"

कान्ता वैसी ही निर्जीव-सी पड़ी थी और तिवारी जी बच्चों के समान रो रहे थे। आशा दूसरे कमरे में जाकर क्या करने लगी थी, वही

जाने। रमानाथ ने आँसू नहीं आने दिये। उषा की मृत्यु पर रोना नहीं है, वह मरकर भी तो आज सबमें जी उठी थी।

अपने हाथ से उसने उषा की पलकों को ढक दिया और फिर झुक कर इतनी सावधानी से कि कहीं उसे चोट न लग जाय, उसके अछूते हिम सदृश्य ओठों को उसने चूम लिया और धीरे-धीरे बाहर निकल आया।

न जाने कहाँ से शान्ता देवी उधर आ रही थीं। रमानाथ को देख कर उन्होंने उसे रोक लिया, कहा, "मन्दिर में भगवान् हैं, मेरे घर में भी भगवान् हैं, फिर वे पुकारने से भी क्यों नहीं आते। ऐ, मैं कब से पुकार रही हूँ, वह आता क्यों नहीं।"

रमानाथ दोनों हाथों से मुख ढककर तेजी से नीचे उतर गया।

शान्ता देवी थके हुए पैरों को घसीट कर कमरे में ले आयीं। वे रुकी नहीं, उषा की मृत देह के पास जाकर खड़ी हो गयीं। मुख के सिवा उसका सारा शरीर ढका हुआ था। इतनी शान्ति और सौम्यता थी उस मुख पर कि लगता था वह अभी-अभी सोकर उठने वाली है।

शान्ता देवी हंसीं। मुख के चारों ओर बिखरे रूखे उलझे बालों को हटा कर उषा के मुख पर झुक कर कहा, "चल बेटी, अपन दोनों कहीं भाग चलें।" और फिर धीरे से उसके निर्जीव ओठों को अपने चुम्बन में समेट लिया।